

THE KUPPUSWAMY SASTRI 1577
RESEARCH INSTITUTE,
MYLAPORE, MADRAS-4
CHOWKHAMBĀ SANSKRIT SERIES

A
COLLECTION OF RARE & EXTRAORDINARY SANSKRIT WORKS,
No's. 416, 440 & 441.

THE
SRĀDDHAKALPALĀTĀ

By
DHARMĀDHĪKARĪ
S' RĪ NĀNDA PĀNĪTĀ

Edited by

PĀNĪT S' RĪ LAKS'MĪDHĀRĀ PĀNĀ
DHĀRMĀDHĪKARĪ

With

Introduction and Index Etc.,

by

PĀNĪT GOPĀL S'ĀSTRĪ NENE
Professor, Govt. Sanskrit College,
Benares.

FASCICULAS I-III. 1-3

PUBLISHED & SOLD BY
JAI KRISHNĀDAS-HARIDAS GUPTA,
The Chowkhambā Sanskrit Series Office,
BENĀRES.

1935.

[Registered According to Act XXV of 1907,
All Rights Reserved by the Publisher]

PRINTED BY
1A1 KRISHNA DAS GUPTA
Vidya Vilas Press,
Benares City.

THE KUPPUSWAMY SASTRI
RESEARCH INSTITUTE,
MADRAS-4

बौद्ध-संस्कृत-ग्रन्थमाला

15797

ग्रन्थ-संख्या ७३

प्रन्थाङ्कः ४१६, ४४०, ४४१.

THE KUPPUSWAMY SASTRI
RESEARCH INSTITUTE,
MADRAS-4.

श्रीद्धकल्पलता

श्रीमन्महाराजाधिराज-सहागिलवंशावतंस-परमानन्दादेशेन
धर्माधिकारि-श्रीनिन्दपण्डित-विरचिता ।

काशिकराजकीयसंस्कृतपाठशालायां व्याकरण-धर्म-
शास्त्र-वेदान्ताभ्यापक पं० श्री नेने गोपालशास्त्रि-
प्रदर्शितरोतिमनुसृत्य-धर्माधिकारि
पं० लक्ष्मीधरपन्तेन संशोधिता ।

प्रकाशकः—

जबहृण्णदास हरिदास गुप्तः

बौद्ध-संस्कृत सीरिज् आफिस;

बनारस सिटी ।

१९६२

राजकीयभिक्षालुकारेणस्य सविधिकाराः प्रकाशकेन स्थापनीकृताः

ॐ श्रीः ॐ

मानन्दवनविद्योतिसुमनोभिः सुसंस्कृता ।

सुवर्णाऽङ्कितमन्यामशतपत्रपरिष्कृता ॥ १ ॥

बौद्धम्बा-संस्कृतग्रन्थमाला मञ्जुलदर्शना ।

रसिकालिङ्गं कुर्यादमन्दाऽऽमोदमोहितम् ॥ २ ॥

स्तवकाः ४१४, ५४०, ४४१.

प्रकाशकः—

जयकृष्णदास हरिदास गुप्तः

बौद्धम्बा संस्कृत सीरिज आर्किस

बनारस सिटी ।

श्रीगुरुःशरणम् ।

15797

श्री एकवीरादेव्यै नमः॥

प्रास्ताविकम् ।

अधेदानीं धर्माधिकारिकुलावतंस श्री विनायकापरामर्श श्री नन्दपण्डितकृतः भास्करकल्पतानामकोऽयं धर्मशास्त्रनिबन्धः संमुद्रय प्रकाशयते । यद्यप्ययं प्रथमत आदर्शपुस्तकत्रयमादायैव मुद्रापयितुं प्रारब्धः । तदुभयमेतत्पुस्तकसम्पादकमहोदयानां श्रीधर्माधिकारिकुलावतंस श्री महर्गुरुवर-काशीस्थराजकीय संस्कृतपाठशास्त्रायां व्याकरणधर्मशास्त्रा-ध्यापक नागेश्वरान्त तन्जानां सुगृहीतनामधेवानां श्रीलक्ष्मीधरपत्तानां तदीयपुस्तकालयगतमेव वर्तते ।

तत्रैकं सम्पूर्णं अधिकशतत्रयपत्रोपेतं, प्रतिपृष्ठं नवपङ्क्तयः प्रतिपङ्क्ति च प्रायश्चित्तशास्त्रोपेतं वर्तते । तत्र 'श्रीगणेशायनमः ॥ समात्मवे लम्बोदर' इत्यादिना प्रारम्भं इति भास्करकल्पतया समाप्ता ॥ सम्बत् १९१९ वर्षे कालिकसुदि ९ गुरौ पुस्तकं लिपीकृतवान् ॥ शुभमस्तु । श्रीरामोज-इति ॥ श्रीपरमात्मने नमः ॥ संख्या ४००० ॥ इति प्रघट्टकेन समाप्तम् । इति प्राचीनं पुस्तकं नागराक्षरलिखितं कर्गलमयं च 'ग' संख्या संकेतितम् ।

द्वितीयं च तृतीयपत्रमारभ्य त्रिसप्ततितमपत्रपर्यन्ततया सप्ततिपत्रमकं खण्डितं प्रतिपृष्ठं प्रायशो द्वादशपङ्क्तयुपेतं प्रतिपङ्क्ति च पञ्चादशक्षरयुतं नातिशुद्धं वर्तते । तस्य प्रारम्भः—'पार्ष्णेशे पार्ष्णेनैकोदि शेषे एकोद्दिष्टेन समन्वित्यर्थः' इति । समाप्तिश्च 'तदेवं स्वयं होमाशक्तौ पिबन्त्याप्यस्य वां जमाये आकृष्योत्कृष्य वा होमः' इति प्रघट्टकेन इति नागरलिपिलिखितं कर्गलमयं 'घ' नाम्ना संकेतितम् ।

तृतीयं पुस्तकं च प्रयागक्षेत्रवासि धर्माधिकारिकुलप्रसूत-वैदिकम् अथ-कर्मकाण्डनिष्ठात सम्पादकगोत्रज श्रीजयकृष्णपन्तेभ्याः समाप्तं पञ्चादशपुत्रशतपत्रात्मकं प्रतिपृष्ठं प्रायशो द्वादशपङ्क्तयुपेतं प्रतिपङ्क्ति च प्रायः पञ्चविंशत्यक्षरसमलंकृतं मध्यममानेन नागराक्षरलिखितं 'वा' नाम्ना संकेतितं नातिशुद्धं वर्तते । इदमपि सम्पूर्णम् ।

चतुर्थं पुस्तकं सम्पूर्णमेतानपञ्चादधिकशतपत्रात्मकं प्रतिपृष्ठं पञ्चविंशत्यक्षरलिखितं प्रायोऽष्टादशक्षरोपेतं सम्पादकगोत्रजश्रीमा

भावशिष्टगृहस्थस्त्रीनिधनानन्तरं तदीयसहोदरभ्रातृभ्युत्रेण रामडोकरो-
पाङ्गेन वैदिकप्रवरेण श्री वीरेश्वरभट्ट शर्मणा बाबू महशर्मणा च समर्पितं
बालबोधलिपिलिखितं सूत्रमाक्षरं नातिनवीनं 'क' संकेतेन संकेतितम् ।

अस्य प्रारम्भः—'श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीएकवीरार्थनमः ॥ समाल-
म्बे लम्बोदरचरणपङ्केरुहयुगम्' इति समातिश्च 'इति श्री महाराजाधि-
राजसहगिलान्वयैकभूषणपरमात्मन्दादिष्ट धर्माधिकारिरामपरिद्धर्तात्म-
जपरिद्धतद्विनायककृतायां श्राद्धकल्पलतायां नवश्राद्धनिरूपणस्तवकप-
ञ्चमः समाप्तः ॥ ५ ॥

इति श्राद्धकल्पलता समाप्ता ।

युद्धशं पुस्तकं दृष्ट्वा तादृशं लिखितं मया ।
यदि शुद्धमशुद्धं वा मम दोषो न विद्यते ॥ १ ॥
भग्नपृष्ठकटिर्मावस्तब्धद्वष्टिरधोमुखम् ।
कष्टेन लिखितं ग्रन्थं यत्नेन परिबालयेत् ॥ २ ॥
तैल्लाद्रक्षेज्जलाद्रक्षेद्रक्षेच्छिथिलबन्धनात् ।
मूर्खहस्ते न दातव्यमेवं वदति पुस्तकम् ॥ ३ ॥

सम्बत् १९३२ मितौ पौष शुक्ल २ रवौ तद्विदने इदं पुस्तकं.....
परिद्धतः लिखितं स्वार्थं परार्थं च ॥ लेखकपाठकयोः शुभमस्तु । ग्रन्थ
संख्या ५००० श्रीजगद्भार्षणमस्तु ॥ इति । अस्मिन् पुस्तके पञ्चच
त्वारिंशदधिकैकशतविषयाणामनुक्रमः पृथक् पत्रद्वये सन्निवेशितो वर्तते ।
तदेवं पुस्तकचतुष्टयमावाय तत्र तत्र विशेषत उपलभ्यमानपाठभेदा-
श्च तत्तत्पुस्तकीयत्वेनाद्यस्तादृष्टिपण्यां सन्निवेश्य महता-परिभ्रमेण सम्पा-
दकमहोदयैः सम्पादितं पुस्तकं सर्वेषां विद्वन्मूर्धन्यानां सन्तोषजनकं
भवेदित्याशास्महे ।

एतत्पुस्तकरचयितुः श्रीनन्दपरिद्धतस्य परिचरयो धर्माधिकारिर्ब्रह्म-
वर्षणे स्पष्टतरमभिहितः समयानुसारेणाऽस्माभिरपि तद्वर्णनं करिष्यते
इति तद्विषयकायासादत्रोपरम्यते ।

गवर्नमेण्ट अंस्कृत कालेज
बनारस
मि० वैशाख १५ सं० १९४२

महता निवेदको
गोपाल शास्त्री नेने

श्रीगुरुःशरणम् ।
 आर्द्रकल्पलता-विषयानुक्रमः—

| विषयाः | पृ० | पं० | विषयाः | पृ० | पं० |
|-------------------------------------|-----|-----|--|-----|-----|
| मङ्गलाचरणम् | १ | १ | पुत्रिकापुत्रलक्षणम् | ८ | १६ |
| ग्रन्थकृदाशयभूतराजवंशवर्णनम् | १ | २१ | क्षेत्रजपुत्रलक्षणम् | ११ | १७ |
| ग्रन्थकृतपरिचयः | २ | २५ | गूढजपुत्रलक्षणम् | ११ | १८ |
| <u>आर्द्रलक्षणम्</u> | ३ | १२ | काशीजपुत्रलक्षणम् | ११ | १९ |
| <u>आर्द्रप्रतीसा</u> | ११ | १९ | पौनमीजपुत्रलक्षणम् | ११ | २० |
| आर्द्रफलानि | ११ | २२ | वृत्तकपुत्रलक्षणम् | ११ | २१ |
| नास्तिकानां आर्द्रानर्थक्यवाग्निनां | | | श्रीलपुत्रलक्षणम् | ११ | २२ |
| निष्कर्षणम् | ११ | २५ | स्वयंकृतपुत्रलक्षणम् | ११ | २३ |
| आर्द्राकरणे दोषः | ६ | ३ | स्वयन्वृत्तपुत्रलक्षणम् | ८ | २३ |
| <u>द्वादश आर्द्रभेदाः</u> | १७ | १७ | सहोदपुत्रलक्षणम् | ११ | २४ |
| नित्यआर्द्रलक्षणम् | ११ | २३ | अपविद्धपुत्रलक्षणम् | ११ | २४ |
| नेमित्तिकआर्द्रलक्षणम् | ११ | २५ | दत्तोरसेतवपुत्रानां कर्तौ निषेधः | ११ | २६ |
| काम्यआर्द्रलक्षणम् | ७ | १ | पौत्रस्य आर्द्राधिकारः | ९ | ४ |
| वृद्धिआर्द्रलक्षणम् | ११ | ३ | प्रपौत्रस्य आर्द्राधिकारः | ११ | ५ |
| सपिण्डनआर्द्रलक्षणम् | ११ | ५ | पुत्रिकापुत्रस्य आर्द्राधिकारः | ११ | ६ |
| पार्श्वजआर्द्रलक्षणम् | ११ | ९ | भ्रातृपुत्रस्य आर्द्राधिकारः | ११ | ७ |
| नेच्छीआर्द्रलक्षणम् | ११ | ११ | पितुः आर्द्राधिकारः | ११ | ८ |
| सुदिआर्द्रलक्षणम् | ११ | १३ | मातुः आर्द्राधिकारः | ११ | ९ |
| कर्माङ्गआर्द्रलक्षणम् | ११ | १५ | स्तुबायाः आर्द्राधिकारः | ११ | १० |
| दैनिकआर्द्रलक्षणम् | ११ | १७ | भगिन्याः आर्द्राधिकारः | ११ | ११ |
| वाप्राआर्द्रलक्षणम् | ७ | १९ | भागिनेवस्य आर्द्राधिकारः | ११ | १२ |
| पुष्टिआर्द्रलक्षणम् | ११ | २१ | सोदकस्य आर्द्राधिकारः | ११ | १३ |
| <u>आर्द्राधिकारनिर्णयः</u> | ८ | ६ | उच्छिन्नकुलद्वयस्यैवान्येष्टौ क्षिया | | |
| पुत्रस्य आर्द्राधिकारः | ११ | ७ | अधिकारः | ११ | १३ |
| पत्न्याः आर्द्राधिकारः | ११ | ८ | अपुत्रक्षियाः आर्द्रे भर्तुरधिकारः | ११ | १६ |
| सोदरस्य आर्द्राधिकारः | ११ | ११ | पुत्रादीभावे भर्तुः आर्द्रे क्षिया अधिकारः | ११ | १७ |
| सपिण्डानां आर्द्राधिकारः | ११ | १० | पुत्राद्यभावे यश्चादे स्तुबाया | | |
| शिष्याणां आर्द्राधिकारः | ११ | ११ | अधिकारः | ११ | १८ |
| ऋत्विजः आर्द्राधिकारः | ११ | ११ | क्षीणाममन्त्रकआर्द्राधिकारः | ११ | १९ |
| आचार्यस्य आर्द्राधिकारः | ११ | ११ | सक्युः आर्द्राधिकारः | ११ | २० |
| द्वादश पुत्रभेदाः | ११ | १४ | जामातुः आर्द्राधिकारः | ११ | २१ |
| दत्तपुत्रलक्षणम् | ११ | १६ | | | |

| विषयः | पृ० | पं० | विषयः | पृ० | पं० |
|---|-----|-----|---|-----|-----|
| कल्याण्यधिकारिणोऽभवे राजा तत्रिव्ये- | | | अधिकार्यभावे औष्ण्यदेहिकारणे | | |
| न तच्छ्रीर्षु तस्मात्तोयद्वारा काश्येत् ॥ | २४ | | पितुःप्रत्यवायः | १३ | २ |
| अनुपनीतपुत्रस्य भ्रातृाधिकारः | १० | ३ | अधिकार्यभावे औष्ण्यदेहिकारणे | | |
| पुत्रातिरिक्तस्य संकृतस्यैव भा- | | | ज्येष्ठस्य भ्रातुः प्रत्यवायः | " | " |
| दाधिकारः | " | ४ | अधिकार्यभावे औष्ण्यदेहिकारणे | | |
| चौलानस्तुरं वर्णत्रयादूर्ध्वमेव वा | | | मातुः प्रत्यवायः | " | ३ |
| पुत्रस्य भ्रातृाधिकारः | " | १४ | क्षेत्रिणः पूर्वं भ्रातृं कृत्वा पश्चाद्बौजि- | | |
| अनुपनीतपुत्रस्य त्रिवर्णस्य पितृभा- | | | भ्रातृकरणम् | " | ५ |
| दे मन्त्राधिकारः | " | २१ | पुत्रिकापुत्रकर्तृके भ्रातृ भ्रातृदीयदे- | | |
| जनत्रिवर्णस्य कृतवृत्तस्यपि मन्त्रा- | | | यपितृनिर्णयः | " | ९ |
| धिकारनिषेधः | ११ | ७ | पुत्रिकापुत्रस्य मातामह एव पिता | " | १२ |
| अनुपनीतस्य मन्त्रत्वेन विहितेष्वेव | | | दौहित्रस्यार्णहरस्ये मातामहनव- | | |
| कर्तुं सु मन्त्राधिकारः | " | १० | भ्रातृवश्यकरणस्यम् | १३ | २५ |
| पत्न्या मन्त्राधिकारः | " | ११ | पतितस्य दाहौष्ण्यदेहिकभ्रातृ- | | |
| अधर्म्यासुरादिविवाहोत्पत्तिषा | | | निषेधः | १४ | २ |
| मन्त्रेऽधिकारनिषेधः | " | २३ | पतितस्य दाहदिकरणे कर्तुः प्राय- | | |
| महाचारिणो मात्रौष्ण्यदेहिकाधिकारः | १२ | ३ | श्चित्तम् | " | ३ |
| महाचारिणः पित्रौष्ण्यदेहिकाधिकारः | " | " | पितुः पातित्ये पितामहभ्रातृकर्त- | | |
| महाचारिणः उपाध्यायौष्ण्यदेहिका- | | | व्यता | " | ७ |
| धिकारः | १२ | ४ | पितुः-पातित्ये भ्रातृकरणे विशेषः | " | १३ |
| महाचारिणः आचार्यौष्ण्यदेहिका- | | | पितामहप्रपितामहपातित्ये तद्यैव | | |
| धिकारः | " | " | विशेषः | " | १८ |
| महाचारिणो मातामहौष्ण्यदेहिका- | | | जीवत्पितृकभ्रातृाधिकारनिर्णयः | " | २० |
| धिकारः | " | ५ | विवाहाङ्गभ्रातृकर्तृनिर्णयः | " | २६ |
| उपाध्यायकक्षणम् | " | ६ | जीवत्पित्रादिकर्तृङ्गभाक्षे देय- | | |
| आचार्यकक्षणम् | " | ७ | पितृ निर्णयः | १५ | १८ |
| सपुत्राया औष्ण्यदेहिके पत्युदधिकार- | | | जीवत्पितृकस्यावश्यं मातामह- | | |
| निषेधः | " | १६ | भ्रातृकर्तृव्यता | १६ | ११ |
| सपुत्रस्यौष्ण्यदेहिके पितुरधिकार- | | | मातामहभावे सङ्गवध्यापित्वेन | | |
| निषेधः | " | १७ | प्रतिपत्तिर्णयः | " | २१ |
| सपुत्रानुष्ण्यौष्ण्यदेहिके ज्येष्ठभा- | | | मातामहभावे पिण्डरहितं कार्यम् | १७ | १ |
| तुरधिकारनिषेधः | " | " | प्रथमविवाहे नान्दीभावे पितु- | | |
| पतिपितृज्येष्ठभ्रातृणां पुत्रादिरहि- | | | रुधिकारः | " | ३ |
| तभाषादिःप्यौष्ण्यदेहिकेऽधिका- | | | द्वितीयविवाहे वरस्य नान्दीभा- | | |
| रनिषेधः | २१ | | दाधिकारः | " | ६ |
| अधिकार्यभावे स्नेहेन विवादिगौष्ण्य- | | | मृतपितृकस्काराङ्गान्दीभावे | | |
| देहिककरणे सपिण्डवनिषेधः | " | २३ | देयपितृनिर्णयः | " | |

| विषयाः | पृ० | पं० | विषयाः | पृ० | पं० |
|---------------------------------------|-----|-----|--|-----|-----|
| वृद्धिआश्वाकरणे प्रत्यवायः | १८ | १ | श्रयाहदिवसस्य मलमासप्राप्तौ | | |
| आशुकाकाः | | ४ | तत्र ब्राह्मणभोजनमात्रं कृत्वा | | |
| मष्टकानिर्णयः | १८ | १५ | शुद्धमासे श्राद्धविधिः | २९ | १ |
| व्यतीपातयोगनिर्णयः | | २६ | क्षयमासलक्षणम् | | ९ |
| गजच्छायायोगः | १९ | ३ | क्षयमासस्थागमनकालः | | १४ |
| युगादिनिर्णयः | | ६ | क्षयमासेऽधिमासवर्ज्यकार्यनिषेधः | ३० | ३ |
| युगादौ गवादिदानं तत्फलं च | | १५ | क्षयमासे जन्ममरणमासपक्षनिर्णयः | | २४ |
| मन्वादिनिर्णयः | | १७ | विवाहमध्ये क्षयाहश्राद्धपाते तद्दूध- | | |
| मन्वादिषु श्राद्धाकरणे प्रायश्चित्तम् | २० | १ | वर्षं तत्कर्तव्यता | ३१ | १२ |
| पणवतिनित्यश्राद्धगणना | | ४ | नैमित्तिकश्राद्धकालनिर्णयः | | १७ |
| द्विसप्ततिश्राद्धकालाः | | १० | नान्दीश्राद्धस्य पूर्वाह्नकालः | | १९ |
| कल्पादिनिर्णयः | | १७ | एको द्विष्टस्य मध्याह्नकालः | | २५ |
| कान्यश्राद्धकालाः | | २४ | आमश्राद्धस्य पूर्वाह्नकालः | | २७ |
| अमावास्यानिर्णयः | २२ | २३ | पार्श्वश्राद्धस्य अपराह्नकालः | ३२ | १ |
| कुतपकालनिर्णयः | २३ | १५ | आधाननिमित्तं नान्दीश्राद्धस्या | | |
| श्राद्धे सायाह्नरात्रिकालनिषेधः | | २१ | पराह्नकालः | | २ |
| ग्रहणे रात्रावपि श्राद्धकर्तव्यता | | २४ | अनियतकालजन्मादिनिमित्तक- | | |
| क्षयाहदितिनिर्णयः | | २७ | नान्दीश्राद्धस्य निमित्तानन्तर- | | |
| एकचित्तारोहणे क्षयाहनिर्णयः | २४ | १४ | कालः | | ८ |
| प्रोषितमृताहनिर्णयः | २६ | २५ | गयाश्राद्धकालनिर्णयः | | २१ |
| क्षयाहश्राद्धस्य मलमासे कार्याऽ- | | | गयायात्रायां गुर्वंस्तादिदोषाभावः | | २३ |
| कार्यनिर्णयः | २७ | १३ | गयेतरतीयायात्रायां गुर्वंस्ते निषेधः | | २३ |
| शुद्धमासमृतस्य मलमासे क्षया- | | | शुक्रास्ते गयेतरयात्रायां निषेधः | | २७ |
| हश्राद्धनिषेधः | | १६ | गुरुबाल्ये गयेतरयात्रायां निषेधः | | " |
| मलमासमृतस्य मलमासे क्षयाह- | | | शुक्रबाल्ये गयेतरयात्रायां निषेधः | | " |
| श्राद्धविधिः | २७ | १८ | गुरुवार्धक्ये गयेतरयात्रायां निषेधः | | " |
| मलमासे प्रथमक्षयाहप्राप्तौ तत्रौ- | | | शुक्रवार्धक्ये गयेतरयात्रायां निषेधः | | " |
| तत्कर्तव्यता | | २५ | मलमासे गयेतरयात्रायां निषेधः | | " |
| मासिकादिश्राद्धस्य मासद्वये कर्त- | | | अतिक्रान्तश्राद्धकालनिर्णयः | ३३ | ८ |
| व्यता | २८ | ९ | सूतके आशुद्धिकश्राद्धप्राप्तौ सूत- | | |
| युगादिश्राद्धस्य मासद्वयकर्तव्यता | | १७ | कानन्तरकालः | | १५ |
| प्रतिमासं क्रियमाणस्य कृष्ण- | | | सूतके आशुद्धिकश्राद्धस्याभाव- | | |
| पक्षश्राद्धस्य मासद्वयकर्तव्यता | | " | स्याकालविधिः | | १९ |
| मन्वादिश्राद्धस्य मासद्वयकर्तव्यता | | १८ | सूतके प्राशुल्याशुद्धिकश्राद्धस्य तद्दु- | | |
| र्तव्यता | | " | त्तरतन्त्रिण्यौ कर्तव्यताविधिः | | २३ |
| वत्सराज्यस्य मासद्वयकर्तव्यता | | " | सूतके आशुद्धिकश्राद्धस्य त्रयोदश- | | |
| वत्सराज्यस्य मासद्वयकर्तव्यता | | २३ | दिने कालविधिः | ३४ | ३ |

| विषयाः | पृ० | पं० | विषयाः | पृ० | पं० |
|---|-----|-----|---|-----|-----|
| रजस्वल्हयां भार्यायां श्राद्धकाल- विधिः | " | ९ | लम्बकृणालक्षणम् | ४६ | १६ |
| श्राद्धदेहाः | ३४ | १७ | बैडालमत्तिकलक्षणम् | ४६ | १० |
| श्राद्धे निषिद्धदेहाः | ३६ | ९ | कदर्पलक्षणम् | " | २० |
| परकीयगृहादौ श्राद्धकरणे तन्मू- मूर्खं स्मृतिने देयम् | " | २० | मन्त्रविद्ब्राह्मणस्य दोषयुक्तत्वेऽपि अदूष्यत्वम् | १ | २३ |
| श्राद्धे काम्यदेहाः | ३६ | १ | श्राद्धे ब्राह्मणनमिन्मन्त्रकालः | ४७ | १ |
| गवाशीर्षप्रमाणम् | " | १२ | श्राद्धे स्वशास्त्रीयद्विजाभावेऽन्य- शास्त्रीय ब्राह्मणनिमन्त्रणम् | " | २ |
| गवाक्षिरे पिण्डदानस्य फलम् | " | १७ | स्वगृहस्थसर्वभोजनानन्तरं निम- न्त्रणं दद्यात् | " | ४ |
| सह्योप्राणि | " | २० | श्राद्धात्पूर्वं निमन्त्रणदिने आभिष- रहितभोजनम् | ४७ | ४ |
| एकोत्तरघातकुक्षानि | ३७ | १ | आभिषाणि | " | ८ |
| श्राद्धार्हब्राह्मणाः | " | १२ | श्राद्धे निमन्त्रणप्रकारः | " | १९ |
| स्तुत्युद्धलक्षणम् | " | २२ | क्षिप्यादिद्वाराऽपि निमन्त्रणं भवति | " | २० |
| तीर्थश्राद्धे ब्राह्मणपरीक्षा निषेधः | ३८ | ३ | सर्वेण क्षिप्यादिनैव निमन्त्रणं य जमानः कुर्यात् | " | २२ |
| ब्राह्मणपरीक्षाप्रकारविधिः | " | ७ | वृषलद्वारा निमन्त्रणे ब्राह्मणाश्च स्याभोज्यत्वम् | " | २६ |
| ब्राह्मणलक्षणम् | " | १२ | ब्राह्मणद्वारा निमन्त्रणे शूद्रान्नस्या भोज्यत्वम् | " | २३ |
| पङ्क्तिपावनब्राह्मणलक्षणम् | " | २२ | क्षत्रियवैश्यधोरन्मं ब्राह्मणेनासर्वेण निमन्त्रणेऽपि भोज्यमेव | " | २७ |
| श्राद्धार्हब्राह्मणाभावे ब्राह्मणानुक- रूपः | ३९ | २ | श्राद्धीयब्राह्मणसंख्या | ४८ | ४ |
| श्राद्धे सगोत्रादिनिषेधः | " | १६ | ब्राह्मणस्य श्राद्धीयान्मन्त्रणप्रत्या- ख्याननिषेधः | " | ७ |
| सह्यमपुष्पावूर्ध्वं सगोत्रान्धनुजा | " | १९ | अशकस्य प्रत्याख्याने न दोषः | " | ८ |
| वेदविद्विप्राकाशे पुत्रस्य श्राद्धे नि- षेधत्वम् | ४० | ४ | निमन्त्रितब्राह्मणस्य परावर्तने दोषः | " | ९ |
| बहुनामकाभेदक एव ब्राह्मणः | " | ८ | निमन्त्रितब्राह्मणपरावर्तने प्रायश्चित्तम् | " | १३ |
| एकब्राह्मणपक्षे विधवेदेवव्यवस्था | ४० | १० | निमन्त्रितस्य ब्राह्मणस्य पश्चात्- त्यागो दोषः | " | १४ |
| एकस्यापि ब्राह्मणस्याभावे दर्भा- टवः | " | १८ | ब्राह्मणस्य तस्मिन् दिनेऽन्याह्नप्र- तिग्रहनिषेधः | " | २३ |
| श्राद्धे वर्ज्यां ब्राह्मणाः | " | २६ | ब्राह्मणस्य श्राद्धकालातिक्रमनिषेधः | ४९ | ३ |
| सप्तविधश्लोचभेदाः | ४२ | १४ | श्राद्धभोक्त्रा श्राद्धदिने प्रातर्दन्त- धीवनं कार्याम् | " | ७ |
| षण्डकलक्षणम् | " | १७ | श्राद्धकर्तृदन्तधावननिषेधः | " | ८ |
| वातजलक्षणम् | " | १९ | | | |
| ऋण्डकलक्षणम् | " | २१ | | | |
| वण्डकलक्षणम् | " | " | | | |
| श्लोचकलक्षणम् | " | २२ | | | |
| मनुसकलक्षणम् | " | " | | | |
| कीलकलक्षणम् | " | २३ | | | |
| वृषकीमेवाः | ४३ | २६ | | | |

15797

विषयानुक्रमः ।

५

| विषयाः | पृ० | पं० | विषयाः | पृ० | पं० |
|--|-----|-----|---|-----|-----|
| आहकर्तृस्ताम्बूलादिनिषेधः | ४९ | १० | अन्यायाद्युपार्जितद्रव्येण आहनिषेधः | ६२ | १७ |
| आहकर्तृर्हन्तधावनै प्रयत्नितम् | " | १२ | आहे जलानि | " | २४ |
| आह भोक्तुः पुनर्भोजनादिनिषेधः | " | १५ | आहे वर्ज्यजलानि | ६३ | १ |
| आहे कर्तृभोक्तृभोक्तृभयोरपि पूर्वा- परदिनयोर्मधुनादिनिषेधः | ५० | ४ | आहे ताक्षणाह्वानम् | " | १४ |
| आहकर्तृभोक्तृजन्मगर्भस्य विधा- र्हानत्वं क्षीणाद्युद्धं च | " | २२ | तत्र मध्याह्ने कृतशौरकर्मणां वि- प्रार्णां कल्कादिप्रेषणम् | " | १५ |
| आहकर्तृर्गानस्पतिहिसानिषेधः | ५१ | १ | आहदेशे आसादनोपानि | ६४ | २ |
| आहे ऊर्ध्वगुणद्विविधः | " | १७ | कुतपनिरूपणम् | " | ९ |
| आहे ऊर्ध्वगुणद्विनिषेधः | " | २० | कुशोत्पाटनविधिः | " | १४ |
| तिर्थकृपुणद्वय निषेधो गन्धकृतस्त्रौषध- आहदिने पूर्वं नित्येतरजपहोम- दिनिषेधः | ५२ | १ | दर्भलक्षणम् | " | १८ |
| आहदिने पूर्वं गृहे बालानामपि भोजनदाननिषेधः | " | १४ | कुशलक्षणम् | " | " |
| आहे क्षीणां नियमाः | " | १७ | कुतपलक्षणम् | " | १९ |
| आहपाकारम्मप्रकारः | " | २० | तृणलक्षणम् | " | " |
| तत्र पूर्वं शुद्धिप्रकारः | " | २१ | आहे पवित्राः सप्तपदायाः | " | २४ |
| आहे पाकभाण्डानि | ५३ | ५ | आहप्राणदौहित्रपदार्थनिरूपणम् | ६५ | १ |
| आहसपात्रनिषेधः | " | १८ | आहवर्ज्यकुशाः | " | ९ |
| पक्वान्नस्यापनपरिवेषणार्थं दारुज- यात्राणि | ५४ | ३ | कुशालाभेष्काशानां प्राणत्वम् | " | १६ |
| पाकाहर्द्रव्याणि | ५४ | ७ | आहे वैश्वदेविककर्मसु भवानां विनि- योगविधिः | " | १९ |
| आहे मांसस्य प्राणस्य क्लीतरयुगेषु | ५६ | ८ | आहे मधुदानस्यावश्यकत्वम् | " | २५ |
| कलिवर्ज्यानि | " | ९ | आहे मधुदानस्य कलियुगोत्तरवि- पयस्त्वम् | ६६ | १९ |
| आहे शौचादीनां प्राणस्य न त्वा- मिषस्य | ५७ | १ | आहे पादप्रक्षालनविधिः | " | २१ |
| आहे मांसस्य निम्ना | " | ३ | आहे मण्डलप्रमाणम् | ६७ | २ |
| क्षत्रियस्यापि आहं मांसदानं क- क्षीतरविषयम् | " | १७ | उपविष्टानां आह्वानानां पादप्रक्षा- लनम् | " | ११ |
| आहे वर्ज्यद्रव्याणि | " | २३ | तिष्ठतां पादप्रक्षालननिषेधः | " | १२ |
| राजसाहाराः | ६० | ३ | पादप्रक्षालने प्रत्यङ्मुखत्वम् | " | १७ |
| तामसाहाराः | " | ४ | पादप्रक्षालने दक्षिणस्यैव पत्न्या नीरदानम् | " | २० |
| सात्त्विकाहाराः | " | ६ | मण्डलोत्तरभागे विप्राचमनविधिः | ६७ | २२ |
| वर्ज्यद्रव्याणि | " | ८ | मण्डलान्तः पादप्रक्षालननिषेधः | " | २६ |
| मांसवृत्तिकारकद्रव्याणि | " | १३ | आहे आसनानि | ६८ | १ |
| पक्वान्नभेदाः | ६१ | १३ | आहे वर्ज्यासनानि | " | १० |
| | | | आहे अर्धपात्राणि | " | १२ |
| | | | पित्र्यर्धपात्राणां त्रिष्वसंख्याविधिः | ६९ | ७ |
| | | | आहप्राणगणनाः | ६९ | ७ |

| विषयाः | पृ० | पं० | विषयाः | पृ० | पं० |
|-----------------------------------|-----|-----|-------------------------------------|-----|-----|
| आद्ये वज्र्यां गन्धाः | ६९ | १४ | मण्डलस्यावुदयकरणीयत्वम् | ७९ | १६ |
| सपवित्रकरीषु गन्धदानम् | " | २३ | मण्डलकरणविधिः | " | २२ |
| विलेपनं तु पवित्ररहितेन | ७० | १ | अग्नौकरणम् | ७६ | ३ |
| विलेपनसमये ब्राह्मणयज्ञोपवीतस्य | | | पित्र्यप्रथमग्राहणपाणौ होमः | " | २० |
| स्कन्धावधोऽन्यतारणनिषेधः | " | १८ | अग्नौकरणशेषस्य पित्र्यपात्रे प्रति- | | |
| आद्ये ग्राह्यपुष्पाणि | " | १२ | पादनम् | " | २२ |
| आद्ये जातोपुष्पनिषेधस्य रक्तजा- | | | सव्येनाग्नौऋणं प्राहुस्तुलेन च | " | २६ |
| तोपरत्वम् | ७१ | ८ | अपसव्येन दक्षिणाभिस्तुलेन चाग्नौ | | |
| आद्यवज्र्यपुष्पाणि | " | ११ | करणं वा | ७७ | १ |
| भूपाः | " | २४ | पाणिहुतास्य भक्षणभक्षणव्य- | | |
| वज्र्यां भूपाः | ७२ | ४ | वस्या | " | ६ |
| आद्ये दीपाः | " | ११ | पात्रालम्भनम् | " | ९ |
| आद्ये वज्र्यां दीपाः | " | १५ | अङ्गुष्ठनिवेशनविधिः | " | १२ |
| आद्ये आच्छादनम् | " | १६ | भूमौ सङ्कल्पोदकदानम् | " | २४ |
| आद्ये आच्छादनादाने प्रत्यवायः | ७२ | २१ | संकल्पोदकदानस्य स्थलविशेष- | | |
| आद्ये वज्र्यान्त्याच्छादानानि | " | २४ | कथनम् | ७८ | १ |
| आद्ये पातुकादीनां निषेधः | ७३ | १ | संकल्पोदकदानात्प्राक् । अन्नस्पर्श- | | |
| आवृधे ब्रह्मोपवीतदानविधिः | " | ३ | पात्रेऽद्वरणनिषेधः | " | ३ |
| आवृधे भोजनप्राप्ति | " | ९ | अपोशानं विनाऽन्नग्रहणनिषेधः | " | ९ |
| आवृधे वज्र्यभोजनप्राप्ति | " | १५ | घृतप्राप्तासादनम् | " | १५ |
| आवृधे परिवेषणविधिः | ७४ | ४ | आवृधे हविर्गुणप्रश्ननिषेधः | " | १८ |
| हस्तेन परिवेषणनिषेधः | " | ८ | अपोशाने विशेषः | " | २१ |
| आवसेन परिवेषणनिषेधः | " | ११ | पित्र्याग्नेन भोक्तृणां बलिदान- | | |
| आवसे परिवेषणनिषेधः | " | १३ | निषेधः | ७९ | १ |
| काष्ठनिर्मितदम्बादिना परिवेषण | | | भोजने ब्राह्मणनामभ्योन्यस्पर्शं | | |
| निषेधः | " | २१ | कर्तव्यम् | " | ९ |
| उदुम्बरकाष्ठस्य प्राशस्त्यम् | " | २३ | उच्छिष्टस्पर्शं कर्तव्यम् | " | १३ |
| दवीदेयपदार्थाः | ७५ | १ | भोजनप्राणामभ्योन्यस्पर्शं कर्तव्यम् | ७९ | १६ |
| हस्तदेयपदार्थाः | " | २ | चाण्डालादिभिर्दृष्टे कर्तव्यम् | " | १५ |
| विपर्ययेण परिवेषणे निषेधः | " | ३ | भोजनकाले गुदस्त्रावे | " | २२ |
| अपेक्षितवस्त्ववाचने विप्रस्य दोषः | " | ५ | भोजन काले भाषणादिनिषेधः | " | २६ |
| अपेक्षितवस्त्वदाने आद्यकर्तृदोषः | " | ६ | मासिके सांवत्सरिके च भोजनका- | | |
| आवृधे भोजनसमये भाषणविरामा- | | | ले व्रतने निर्णयः | ८० | ११ |
| दिनिषेधः | " | ७ | अमावास्यादिषु आद्यविद्यने निर्णयः | ८२ | १२ |
| आवृधे भोजनपात्रे पीतशेषजलपा- | | | मासिकस्याऽऽङ्कितस्य च पक्वा- | | |
| त्रेऽभोक्तृत्वम् | " | ११ | र्त्नैव करणीयता | " | १७ |
| आवृधे मण्डलार्थं द्रव्याणि | " | १३ | आवृधे सूतकादिभिन्ने निर्णयः | ८५ | १९ |

| | | |
|---|-----|-----|
| विषयाः | पृ० | पं० |
| श्राद्धप्रारम्भानन्तरं सूतकाद्यभाटः | २२ | २२ |
| भ्रतादिप्रारम्भनिर्णयः | २३ | २३ |
| भोजनमध्ये श्राद्धकर्तुः सम्बन्धि- मरणे निर्णयः | ८३ | ९ |
| सूतकादिमध्ये श्राद्धप्राप्तौ निर्णयः | १२ | १२ |
| विकिरदानविधिः | ८४ | १ |
| पात्रचालनम् | ११ | ११ |
| पात्रचालनेऽधिकारिनिर्णयः | १८ | १८ |
| पिण्डदानम् | २६ | २६ |
| पिण्डेषु माषनिषेधः | २४ | २४ |
| पिण्डस्याष्टाङ्गानि | ८९ | ३ |
| पिण्डदानदेशनिर्णयः | ६ | ६ |
| पिण्डप्रमाणम् | १७ | १७ |
| महालययादौ पिण्डशब्दप्रयोगोऽभ्य- न्तान्नशब्दस्य | ८६ | २२ |
| पिण्डोपघाते निर्णयः | २९ | २९ |
| पिण्डप्रतिपत्तिः | ८६ | १२ |
| कान्था पिण्डप्रतिपत्तिः | १६ | १६ |
| पिण्डदाने निषिद्धकालः | २४ | २४ |
| पिण्डदानप्रतिप्रसवः | ८७ | १९ |
| तत्र पिण्डदाने विज्ञेयः | ८८ | १ |
| मघादौ पिण्डदाननिषेधः | १२ | १२ |
| तिथिवारप्रयुक्तनिषेधस्तन्निमित्त- कपिण्डदानस्यैव नान्यनिमि- त्तकस्य | २० | २० |
| श्राद्धे विषेदेवनामानि | ९० | २ |
| वस्त्रादिसंज्ञाः | ६ | ६ |
| अपसव्येन क्रियमाणानि कर्माणि | १० | १० |
| पश्चिन्नकरणम् | १५ | १५ |
| श्राद्धे देवपूर्वाणि कर्माणि | १७ | १७ |
| देवकर्मेतिकर्तव्यता | १९ | १९ |
| पिण्ड्यकर्मेतिकर्तव्यता | २१ | २१ |
| देवपूजने दक्षिणपादादिमूर्च्छक्रमः | २३ | २३ |
| पितृपूजने वामशिर आदिपादान्तक्रमः | २४ | २४ |
| श्राद्धकर्तुंनिषयाः | ९१ | १ |
| स्वागतादिषट्कर्माणि सव्येन अ- वन्ति | ९१ | ६ |
| उद्देश्यवितृणां विभक्तिनिर्देशः | ८ | ८ |

| | | |
|--|-----|-----|
| विषयाः | पृ० | पं० |
| आसनादिकर्मसु नामोच्छेसः | ९१ | १० |
| आवाहनादौ गोत्रनामोच्छेसः | १३ | १३ |
| गोत्रादीनामुच्छेसक्रमः | २१ | २१ |
| गोत्रं सकारयुक्तं वक्तव्यम् | २४ | २४ |
| गोत्राज्ञाने निर्णयः | ९२ | ६ |
| न.माज्ञाने निर्णयः | ८ | ८ |
| श्राद्धे भाचमनकालाः | १० | १० |
| पवित्र्विसर्जनानि | १२ | १२ |
| श्राद्धादिकर्मसु ऋषिदेवतोङ्कारो- च्छेसनिषेधः | २० | २० |
| श्राद्धद्वयसंपाते निर्णयः | ९३ | १ |
| कचिहेवताभेदे उभयोरपि कर्तव्य- त्वम् | ९४ | १ |
| अनेकश्राद्धकर्तव्यतायां पौषार्पण- निर्णयः | १५ | १५ |
| मातापित्रोरैकदिने पितुः प्रथमं श्राद्धगृह्येयम् | १५ | १५ |
| एकस्मिन् दिने निमित्तभेदे श्राद्ध- द्वयादि भवत्येव | १६ | २ |
| पार्वणेकोद्दिष्टयोः पार्वणस्य प्राथम्यम् | १६ | १६ |
| समानधर्मकश्राद्धानां तन्त्रेणानुष्ठानम् | १६ | २ |
| तत्र पाकविकिरयोस्तन्त्रं पिण्डदानं पृथक् | १६ | ५ |
| महालयश्राद्धविधिः | ८ | ८ |
| तत्रापरपक्षविधानम् | ९६ | १० |
| महालये षोडशदिननिर्णयः | ९७ | १ |
| महालये मातामहवर्गसुवावश्यकत्वम् | ३ | ३ |
| महालयकरणे फलम् | १३ | १३ |
| महालयाकरणे दोषः | १५ | १५ |
| अपरपक्षकश्राद्धविषये पक्षच्छुद्धयम् | ९८ | २ |
| महालयश्राद्धे तु निर्णयः | १६ | १६ |
| प्रथमवर्गे महालयश्राद्धनिषेधः | ९९ | ५ |
| प्रथमवर्गे महालयाभ्यनुज्ञा | १० | १० |
| अपरपक्षे भस्तीश्राद्धविधिः | १४ | १४ |
| नवदेवस्यद्वादशदेवस्यश्राद्धम् | १६ | १६ |
| अनेकमातृकपुत्रकर्मकश्राद्धे मा- तृणां पिण्डाद्यज्ञानविधिः | २२ | २२ |

विषयानुक्रमः ।

| | | |
|---|-----|-----|
| विषयाः | पृ० | पं० |
| महालयपुष्टीमोक्षोदशीभाद्रस्य | | |
| गयाभाद्रतुल्यता | २४ | |
| महालयनक्षत्रां मातुः पृथक् भाद्रम् | १०० | ३ |
| मातामहीपार्वणस्य देशकुलाचारतः कर्तव्यता | १६ | |
| जोषन्मातृकस्य सापत्नमातृमुख्य-पार्वणनिषेधः | २५ | |
| सकृन्महालयपक्षे तिथ्यादिविशेषः | २७ | |
| भाद्रयोदश्याः | १०१ | ८ |
| एकोद्दिष्टविधानं केवामिति निरूपणम् | २४ | |
| एकोद्दिष्टभाद्रविधिः | १०२ | १४ |
| एकोद्दिष्टे पाणिहोमः | | १७ |
| एकोद्दिष्टे पिण्डदानदेशः | | २६ |
| दुग्धपद् एककर्तृकानेकभाद्रकरणे पाकैक्यम् | १०३ | ३ |
| संन्यासिमहालयकालो द्वादशयेव | | ५ |
| मघात्रयोदशीभाद्रम् | | १८ |
| तत्र सर्वैः पुत्रैः पृथक् कार्यम् | | २१ |
| त्रयोदश्यां भाद्रनिषेधः केवलपि-तृवर्गभाद्रपरः | १७४ | २ |
| मघात्रयोदशीभाद्रवे पिण्डदाननिषेधः | | १० |
| मघात्रयोदशीभाद्रफलम् | | १३ |
| षतुर्दशीभाद्रम् | | १७ |
| षतुर्दश्यां अक्षयतस्मैव भाद्रनि-यमः | १०५ | ३ |
| अक्षयतस्य पितृषतुर्दश्यां भाद्रेकृतेऽपि श्रुततिथावपि महालयभा-दानुष्ठानविधिः | | ५ |
| पितामहस्यापि शंखहृतस्य महालय-षतुर्दश्यां पृथगेकोद्दिष्टम् | | १५ |
| प्रपितामहेऽपि शस्त्रहते सत्र पाव-णमेव | | २२ |
| शस्त्रहृतभाद्रे मघात्स्यपि पिण्ड-दानम् | १०६ | ११ |
| षतुर्दश्यां तस्मै अक्षयहृतस्यापि पाचकम् | | १८ |

| | | |
|---|-----|-----|
| विषयाः | पृ० | पं० |
| तीर्थभाद्रविधिः | | २३ |
| तीर्थभाद्रं तीर्थोपवाससमुण्डनस्नान-पूर्वकमनुष्ठेयम् | १०७ | १८ |
| तीर्थे तपेण भाद्रात्पूर्वमेवानुष्ठेयम् | | २० |
| तीर्थे निषिद्धकालादिवर्जनाभावः ; पुनस्तत्तीर्थगमने दक्षभासेऽप्य-भा-द्रमावश्यकं ततोऽर्वाकृताकु-तम् | | १०८ |
| प्रयागे विशेषः | | १२ |
| पुत्रवत्या विधवया तीर्थे भाद्रं न कार्यम् | | १७ |
| अपुत्रया विधवया तीर्थे भाद्रं कार्यम् | | २० |
| अनुपनीतोऽपि तीर्थभाद्रं कुर्यात् | | २१ |
| श्रीशूद्रानुपनीतपुत्रकर्तृकभाद्रे वि-शेषः | | २७ |
| तीर्थभाद्रं अर्घ्यावाहनादिनिषेधः | १०९ | ५ |
| तीर्थभाद्रे ब्राह्मणपरीक्षणनिषेधः | | ७ |
| विद्वद्ब्राह्मणागमने तीर्थभाद्र-विधिः | | ८ |
| तीर्थभाद्रे पिण्डप्रतिपत्तिः | | ११ |
| गयाभाद्रनिर्णयः | | १४ |
| गयाभाद्रं सर्वैः पृथक् कर्तव्यम् | | १६ |
| गयायां पिण्डद्रव्याणि | ११० | ८ |
| संन्यासिभिः भाद्रस्येके दण्डस्पर्श-मात्रं कार्यम् | | २५ |
| गयायां पतितानामपि संवत्सरोर्ध्व-भाद्रविधिः | १११ | ६ |
| नित्यभाद्रम् | | १४ |
| आमभाद्रनिमित्तानि | १११ | २१ |
| शूद्रेऽपि आमभाद्रमेव कार्यम् | ११२ | १ |
| ग्रहणेऽप्यामभाद्रमेव | | ११ |
| मासिके आमभाद्रनिषेधः | | १७ |
| आम्बिके आमभाद्रनिषेधः | | १७ |
| सपिण्डनादप्यामभाद्रनिषेधः | | १७ |
| मायायां रजस्वलायां भाद्रविधिः | | २५ |
| रजस्वलायाः सप्ताहमशुचित्त्वं रज-सो निवृत्त्यभावे | ११३ | २२ |

THE HINDU UNIVERSITY
RESEARCH INSTITUTE,
MADRAS-4

| विषयाः | पृ० पं० | विषयाः | पृ० पं० |
|--|---------|--|---------|
| आमश्राद्धेऽनौकरणम् | १२६ | श्राद्धदिने रात्रौभोजननिषेधः | १० |
| आमश्राद्धे पिण्डदानम् | २७ | द्वीयोच्छिष्टमाज्जनविधिः | १२ |
| अमावास्यायां पिण्डैर्ब्राह्मणभोजनयोरामपैकाङ्गविपर्ययनिषेधः | ११४ | श्राद्धशेषस्य शूद्रदाननिषेधः | १५ |
| आमश्राद्धे चतुर्गुणं द्विगुणं वाऽर्घं दातव्यम् | ६ | श्राद्धशेषस्य शूद्रदाननिषेधः | २० |
| आमश्राद्धे नियमनिषेधः | ११ | श्राद्धेऽग्निनक्षत्रैश्च देवकालविधिः | २४ |
| हेमश्राद्धेऽष्टगुणं हेमदातव्यम् | ९ | श्राद्धे स्याग्निनक्षत्रैश्च देवकालविधिः | १२९, १६ |
| हेमश्राद्धादौ नियमनिषेधः | ११ | श्राद्धे वैश्वदेवपाकनिर्णयः | १३० |
| हेमामश्राद्धयोः विकिरादिनिषेधः | १५ | श्राद्धाङ्गुतिलतर्पणविधिः | १३१ |
| हेमश्राद्धनिमित्तानि | २२ | तिलतर्पणरहितश्राद्धानि | १३२ |
| हेमश्राद्धे आमश्राद्धीयविशेषाः | २३ | तिलतर्पणनिषेधः | |
| आमश्राद्धे ऊहाः | ११५ | तिलतर्पणनिषेधापवादः | १३ |
| द्रव्याभावे श्राद्धविधिः | ११६ | तिलविशेषाणां तर्पणविशेषो विधिः | |
| पात्राभावे श्राद्धविधिः | २४ | योगविधिः | १३३ |
| अतिद्विरास्य श्राद्धविधिः | ११६ | तर्पणार्थं तिलग्रहणविधिः | १७ |
| सङ्कल्पश्राद्धम् | १४ | तर्पणार्थं दर्भधारणे विशेषः | १३४ |
| नान्दोश्राद्धनिमित्तानि | ११७ | एकहस्तेन तर्पणनिषेधः | १७ |
| नान्दोश्राद्धे विशेषः | ११८ | उदकादौ तर्पणनिषेधः | २५ |
| क्षयाहे पार्वण्येकोद्दिष्टश्राद्धनिर्णयः | ११८ | तर्पणे प्रथमान्तेन वाचनविधिः | १३५ |
| स्त्रीश्राद्धनिर्णयः | १२० | तर्पणेऽङ्गुलि संख्याविधिः | १५ |
| स्त्रीणां श्राद्धे सुवासिनी भोजन- विधिः | १२१ | तर्पणेऽस्मन्मात्राद्युच्चारणविधिः | ११ |
| संख्यासिश्राद्धनिर्णयः | १२२ | दाहेऽग्निनिर्णयः | १२६ |
| विधवाकर्तृकपार्वण्यनिर्णयः | १६ | निषिद्धा अरण्यः | २० |
| स्त्रीकर्तृकश्राद्धेऽपसव्यकरणविधिः | १२३ | दाहायं शूद्राग्निनकाष्ठाद्यानयन- निषेधः | २२ |
| अविभक्तकर्तृकश्राद्धनिर्णयः | १४ | कपालाग्निनिष्पादनविधिः | १३७ |
| संस्तुतिकर्तृकश्राद्धनिर्णयः | १२४ | उत्तपनारिनिष्पादनविधिः | १८ |
| जीवत्पितृकस्य श्राद्धानधिकारः | ६ | आहितान्तेः पत्न्यौपवृत्तं मृताया श्रौतारिभवा दाहः | १० |
| जोवत्पितृकस्य कृष्णतिलैस्तर्पण- निषेधः | ९ | अनेकभाष्यस्य कनिष्ठास्त्रीमरणे नि- मन्ध्येन दाहः | २६ |
| जोवत्पितृकस्य मातृश्राद्धेऽधिकारः | १९ | आहितान्तेः सहमरणे दाह- विधिः | १३८ |
| पार्वणश्राद्धानुक्रमणी | २३ | रात्रिसूतस्य रात्रावेव दाहः | ९ |
| श्राद्धकर्तृभोजनविधिः | १२५ | रात्रौ दाहाङ्गवपननिषेधः | ११ |
| श्राद्धकर्तृः पराङ्गग्रहणनिषेधः | ११ | पयुषितदाहे प्राथम्येन | १८ |
| निस्त्योपवासदिने श्राद्धकरणेऽप्रा- णमात्रम् | १२७ | रात्रिदाहे विशेषः | १३९ |
| | | दाहकालेऽग्निनाथे विशेषः | १८ |

| विषयाः | पृ० पं० | विषयाः | पृ० पं० |
|---|---------|---|---------|
| नरकस्य दाहनिषेधः | २० | वाक्यपत्याद्यु न्वारोहणनिषेधः | २५ |
| श्रवणस्य श्रवणदालादित्पदार्थो प्रायश्चित्तम् | २१ | गर्भिण्या अन्वारोहणनिषेधः | २७ |
| ऊनद्विषाधिकृतस्य दाहनिषेधः | १४० | अन्वारोहणतपसोर्मुक्त्यामुक्तयत्व- विवेकः | १५५ ३ |
| संन्यासिनां दाहनिषेधः | १० | रजस्वलाया अपि सहगमनविधिः | ११ |
| पतिहानां दाहनिषेधः | १० | मृते भर्तारि रजस्वलायाःशुद्धि- विधिः | १३ |
| आत्मवार्तिनां दाहनिषेधः | २६ | द्रोणप्रमाणम् | १५ |
| आहिताग्नेर्दाहासम्भवेऽन्यादि- प्रतिपत्तिः | १४३ १० | वित्तिभ्रष्टायाः प्रायश्चित्तम् | १५६ १९ |
| आत्मवार्तिप्रभृतीनां दाहादिकरणे प्रायश्चित्तम् | २६ | अन्वारोहणद्वैविध्यम् | १५७ १३ |
| पतितानां दाहादौ प्रायश्चित्तम् | १४४ ४ | सहगमनम् | १४ |
| आत्महत्यादीनां संवत्सरोर्ध्वमौर्ध्व- देहिकविधिः | ७ | अनुगमनम् | १५ |
| दुर्भरणे प्रायश्चित्तम् | १४५ २६ | ब्राह्मण्याः सहगमने पवाधिकारः | १७ |
| कष्टवाचां मरणे प्रायश्चित्तम् | १४६ १५ | क्षत्रियदीनामुभयप्राधिकारः | १५८ ४ |
| अन्तरिक्षमरणे प्रायश्चित्तम् | १८ | सहगमनेति कर्तव्यता | १५८ ५ |
| आत्मघात प्रायश्चित्तम् | २१ | देशान्तरमृते मृत्योर्पणशरदाहेऽनु- गमनविधिः | १५८ ९ |
| पतितानां संवत्सरोर्ध्वमौर्ध्वदेहि- कविधिः | १४७ २ | संघातमृते विधेयः | १५९ २ |
| पतितानां वर्षोर्ध्वमपि सामान्य- प्रायश्चित्ता कृत्योर्ध्वदेहिकं कार्यम् | २० | तत्र पतिपत्न्योः पितापुत्रयोः | ४ |
| साधारणासाधारणोभयप्रायश्चित्ता- नुष्ठानम् | २५ | ज्येष्ठ कनिष्ठभ्रात्रोः त्रिदण्डिसंस्कारः | १२ |
| पतितानां वर्षोर्ध्वं गयाश्राद्ध- विधिः | १४८ ४ | ब्रह्मचारिसंस्कारः | १६७ २० |
| पतितादिविषये दाहादि विविधनिषे- धव्यवस्था | ८ | कुष्ठिसंस्कारः | १६२ १ |
| पतितादीनां संवत्सराद्वागौर्ध्वदे- हिकविधिः | १५१ ११ | गर्भिणीसंस्कारः | १६२ १२ |
| प्रमादेन पूर्वोक्तनिमित्तमरणे दाहादि | १९ | सूक्तिसंस्कारः | १६३ २२ |
| वैधोपायेन मरणे दाहादि प्रतिषे- धभावः | १५२ ४ | सूक्तिकामरणे प्रथमऋषे प्रायश्चि- त्तम् | १६४ ११ |
| वेधमरणविधिः | ६ | द्वितीयऋषे सूक्तिकामरणे प्राय- श्चित्तम् | १४ |
| अन्वारोहणविधिः | १५४ ६ | तृतीयऋषे सूक्तिकामरणे प्रायश्चि- त्तम् | १७ |
| पतिहाना कक्षणम् | २६ | अशकृतस्य पक्षान्तरम् | २० |
| | | दशाहोत्तरं सूक्तिकामरणे प्रायश्चि- त्तम् | २३ |
| | | रजस्वलासंस्कारः | १६५ ३ |
| | | अन्तरिक्षमरणे प्रायश्चित्तम् | २० |

| विषयाः | पृ० | पं० | विषयाः | पृ० | पं० |
|-------------------------------------|-----|-----|---|-----|-----|
| वह्नौ मरणे प्रायश्चित्तम् | ० | " | त्रिवर्षपर्यन्तं दाहोदकदानविकल्पः | १ | २ |
| जले मरणे प्रायश्चित्तम् | " | " | असंस्कृतस्य पिण्डदानविधिः | " | ८ |
| रजस्वला मरणे प्रायश्चित्तम् | " | २१ | उपनयनोत्तरं जात्याशौचम् | १७९ | १ |
| सूक्तिकामरणे प्रायश्चित्तम् | " | " | शूद्रस्य तु पञ्चवर्षोऽप्यं जात्याशौ- | " | २ |
| पञ्चकर्मसंस्कारः | १६६ | १३ | चम् | " | " |
| त्रिपादूर्ध्वमृतसंस्कारः | १६८ | २५ | कुमारीणां पिण्डविधिः | " | १२ |
| देशान्तरमृताहितारिनसंस्कारः | १६९ | ६ | कृतचूडकुमारीणां मासिकपथ्यं | " | " |
| प्रोषितस्य जीवहतायां अनाकर्णने | " | " | नियतम् | " | १९ |
| संस्कारः | " | २४ | कृतचूडकुमारीणां सांवत्सरिकमै- | " | " |
| प्रोषितसंस्कारदिननिर्णयः | १७० | १९ | च्छिकम् | " | २० |
| कृतौऽर्धद्वैहिकप्रत्यागमने संस्कारः | " | २२ | पाथेयश्चाद्धम् | " | २२ |
| प्रोषितजीवहतातानाकर्णने स्त्रियाः | " | " | अस्थिसञ्चयनम् | १८० | ४ |
| सहगमनम् | १७१ | १५ | अस्थिसञ्चयने वर्णविशेषेण काल- | " | १४ |
| संस्कृतस्य पिण्डोदकदानविधिः | १७२ | ६ | व्यवस्था | " | " |
| दशपिण्डदानविधिः | " | १७ | अस्थिसञ्चयने निषिद्धवारतिथि- | " | " |
| पिण्डनिर्वापदेशः | १७३ | २२ | नक्षत्राणि | १८१ | ४ |
| पिण्डद्रव्याणि | १७४ | ३ | संस्कारादेव सर्वेषामभ्यनयनमता- | " | " |
| दशपिण्डेषु द्रव्यैक्यनियमः | " | ८ | मस्थिसञ्चयनकालगणना | " | ८ |
| दशपिण्डेषु कर्त्रैक्यनियमः | " | १० | अस्थिसञ्चयनेतिकर्तव्यता | " | १३ |
| दशपिण्डेषु देशैक्यनियमः | " | १६ | अस्थिनां तीर्थक्षेपविधिः | १८२ | १ |
| दशपिण्डेषु देशैक्यापवादः | " | २४ | अस्थिनां स्मृधा वेष्टनानि | " | ९ |
| सहगमने दम्पत्योः पिण्डेषु द्रव्या- | " | " | अस्थियु शुद्धयर्थं हेमादिनिक्षेपः | " | ७ |
| द्योक्तव्यनियमः | १७५ | ३ | अस्थिनां तीर्थक्षेपाङ्गहोमविधिः | " | ९ |
| पिण्डानामवयवदूरकस्त्वम् | " | १२ | तीर्थेऽस्थिक्षेपानन्तरं हेमश्चाद्धविधिः | " | १३ |
| दशमपिण्डस्य वर्णविशेषेणोत्कर्षः | " | २३ | अस्मन्मस्थिस्यवहने प्रायश्चित्तम् | " | १५ |
| प्राक्षणाणां दश पिण्डाः | " | २७ | नवश्राद्धानि | " | २२ |
| क्षत्रियाणां द्वादश पिण्डाः | " | " | वर्णविशेषेण नवश्राद्धानुष्यवस्था | १८३ | ३ |
| वैश्यानां पञ्चदश पिण्डाः | १७६ | १ | नवश्राद्धान्तराये निर्णयः | १८४ | १० |
| शूद्रस्य त्रिंशत्पिण्डाः | " | " | नन्दादिदिनेषु नवश्राद्धानं न क- | " | " |
| स्त्रीवर्णानां दशपिण्डविधिः | " | ६ | र्तव्यम् | " | १७ |
| सर्गवर्णानां पिण्डत्रयविधिः | " | ८ | नवश्राद्ध्ये द्रव्यम् | " | २० |
| पिण्डसंख्याव्यवस्था | " | १३ | उदकदानविधिः | " | २४ |
| पिण्डत्रयदानस्य अनुपनीतविषयत्वम् | " | १९ | उदकदानमन्त्रः | १८६ | ६ |
| प्रत्यहं पिण्डदानाशक्तौ पक्षान्तरम् | " | ११ | ब्रह्मचारिपुत्रितादिभिरुदकदानं न | " | " |
| त्र्यहाद्याशां च दशपिण्डविधिः | १७३ | ७४ | कार्यम् | " | २२ |
| सुद्धं हतस्य पिण्डविधिः | १७५ | १३ | उदकदानानहौः | " | १ |
| अनुपनीतपिण्डविधिः | " | २१ | आशौचदिनकर्तव्यधर्माः | १८७ | ६४ |
| त्रिप्रथमं कृतचौकस्य वा मरणे- | " | " | प्रेतश्राद्धानिषिद्धवस्तुनि | " | १० |
| त्र्यहाशौचम् | १७८ | १ | अशौचे ज्ञातिभिः सहभोजनम् | " | १७ |

| विषयः | पृ० | पं० | विषयः | पृ० | पं० |
|---|-----|-----|--|-----|-----|
| त्रिज्येऽग्येनीपि सपिण्डनमनु- ष्ठयम् | १४ | | पुत्रो सपिण्डीकरणेऽपरोऽपि च- | २३३ | १ |
| वृद्धिनिमित्तं सपिण्डनापकथं मा- सिकानामपकथं: | १९ | | पुत्राभावे पौत्रस्य सपिण्डना- दावधिकारः | " | ८ |
| प्रमादाद्वावशाहे सपिण्डनानुष्ठाने त्रिपक्षाद्वावनुष्ठेयता | २२६ | २२ | पुत्रसत्त्वे पौत्रस्य आर्द्धशोडशक- रणनिषेधः | " | " |
| त्रिपक्षादिविहितकालेषु तदनुष्ठा- ने कालान्तरविधिः | २२५ | | पौत्राभावे प्रपौत्रादीनां क्रमेणा- धिकारः | " | " |
| सपिण्डने वज्र्यकालः | " | | सपिण्डाभावे पुत्र्या अधिकारः | " | " |
| सपिण्डीकरणं मूलमासेऽपि भवति, | " | | मातृसपिण्डनाधिकारनिर्णयः | २२३ | |
| सपिण्डनाधिकारिणः | " | | तदभावे सपत्नीजस्य | " | " |
| ब्राह्मणसपिण्डने पारशवस्योप्य- धिकारः | २२८ | | तदभावे क्षेत्रजादीनाम् | " | " |
| पारशवलक्षणम् | " | | तदभावे पत्युः | " | ५ |
| सर्वेषामपि पुत्राणां सपिण्डनाधि- कारेऽपि तत्रैकेनैव तत् हरणीयम्, | १४ | | तदभावे सपिण्डानाम् | " | " |
| सपिण्डनान्तश्चाद्धेऽपि पृथक्कृतं नैव- सागिषेधः | १८ | | अन्वारूढावास्तु भर्तृजर्मेष्ठपुत्र- स्यैवाधिकारः | " | १७ |
| सपिण्डनान्तश्चाद्धेऽपि ज्येष्ठपुत्रस्या- धिकारः | २२८ | | सपिण्डीकरणेति कर्तव्यता | २३५ | ४ |
| एकेन करणेऽग्येषां प्रत्ययनाया- भावः | २२९ | | अत्यन्तासदि सपिण्डनविधिः | २३८ | १४ |
| सपिण्डीकरणोत्तरे सांवत्सरिका- दावविभक्तानामनियमः | " | १४ | मातुः सपिण्डीकरणेति कर्तव्यता | " | २० |
| विभक्तानां तु पृथगेव सांवत्सरि- कादिश्चादानुष्ठानम् | २३० | | अनुगतमातुः सपिण्डनं पत्येव सहकार्यम् | " | २४ |
| ज्येष्ठस्यासन्निकाने तदनुजस्य- सपिण्डनाधिकारः | " | | पतिपितृपितामहाभ्यां च सह- त्येकः पक्षः | २३९ | ५ |
| काशवादिभ्युक्तिश्रेत्रेभ्यु त्तसपिण्ड- नेऽसपिण्डस्याप्यधिकारः | " | २१ | पत्येकेनैवेत्यपरः | " | ६ |
| ज्येष्ठस्य सपिण्डीकरणानुष्ठानमस्या- सपिण्डनाधिकारः | २३१ | | एकवित्यारोहणे तु पितृसपि- ण्डनमेव कार्यं न मातृसपिण्डनम्, | " | २२ |
| ज्येष्ठक्रियमाणपुनः सपिण्डीकरण- मेकावशाहे | " | | मातुःसपिण्डनं पितामहादिभिः | २४० | १४ |
| पुनःसपिण्डीकरणमिति चानि | " | | मृतभर्तृकमातुः सपिण्डनं पत्या पितामहाद्येति विकल्पः | २४१ | ५ |
| पुनःसपिण्डीकरणे विशेषः | २३२ | | आसुरादिविवाहोदाया मातृ- मातामहादिभिः सपिण्डनम् | " | ९ |
| पितृशोदाहादिकमेवमने देवान्तरे पुनः सपिण्डनमात्रानुष्ठानं न- | " | | मातुः सपिण्डनं पुत्रिकापुत्रेण मातामहेन सह कार्यम् | २४१ | २० |
| | | | अपुत्रायाः पत्याः सपिण्डनं सपिण्डनम् | २४२ | १२ |
| | | | अपुत्रस्य भर्तुः सपिण्डने पत्या अधिकारः | " | २० |
| | | | अपुत्रसपिण्डीकरणकार्याकार्य- विचारः | २४३ | ९ |

| विषयः | पृ० | पं० | पृ० | पं० |
|--------------------------------------|-----|-----|--|--------|
| मातुः सापिण्डघे गोत्रनिर्णयः | २६ | १ | पाततादीनामापं प्रायश्चित्तोत्तरं | १० |
| तत्र ब्राह्मणादिविवाहे मातुः | | | सपिण्डनम् | १९ |
| पितृगोत्रेण सपिण्डनैम् | २४४ | १ | पापेयश्चादम् | १९ |
| भासुरादिविवाहे मातुर्मातामह- | | | सपिण्डनोत्तरं स्वस्तिवाचनम् | २६ |
| गोत्रेण सपिण्डनम् | १७ | | सोदकुम्भश्चादम् | २९२ ४ |
| पुत्रिकाकरणेऽपि मातुर्माताम- | | | मातृपितृमरणे प्रथमाब्दे वज्र्यानि, | १९ |
| हगोत्रेण सपिण्डनम् | २३ | | वर्षमध्येऽन्यदीयैकोहिष्टादिनि- | |
| वैवाहिकसप्तमपदादवाकन्या- | | | राकरणनिषेधः | २९ |
| मरणे तत्सपिण्डने पित्रादीना- | | | वयमर्घ्येऽपि गयाश्चाद्धाम्यनुज्ञा | २९३ २७ |
| मधिकारः स्वगोत्रं च | २४६ | १ | नान्दीश्चाद्विचारः | २९४ १० |
| सप्तमोत्तरं तन्मरणे पत्यादीनां | | | तत्र बहुवृक्षानामानुलोभ्येन ज्ञातरः, | १२ |
| तत्सपिण्डनेऽधिकारः पति- | | | बहुवृक्षानां प्रातिलोभ्येनेव ना- | |
| गोत्रञ्च | ६ | | न्दीश्चाद्धमातरः | २९९ ९ |
| अन्वष्टकादिश्चाद्धे येन केनापि- | | | पार्वणादिश्चाद्धभोजने प्रायश्चित्तम् | २९७ २६ |
| सह सपिण्डीकरणे पार्ष्णीं श्व- | | | क्षत्रियादिश्चाद्धभोजने प्रायश्चित्तम् | २९८ ६ |
| श्रुतच्छवश्मृत्पासेव | २० | | आपदि शकल्य नवश्चाद्धादि- | |
| मातामहेन मातुःसापिण्ड्यकरणे- | | | भोजने प्रायश्चित्ताम् | १० |
| मातामहश्चाद्धस्य नित्यत्वम् | २४६ | ८ | आपदि अशकल्य नवश्चाद्धा- | |
| व्युत्क्रमसूतस्य सपिण्डीकरण- | | | दिभोजने प्रायश्चित्तम् | १४ |
| कार्याकार्यविषेकः | ११ | | अनापदि नवश्चाद्धभोजने प्राय- | |
| पित्रादित्रयाणां मध्ये केनापिसह | | | श्चित्तम् | १७ |
| सापिण्डघे पितृत्वप्राप्तिर्भवति | २४८ | ८ | श्चाद्धभोजननिषेधो | |
| मातुर्व्युत्क्रमेण मरणे सपिण्डी- | | | | |
| करणनिर्णयः | १२ | | सोऽपि च सांवत्सरिके एव न | |
| पितृकर्तृकपुत्रसपिण्डने विशेषः | २४९ | ९ | तु दद्यादौ | २९९ |
| पौत्रप्रपौत्रकसंज्ञासपिण्डनाच्चि- | | | प्रथमादिवर्षेषु श्राद्धभोजने अ- | |
| कारनिर्णयः | १ | | दिभोजनम् | |
| यतीनां प्रेतक्रियानिषेधः | २० | | मतान्तेण प्रायश्चित्तात्तरत्तन्वम् | |
| यतीनामेकादशेऽहनि केवलपा- | | | जामश्चाद्धे प्रायश्चित्तम् | २६० |
| र्षणविधिः | २६ | | साङ्ख्यिकश्चाद्धे प्रायश्चित्तम् | |
| यतीनां त्रिदशहजमात्रेणैव | | | ब्रह्मचारिणः कामतो नवश्चा- | |
| प्रेतत्वाभावः | २९० | १ | द्धादिभोजने प्रायश्चित्तम् | २२ |
| वृण्डत्रयनिर्वचनम् | २९१ | १ | ब्रह्मचारिणोऽकामतो नवश्चा- | |
| ब्रह्मचारिणां सपिण्डनांभावः | ८ | | द्धादिषु प्रायश्चित्तम् | २९ |
| शूद्रापुत्रस्य द्वित्रैः पित्रादिभिः | | | जामश्चाद्धे भोजने प्रायश्चित्तात्तरं | २६१ ३ |
| सपिण्डनाभावः | १० | | अनुकप्रायश्चित्तात्तरमावास्था- | |
| पतितादीनां प्रायश्चित्तात्पुं स- | | | दिश्चाद्धभोजने विशेषः | ३५ |
| पिण्डनाभावः | १४ | | ग्रन्थोपसंहारः | ९१ |



प्रासिस्थानम्—

चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय

.बनारस सिटी ।



श्राद्धकल्पलता शुद्धिपत्रम् ।

| अशुद्धम् | शुद्धम् | पृ० | पं० | अशुद्धम् | शुद्धम् | पृ० | पं० |
|--------------------|-----------------|-----|-----|------------------------------|----------------|-----|-----|
| अवाधीरताः | अवधीरिताः | ३ | ६ | सम्बन्धैः । पतितैः सम्बन्धैः | | | |
| पित्रुद्देशेन | पित्रुद्देशेन | ३ | १३ | | पतितैः | ४३ | ६ |
| स्वीकण | स्वीकरणं | ३ | २२ | समुद्रयात्री | समुद्रयात्री | ४४ | १ |
| फलमुखेनाऽह | फलमुखेनाऽऽह | ३ | २२ | शठः | शठः | ४६ | १२ |
| योग्याः | योग्या | ५ | ११ | निमग्नचत | निमग्नयेत | ४७ | १ |
| पुंसवचनचर्ष | पुंसवचने चर्ष | ७ | १६ | व्यावाये | व्यावाये | ५० | १८ |
| चोच्छेजे | चोच्छेजे | ९ | १३ | रूकमपि | मरूकमपि | ५६ | ५ |
| पितुरवति | पितुरेवेति | १३ | २३ | भूतृणं | भूतृणं | ५७ | २५ |
| रेवाऽधिरः | रेवाऽधिकारः | १४ | २७ | दुष्टाना | दुष्टयमाना | ६० | १२ |
| विशेषण | विशेषेण | १५ | ५ | अनिर्देशा | अनिर्देशा | ६० | १३ |
| [सौमिके | [सौमिक | १५ | १६ | जविनार्थं | जीवनार्थं | ६३ | ६ |
| अष्टम्यान्वष्टक्यं | अष्टम्यन्व | | | यान्युच्यते | यान्युच्यन्ते | ६४ | २ |
| | ष्टक्यं | १८ | १६ | दाहिन्नपदं | दौहिन्नपदं | ६५ | १ |
| तृतीयाया | तृतीयायां | २० | २६ | विकलं | विकलं | ६६ | १ |
| समवाऽऽनु | समवाऽऽऽनु | २१ | १७ | मण्डले | मण्डलम् । | ६६ | १३ |
| नामनि | नामनी | २४ | २७ | निरूपणम् । | निरूपणम् । | ६७ | १ |
| समाकृष्टं | समारुष्टं | २५ | ९ | प्रदापयेत् । | प्रददयेत् । | ६९ | १२ |
| ननु | ननु | २२ | २० | गन्धामा | गन्धमा | ७० | २३ |
| तद्भक्तये | तद्भक्तया | २६ | १० | प्रशस्ता | प्रशस्ताः | ७१ | ६ |
| प्रेयुक्षये | पस्युःक्षये | २६ | १४ | अंकपुष्पम् | अंकपुष्पम् | ७१ | २१ |
| स्मान्मृते | स्यान्मृते | २७ | ९ | परिवेशन | परिवेषण | ७४ | ४ |
| कार्याकार्येऽनि | कार्याऽकार्येनि | २७ | १३ | देवान् धरतोर्ध्वं | देवानधधोर्ध्वं | ७७ | ११ |
| अधिराजै | अधिराज | ३४ | ३३ | मन्मोन्म्यं | मन्मोन्म्य | ७९ | १६ |
| तद्भर्ता | तद्भर्ता | ३७ | ८ | निषिद्धीः | निषिद्धाः | ८४ | २४ |
| ह्रीभेभदा | ह्रीभेभदा | ४२ | १६ | उक्तेऽग्निना | उक्तेऽग्निना | ८४ | २५ |
| अनधियानस्य | अनधीयानस्य | ४३ | १३ | निषिद्धी | निषिद्ध | ८६ | २६ |
| विपणेन | विपणेन | ४३ | ६ | | | | |

शुद्धिपत्रम् ।

| अशुद्धम् | शुद्धम् | पृ० | पं० |
|----------------------|-----------------|-----|---------|
| ह्रस्वाऽप्रक्षिप्तम् | दशवाप्रदाक्षि- | | |
| | णम् | १० | १९ |
| उपस्थितैपितुः | उपस्थितापितुः | ८४ | २१ |
| सर्वक्षे | सर्वत्रै | ६४ | २२ |
| नभस्वाऽपरः | नभस्यस्याः | | |
| | ऽपरः | ९६ | १५ |
| द्यत्रादिना | द्यत्रादिना | १०५ | १८ |
| विद्येन | विद्येन | १०५ | २० |
| पितृणां | पितृणां | १०७ | ४ |
| आमन्वाद्या | आमन्वाद्या | १११ | २१ |
| प्रदर्शानार्थाः | प्रदर्शनार्थाः | ११२ | २२ |
| अमावास्याऽदि | अमावास्याः | | |
| | दि | ११३ | १४ |
| दधि बद्धरा | दधिबद्धरा | ११८ | १० |
| चापराम् । | चापरम् । | १२३ | ८ |
| पार्षण | पार्षण | १२५ | हेडिङ्ग |
| आहुय | आहुय | १२५ | ३ |
| गायत्री | गायत्री | ११ | १६ |
| पनैरेखा | पनैरेखा | ११ | १८ |
| सूत्रदान | सूत्रदान | ११ | २२ |
| पिण्डार्च | पिण्डार्च | ११ | २३ |
| येअमिदग्वा | ये अमि- | | |
| | द्वग्वा | १२८ | १६ |
| विश्वस | विश्वसे | १२९ | १ |
| पैठिनसि | पैठिनसिः | ११ | ६ |
| पितृन्वन्तपं | पितृन्वन्तपं | १३४ | ९ |
| विषयः | निर्णयः | | |
| समर्थेन | समर्थेन | १३९ | १५ |
| कदाचन | कदाचन | १४० | १८ |
| प्रायश्चित्त | प्रायश्चित्त | १४१ | ११ |
| ब्राह्मणैर्हताः । | ब्राह्मणैर्हताः | १४३ | २ |
| भृग्वृग्म्यानाश | भृग्वृग्म्यानाश | ११ | ८ |

| अशुद्धम् | शुद्धम् | पृ० | पं० |
|---------------------------|---------------|-----|---------|
| मनुस्यकर्म | मनुस्यकर्म | १४७ | हेडिङ्ग |
| निधि | निर्ण० सि० | १४७ | २४ |
| त्यमेतेमैने | त्यमेतेमैने | १४८ | २ |
| और्ध्वदोदिकं | और्ध्वदोदिकं | १४९ | २७ |
| व्रते | व्रूते | १५२ | २१ |
| कथाधिदिग्वा | कथाधिदिग्वा | १५५ | ३ |
| हृष्टवा | हृष्ट्वा | १५७ | ११ |
| माचष्ट | माचष्टे | १५८ | १ |
| निःक्रमणं | निष्क्रमणम् | १५९ | २३ |
| सूतिकी | सूतिकी | १६० | २३ |
| कौपानिकान्न | कौपोनिकान्न | १६१ | १ |
| मान्त्रिता । | मन्त्रिताः । | १६६ | २६ |
| स्यदि | यदि | १७० | २४ |
| मायुध्मन्ती | मायुध्मती | १७१ | ४ |
| कुर्यादिदिसिर्ता | कुर्यादोष्पि- | | |
| | ताश्च | ११ | ४ |
| निर्वापदेश | निर्वापदेश | १७३ | हे० |
| देवतायनं | देवतायतनं | ११ | २५ |
| बोद्धकं | बोद्धकं | १७५ | १० |
| अनुपनीतापिण्ड | अनुपनीतः | | |
| | पिण्ड | १७७ | हे० |
| अनुपनीते | अनुपनीत | ११ | २१ |
| तदौर्ध्व | तदौर्ध्व | १७९ | १६ |
| सप्तध | सप्तधा | १८२ | ६ |
| शुद्धिर्भषति | शुद्धिर्भषति | ११ | ६ |
| विचक्षणः । | विचक्षणाः । | ११ | ९ |
| स्पर्शदोषो | स्पर्शदोषो | ११ | ११ |
| नक्षत्रमि | नक्षत्रमभि | | |
| नक्षत्रार्द्धं कुर्यात् । | नक्षत्रा- | | |
| | र्द्धं यद्य- | | |
| स्यं नक्षत्रार्द्धं | न्तरि- | | |
| यद्यन्तरितं | तं | १८३ | २१ |

शुद्धिपत्रम् ।

| अशुद्धम् | शुद्धम् | पृ० पं० | अशुद्धम् | शुद्धम् | पृ० पं० |
|-----------------|--------------|---------|----------------|----------------|---------|
| नवव | नववै | १८४ २७ | निमित्तन | निमित्तन | २२६ ८ |
| दशमै | दशमे | ॥ २७ | कालेषु | कालेषु | ॥ २६ |
| दशे | दशा | ॥ २७ | मन्यते | मन्वते | २२७ १७ |
| मनसी | मानसी | १९२ २ | वचदर्शनात् । | वचनदर्श- | |
| शपदार्थ | शपादार्थ | १९३ ६ | | नात् । | २२९ १५ |
| जाह्वया | जाह्वयाः | १९९ २८ | माद्विकं | माद्विकं | ३३१ ६ |
| सलिलेतिस्थः | सलिले- | | श्रत्वा | श्रुत्वा | ॥ १९ |
| | स्थितः | ॥ २८ | तस्माद् | नस्माद् | ३४३ २ |
| शुद्धिलेपेनै | शुद्धिलेपेन | २०३ ३ | इकोद्दिष्टं | इकोद्दिष्टं | ॥ ६ |
| समापयेत् । | समापयेत् । | २०६ २५ | माचारानगर्तं च | माचारानु- | |
| पिण्डा० | पिण्डाः | २०९ २० | गर्तं च | २४७ २५ | |
| मास | मासे | ॥ २६ | बहुनाः । | बहुना । | २५१ ७ |
| एकदशे | एकादशे | २१० १४ | सपिण्ड्यान्ते- | सपिण्ड्यान्ते- | |
| एकोद्दिष्ट | एकोद्दिष्ट | २११ २४ | स्याद्दं | दं | २५४ ६ |
| वस्तुनि | वस्तुनि | २१३ १६ | अपदार्थत्वात् | अपदार्थत्वात् | ॥ २४ |
| मोचयेद् | मोचयेद् | २१४ १६ | कार्यायनीये | कार्यायनीये | २५५ १ |
| प्यर्थवत्सरम् । | प्यर्थवत्स- | | परमेव | परमेव, | २५६ ५ |
| | रम् । | २१९ १० | भ्युपगमाभावा- | भ्युपगमभावा- | |
| श्राद्ध | श्राद्धं | २२० १९ | देवन | देन | ३५६ २९ |
| संवादाद्दं | संवादादद्दं | २२२ २० | तदूर्द्धं | तदूर्द्धं | २५८ १३ |
| ऽअनमिस्तदा | ऽअमिस्तदा | २२३ ४ | बहिःश्राद्धं | बहिः श्राद्ध | २५९ ८ |
| दाहितामिर्यं | दाहितामिर्यं | २२३ १२ | तदूर्द्धं | तदूर्द्धं | ॥ १६ |
| आहितामिः | आहितामिः | ॥ २४ | नन्दकीर्त्या | नन्दः कीर्त्या | २६१ १ |

शुद्धिपत्रं समाप्तम् ।

तान्सर्वान्यजमानो वै श्राद्धं कुर्वन्वथाविधिः ।
 समाप्य यजते वत्स येन येन शृणुष्व तत् ॥
 अन्नप्रकिरणं यच्च मनुष्यैः क्रियते भुवि ।
 तेन तृप्तिमुपायान्ति ये पिशाचत्वमागताः ॥
 म्बुदम्बुस्नानवस्त्रोत्थं भूमौ पतन्ति पुत्रक ।
 तेन ये तरुतां प्राप्तास्तेषां तृप्तिः प्रजायते ॥
 यास्तु गन्धाम्बुकणिकाः पतन्ति धरणीतले ।
 ताभिराप्यायनं तेषां ये देवत्वं कुले गताः ॥
 उद्धृतेषु तु पिण्डेषु याश्चास्यकणिका भुवि ।
 ताभिराप्यायनं तेषां ये तिर्यक्त्वं कुले गताः ॥
 येचाऽदन्ताः कुले बाळाः क्रियाऽयोग्याः ह्यसंस्कृताः ।
 विपद्नास्ते तु विकिरसंमार्जनतिलाग्निनः ॥
 भुक्त्वा चाचमनं यच्च जलं यच्चाङ्घ्रिसेचने ।
 ब्राह्मणानां तथैवाऽन्ये तेन तृप्तिं प्रयान्ति वै ॥
 तेनाऽनेककुले तत्र तत्तद्योन्यन्तरं गताः ।
 प्रयान्त्याप्यायनं वत्स सम्यक्श्राद्धक्रियावताम् ॥
यथा गेषु प्रनष्टां गां वत्सो विन्दति मातरम् ।
नामगोश्रस्वधामन्त्राः पितृणाम्प्रापकास्तथा ॥
 नामगोत्रं पितृणान्तु प्रापकं ह्यव्यकल्पयोः ।
 नाममन्त्रास्तथा देशा भवान्तरगतानपि ॥
 प्राग्निनः प्रीणयन्त्येते तदाहारत्वमागतान् ।
 देवो यदि पिता जातः शुभकर्मानुषोमतः स
तस्याऽन्नमसृतं भूत्वा देवत्वेऽप्यनुगच्छति ।
 मर्ष्यत्वे भोक्तृरूपेण पशुत्वे च तृणम्भवेत् ॥
श्राद्धात्तं वायुरूपेण नगत्वेऽप्युपतिष्ठति ।
 पानं भवति ब्रह्मत्वे घ्नत्वे च तथाऽऽभिषम प्र

श्राद्धकल्पलतायाः—

दत्तुं जस्वे तथा मांसं प्रेतस्वे रुधिरौदकम् ।

६ । मानुषस्वेऽन्नपानादि नानाभीगकरं तथा ॥

अकरणे द्रोषोऽप्यादित्यपुराणे—

न सन्ति पितरंश्चेति कृत्वा मनसि वर्तते ।

श्राद्धं कुरुते यस्तु तस्य रक्तं पिबन्ति ते ॥

कूर्मपुराणेऽपि—

अमाहास्यादिने प्राप्ते गृहद्वारं समाभिताः ।

द्युयुताः प्रपश्यन्ति श्राद्धं वै पितरो नृणाम् ॥

यावदस्तमयम्भानोः क्षुत्पिपासास्तमाकुलाः ।

ततश्चाऽस्तङ्गते भानौ निराशा दुःस्वसंयुताः ॥

निःश्वस्य सुचिरं यान्ति गर्हयन्तः स्ववंशजम् ।

जलेनाऽपि च न श्राद्धं शाकेनाऽपि करोति वः ॥

अमायां पितरस्तस्य श्रापं दत्वा प्रयान्ति च ।

मार्कण्डेयेऽपि—

न तत्र बीरा जायन्ते नाऽऽरोग्यं न क्षतायुषः ।

न च श्रेयोऽधिगच्छन्ति यत्र श्राद्धं विवर्जितम् ॥

अथ श्राद्धभेदाः । तत्र विश्वामित्रः—

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं वृद्धिश्राद्धं सपिण्डनम् ।

पार्ष्णश्चेति विज्ञेयं गोष्ठ्यां शुद्धार्घ्यमष्टमम् ॥

कर्माङ्गं नवमं प्रोक्तं देविकं दशमं स्मृतम् ।

यात्रास्वेकादशमोक्तं पुष्ट्यर्थं द्वादशं स्मृतम् ॥ इति

एतच्छ्रुत्वानि भविष्यपुराणे—

• अहन्यहनि यच्छ्राद्धं तन्नित्यमिति कीर्तितम् ।

वैश्वदेवविहीनं तदशक्ताबुद्धकेन तु ॥

एकोदिष्टम् यच्छ्राद्धं तन्नैमित्तिकमुच्यते ।

तदप्यदैवं कर्तव्यमयुष्मान् भोजयेद्विजान् ॥

कामाय विहितं काम्यमभिमेतार्थसिद्धये ।
 पार्वणेन विधानेन तदप्युक्तं स्वगाधिप ॥
 वृद्धौ यत्क्रियते श्राद्धं वृद्धिश्राद्धं तदुच्यते ।
 सर्वम्प्रदक्षिणङ्कार्यं पूर्वाण्ये तूपवीतिना ॥
 गन्धोदकतिर्कैर्युक्तं कुर्यात्पात्रंचतुष्टयम् ।
 अर्घ्यार्थं पितृपात्रेषु प्रेतपात्रं प्रसेचयेत् ॥
 ये समाना इतिद्वाभ्यामेतज्ज्ञेयं सपिण्डनम् ।
 नित्येन तुल्यं शेषं स्यादेकोद्दिष्टं स्त्रिया अपि ॥
 अमावास्यां यत्क्रियते तत्पार्वणमिति स्मृतम् ।
 क्रियते वा पार्वणि यत्तत्पार्वणमिति स्थितिः ॥
 गोष्ठ्यां यत्क्रियते श्राद्धं गोष्ठ्यश्राद्धं तदुच्यते ।
 बहूनां विदुषां संपत्सुत्वार्यं पितृवृत्तये ॥
 क्रियते शुद्धये यत्तु ब्राह्मणानान्तु भोजनम् ।
 शुद्ध्यर्थमिति तत्प्रोक्तं वैनतेय मनीषिभिः ॥
 निषेककाले सोमे च सीमन्तोन्नयने तथा ।
 ज्ञेयम्पुंसवनं च श्राद्धङ्कुर्यात्प्रमेव च ॥
 देवानुद्दिश्य यच्छ्राद्धं तत्तु दैविकमुच्यते ।
 हविष्येण विशिष्टेन सप्तम्यादिषु यत्नतः ॥
 गच्छन्देशान्तरं यच्च श्राद्धङ्कुर्यात्तु सर्पिषा ।
 वानार्थमिति तत्प्रोक्तं प्रवेशे च न संशयः ॥
 शरीरोपचये श्राद्धमर्थोपचय एव च ।
 पुष्ट्यर्थमेतद्विज्ञेयमौपचायिकमुच्यते ॥

वृद्धिः पुत्रजन्मविवाहप्रदिः । नित्येनावश्यकनैकोद्दिष्टेन पार्वणेन
 च तुल्यं शेषमङ्गातं स्यात् ,, सपिण्डीकरणस्योभयात्प्रकत्वात् ।
 पार्वणांशे पार्वणेनैकोद्दिष्टांशे एकोद्दिष्टेन सममित्यर्थः । “एकोद्दिष्टं
 स्त्रिया अपि” इत्येकोद्दिष्टं सपिण्डीकरणमेवोक्तम् । प्रसङ्गात्

स्त्रीसम्बन्धेनाऽपि उभयात्मकस्यैकदेशेन निर्देशः । “क्रियते वा पर्व-
णि” इति पर्वशब्दः संक्रान्तादिपरः, अर्मावास्यायाः पूर्वस्युक्तत्वात् ।

वृद्धवसिष्ठः—

प्रतिपर्व भवेद्यस्मात्प्रोच्यते पार्वणन्तु तत् ।

तच्च त्रिपुरुषोद्देशेन स्यात् ।

अथ श्राद्धाऽधिकारिणः । शङ्खः—

पितुः पुत्रेण कर्तव्या पिण्डदानोदकक्रिया ।

पुत्राभावे तु पत्नी स्यात् पत्न्यभावे तु सोदरः ॥

गौतमः—

“पुत्राऽभावे सपिण्डा मातृसपिण्डाः शिष्याश्च दद्युस्तदभावे
ऋत्विगाचार्यौ” ।

अत्र शङ्खवचनाऽनुरोधेन पुत्राऽभावे पत्नी तदभावे सपिण्डाः,
इति क्रमः ।

पुत्राश्च द्वादशविधा औरसादयः ।

तत्र याज्ञवल्क्यः—

औरसो धर्मपत्नीजस्तत्समः पुत्रिकामृतः ।

क्षेत्रजः क्षेत्रजातस्तु सगोत्रेणेतरेण वा ॥

गृहे प्रच्छन्न उत्पन्नो गूढजस्तु सुतः स्मृतः ।

कानीदः कन्यकाजातो मातामहसुतो मतः ॥

अज्ञतायां ज्ञतायां वा जातः पौनर्भवः स्मृतः ।

दद्यान्माता प्रिता च वा स पुत्रो दत्तको भवेत् ॥

क्रीतश्च ताभ्यां विक्रीतः कुत्रिमः स्यात् स्वयंकृतः ॥

दद्यात्प्रा तु स्वयन्दत्तो गर्भे विभः सहोदजः ।

उत्पद्यते गृह्यते चस्तु सोऽपविद्धो भवेत्सुतः ॥

पिण्डदोऽन्नहरश्चैषां पूर्वाभावे परः परः । (२-१२८-१३२)

इति पुत्रप्रतिनिधयो युगान्तरे ब्राह्मणः । कर्त्तव्यं तु दत्तौरसावेन ।

श्रीद्धाधिकारिणः ।

दत्तौरेसेतरेषां तु पुत्रत्वेन परिग्रहः ।

इतिकळिवर्षप्रकरणे चन्द्रिकायां निषिद्धत्वात् ।

स्मृतिसङ्ग्रहेऽप्युक्तम्—

पुत्रः पौत्रश्च तत्पुत्रः पुत्रिकापुत्र एव च ।

प्रभो भ्राता च तज्जश्च पिता माता स्नुषा तथा ॥

भगिनी भागिनेयश्च सपिण्डः सोदकस्तथा ।

असन्निधाने पूर्वेषामुत्तरे पिण्डदाः स्मृताः ॥ इति ।

विष्णुपुराणे—

पुत्रः पौत्रः प्रपौत्रश्च तदूर्ध्वं भ्रातृसंततिः ।

सपिण्डसन्ततिर्वाऽपि क्रियाभाक् नृप जायते ॥

तेषामभावे सर्वेषां समानोदकसन्ततिः ।

मातृपक्षसपिण्डेन सम्बद्धो यो जनेन वा ॥

कुलद्वयेऽपि चोच्छ्रमे स्त्रीभिः कार्या क्रिया नृप ।

तत्सङ्घातगतैर्वाऽपि कार्या प्रेतस्य संस्क्रिया ॥

शङ्खः—

भार्यापिण्डं पतिर्दद्याद्भर्त्रे भार्या तथैव च ।

श्वश्रादेश्च स्नुषा चैव तदभावे तु सोदरः ॥

एतदपि पुत्राय भावविषयम् ।

सर्वाभावे स्त्रियः कुर्युः स्वभर्तृणाममन्त्रकम् ।

इतिवचनात् ।

मार्कण्डेयपुराणे—

सख्युक्तसम्बन्धोश्च सखाऽपि, श्वशुरस्य च ।

जामाता केहतः कुर्यादस्विकम्पैतुमधिकम् ॥ इति ।

सर्वाऽभवे तु नृपतिः कारयेत्तस्य रिचयतः ।

तज्जातीयेन वै (१) सभ्यभ्दाहायसिककाः क्रियाः ।

सर्वेषामेव वर्णानां धान्यवो नृपतिर्यतः ॥ इति ।

(१) 'वैषम्यात्' अ. 'वै साम्या' क. 'King the King of all castes'

श्राद्धकल्पकतायां—

स्कन्दपुराणेऽपि—

सर्वोऽभावे स्त्रियः कुर्युः स्वमर्तृणाममन्त्रकम् ।

पित्रोरनुपनीतोऽपि विदध्यादौरसः सुतः ।

और्ध्वदेहिकमन्ये तु संस्कृताः श्राद्धकारिणः ॥

औरसोऽनुपनीतोऽपि पित्रोर्मातापित्रोरौर्ध्वदेहिककुर्यात् ।

तदाह मनुः—

न ह्यस्मिन्पुत्र्यते कर्म किञ्चिदामौञ्जिबन्धनात् । (१-१७१)

नाभिष्याहारयेद्भक्ष्यं स्वधानिनंयनाहते ॥ इति । (२-१७२)

स्वधानिनयनं प्रेतकर्म ।

नाभिष्याहारयेद्भक्ष्यं यावन्मौञ्जी न बध्यते ।

मन्त्राननुपनीतोऽपि पठेदेवैक औरसः ॥ इति ।

अन्ये तु (१)क्षेत्रजादिपुत्रभ्रातृतत्पुत्राश्च संस्कृता उपनीताः
श्राद्धकारिणः स्युः, औरसग्रहणसामर्थ्यात् । किं पुत्रो जन्मनः
प्रभृत्यधिकारी ? इत्यत आह स एव—

चौलाद्याद्याब्दिकाद्वारुं न कुर्यात्पैतृमेधिकम् ।

प्रथमवार्षिकचूडाकरणात्पूर्वं पैतृमेधिकञ्च कुर्यात् ॥

तदाह सुमन्तुः—

पुत्रश्चापिपत्तिमात्रेण संस्कुर्याद्विणमोचनात् ।

पितरन्नाब्दिकाश्चौलात्पैतृमेधेन कर्मणा ॥

नन्वसौ मन्त्रेण कुर्यान्नाऽमन्त्रकमित्याह स एव—

तृतीयवत्सरादूर्ध्वं मन्त्रवत्तत्समाचरेत् ।

अनुपनीतस्तृतीयवत्सरादूर्ध्वं तत्पैतृमेधिककूर्मं मन्त्रवन्मन्त्र-
युक्तमाचरेत् । तृतीयवत्सरादित्येतच्चौलोपलक्षकम् ।

तदाह सुमन्तुः—

अनुपनीतोऽपि कुर्वीत मन्त्रवत्पैतृमेधिकम् ।

यद्यसौ कृतचूडः स्नाद्यदि स्याच्च त्रिवत्सराः ॥

“नक्षत्रमनुव्रजते” इति यन्मनुवचनम्, ‘नाऽभिषयाहारवेद’
इति यत्सुमनुवचनं, तद्व्यं तृतीयवर्षकृतचूडाविषयम् ।

यत्तु—

कुर्यादनुपनीतोऽपि श्राद्धमेकोऽपि यः सुतः ।

पितृयज्ञाहुतिं पाणौ जुहुयान्मन्त्रपूर्वकम् ॥ इति,
तदपि तृतीयवर्षकृतचूडाविषयम् । यत्तु—

कृतचूदोऽनुपेतस्तु पित्रोः श्राद्धं समाचरेत्
उदाहरत्स्वधाकारं न तु वेदाक्षराण्यसौ ॥

इति स्मृतिप्रसंगेऽहकारवचनम्, तत्(१) प्रथमवर्षकृतचूडाविषयम्
नन्वनुपनीतः कृत्स्नं मन्त्रवत्कुर्याद् उक्तैकदेशमित्यत आह—

असंस्कृतश्च पत्नी च यथाविध्येव मन्त्रवत् ।

अनुपनीतः पत्नी च-यद्यत्कर्म मन्त्रवत्कुर्यादिति विहितं,
तदेव मन्त्रवत्कुर्यात् ।

तदाह कात्यायनः—

असंस्कृतेन पत्न्या च क्षत्रिदानं समन्त्रकम् ।

कर्तव्यमितरत्सर्वं कारयेदन्यमेव हि ॥ इति

मनुः—

पितृयज्ञाहुतिं पाणौ जुहुयान्मन्त्रपूर्वकम् ।

स्कन्दपुराणे—

यज्ञेषु मन्त्रवत्कर्म पत्नी कुर्याद्यथाविधि ।

तदौर्ध्वदेहिके सा हि मन्त्रार्हा धर्मसंस्कृता ॥ इति ।

यत्तु—

सर्वाऽभावे स्त्रियः कुर्युः स्वभर्तृणाममन्त्रकम् ।

तदधर्मासुरादिविवाहोऽस्त्रीविषयम् ।

तथाच स्मृतातपः—

धर्मवैविवाहैरुदा.या सा पत्नी परिकीर्तिता ।

सहाऽधिकारिणी श्लेषा यज्ञादौ धर्मकर्मणि ॥

(१) 'तद्व्यं' क. ख. ग.

श्राद्धकल्पलतायां-

ऋष्यङ्गीता तु या नारी न सा पत्न्यभिबीयते ।

न सा दैवे च पित्र्ये स्यादार्त्तीर्ता मुनयो निदुः ॥

ननु ब्रह्मचारी कथमौर्द्धेहिकमाचरेद् व्रतभङ्गादित्यत आह-

मातापित्रोरुपाध्यायाऽऽचार्ययोरौर्ध्वदेहिकम् ।

कुर्वन्मातामहस्याऽपि व्रती न भ्रश्यते व्रतात् ॥

*colyle
low not
much more
→ doing
parental
rights*

अत्रात्मकस्य ब्राह्मणस्य वा वेदैकदेशस्य वेदाङ्गानां वा अध्या-

पयिता उपाध्यायः । उपनयनमात्रकृत्वा साङ्गवेदाऽध्यापयिता

आचार्यः । मात्रादीनामौर्ध्वदेहिकं कुर्वन् व्रती ब्रह्मचारी व्रताद्

उपनयननिमित्तभैक्षाचरणादिव्रतान्न भ्रश्यते भ्रष्टो न भवति ।

तदाह शाङ्खस्वयः--

आचार्यपित्रुपाध्यायाभिर्हृत्याऽपि व्रती व्रती । (३-१५) इति ।

यविध्यपुराणे--

व्रतस्थोऽपि यथा पुत्रः पितुः कुर्यात् क्रियां नृप ।

तथा मातामहस्याऽपि दौहित्रः कर्तुमर्हति ॥

अत्र दौहित्रशब्देन पुत्रीकृतो विवक्षितः ।

यत्तु कात्यायनवचनम्--

*Father &
etc or not
compleat
his work
ky →*

अपुत्रायाः पतिर्दद्यात्सपुत्रायां न कुत्रचित् ।

न पुत्रस्य पिता दद्यान्नाऽनुजस्य तथाऽग्नयः ॥

यत्तु बौधायनवचनम्--

पित्रा श्राद्धं कर्तव्यं पुत्राणां वै कथञ्चन ।

आत्रा चैव न कर्तव्यं भ्रातृणाञ्च कनीयसाम् ॥ इति,

तदधिकारिपुत्रादिसंज्ञावविषयं स्नेहविहीनविषयं वा ।

बौधायनः--

यदि स्नेहेन कुर्वीत सपिण्डीकरणं विना ।

गयावान्तु विक्षेपेण ज्यायात्तपि समाचरेत् ॥

असत्यधिकारिणि पित्रादिभिरपि कर्तव्यम् ।

तदुक्तं सङ्ग्रहे—

उच्छ्रयवाग्धवं भेतं भिता भ्राताऽथवाऽग्रजः ।

जननी'वाऽपि संस्कुर्यान्महदेनोऽन्यथा भवेत् ॥

बीजिक्षेत्रिणोर्विषये मरीचिः—

स्वमोत्रे वाऽन्यमोत्रे वा यो भवेद्विधवासुतः ।

पिण्डश्राद्धविधानश्च क्षेत्रिणः प्राग्निनिर्वपेत् ॥

बीजिने तु ततः पश्चात्, क्षेत्री जीवति चेत् कश्चित् ।

बीजिने दशुरादौ च मृते पश्चात्प्रदीयते ॥

पुत्रिकापुत्रश्राद्धे विशेषमाह मनुः—

मातुः प्रथमतः पिण्डं निर्वपेत्पुत्रिकासुतः ।

द्वितीयं तु पितुस्तस्यास्तृतीयमपि (१) तत्पितुः ॥ (९-१४०)

तस्य मातामहस्य पितुः (१) प्रपितामहस्येत्यर्थः । मातामह एव

हि पुत्रिकापुत्रस्य पिता ।

अभ्रातृकां प्रयच्छामि तुभ्यं कन्यामलङ्कृताम् ।

अस्यां यो जायते पुत्रः स मे पुत्रो भविष्यति ॥

इति स्मृतेः ।

उक्त्वाः—

मातामहं तु मात्रादि पैतृकं पितृपूर्वकम् ।

मातृतः पितृतो यस्मादाधिकारोऽस्ति धर्मतः ।

विशेषमाह ऋष्यशृङ्गः—

यस्मादुभयसम्बन्धी पुत्रिकायास्तुतो ह्यसौ ।

एतदुत्पादकस्य पितुः पुत्रान्तराऽभावे ह्येयम् । पुत्रवति तु

जनके मातामहस्यैवांशहरस्तर्पणश्राद्धादिर्मदो न पितुरेवेति । यः

पुनर्धर्महारी दौहित्रस्तेन अवश्यं नवश्राद्धायपि कर्तव्यम् ।

मातामहं नवश्राद्धकर्मण्यं धनहारिणा ।

दौहित्रेणाऽर्घ्यनिष्कृष्यै कर्तव्यं विधिबत्सदा ॥

(१) 'तृतीयं तत्पितुः पितुः' मनुपुस्तके ।

*Appoints
son's father
to the
mother's
father*

*apparently
son should do
his own share
for the mother's
and his own
no other
share
is it...*

आदेहपतनात्कुर्यात्तस्य पिण्डोदकक्रियाम् ।
 पतितस्य दाहोर्ध्वदेहिकश्राद्धादौ विशेषो बसिष्ठेनोक्तः—
 पतितानां न दाहः स्यान्नान्तेष्टिर्नाऽस्थिसंचयः ।
 नचाश्रुपातः पिण्डश्च कार्यं श्राद्धादिकं क्वचित् ॥
 एतानि पतितानां तु 'यः' करोति विमोहितः ।
 तप्तकृच्छ्रद्वयेनैव तस्य युद्धिर्नचाऽन्यथा ॥

पतिते पितरि पितामहश्राद्धं कार्यमित्युक्तं षट्त्रिंशन्मते—
 वृद्धौ तीर्थे च संन्यस्ते ताते च पतिते सति ।
 येभ्य एव पिता दद्यात्तेभ्यो दद्यात्तु वै सुतः ॥ इति ।
 पतिते पितरि जीवति मृते चैतत्समानमेव हेमद्वी—
 ब्राह्मणादिहते ताते पतिते सङ्गवर्जिते ।
 व्युत्क्रमाच्च मृते देयं येभ्य एव ददात्यसौ ॥ इति ।

अत्राऽपरो विशेषो दिवोदासप्रकाशे देवल्लेनोक्तः—
 माता म्लेच्छत्वमापन्ना पिता वाऽपि कदाचन ।
 न श्राद्धं स्रुतकश्चैव इत्येवं देवलोऽब्रवीत् ॥
 पितरं विष्णुमुच्चार्य तदूर्ध्वञ्च पितामहम् ।
 तृतीयञ्च ततो ब्रूयात्पिण्डान् दद्यात्पृथक् पृथक् ॥
 त्रयाणां मध्ये एकोऽपि चेन्म्लेच्छत्वमापकास्तदा तस्य स्थाने
 विष्णोरुच्चारः । एवं मात्रादीनामप्युहनीयमिति ।

अथ जीवत्पितृकश्राद्धाऽधिकारनिर्णयः । तत्र कात्यायनः—
 सपितुः पितृकृत्येषु अधिकारो न विद्यते ।
 न जीवन्तमतिक्रम्य किंश्चिद्दद्यादिति श्रुतिः ॥

अत्राऽपवादो मैत्रायणीयपरिशिष्टे—
 उद्गाहे पुत्रजनने पिण्डेषु सर्गैर्मिके मत्से ।
 तीर्थे ब्राह्मण आयाते षडेते जीवतः पितुः ।
 एते षट्काला इत्यर्थः । केचिद्दुद्गाहोऽत्र द्वितीयादिः, प्रथमो-
 द्गाहे पितुरेवाऽधिरः । तदुक्तम्—

नान्दीश्राद्धं पिता कुर्यादाद्ये पाणिग्रहे बुधः ।

अत ऊर्ध्वं प्रकुर्वीत स्वयमेव तु नान्दिकम् ॥

इत्याहुः । तत्र, प्रथमोद्वाहेऽपि पितुर्जीवत्पितृकत्वेन पुत्रोद्वाहप्रयुक्तश्राद्धानधिकारप्रसङ्गात् । तस्मादुद्वाहप्रयुक्तं नान्दीश्राद्धं यस्य यदा प्राप्तं तेन तदा कर्तव्यमित्यविशेषणं विधीयते, सञ्ज्ञाकाभावात् । तत्र प्रथमे पितुरेव प्राप्तमिति तस्याऽपि जीवत्पितृकत्वे भवति । द्वितीयादौ तु पुत्रस्यैवेति तस्याऽपि जीवत्पितृकत्वे भवत्येष तदिति यथास्थितमेव साधीय इति । परिशिष्टचन्द्रिकायां प्रथमविवाहस्य संस्कारत्वाद् द्वितीयविवाहे न श्राद्धम् । अत एव ब्रह्मपुराणे—

सर्वे विद्याव्रतस्नाता विवाहा ब्राह्मणादयः ।

इतिभिषाच—

नान्दीमुखेभ्यः श्राद्धन्तु पितृभ्यः-कार्यमुद्धये ।

ततो विवाहः कर्तव्यः शुद्धः शुद्धसुतप्रदः ॥

इति स्नातकस्यैव विवाहाः श्राद्धकर्तव्यतोपदेशादित्युक्तम् । पित्र्येष्ट्यां चातुर्मास्येषु तथा पिण्डपितृयज्ञे च । सौमिके मसौमादौ. पुरोडाशात् पिण्डदाने च ।

मनुः—

ध्रियमाणे तु पितरि पूर्वेषामेव निर्वपेत् ।

विप्रवद्वापि तं श्राद्धे स्वकं पितरमाशयेत् ॥ (३-२२०)

पिता यस्य तु ह्यतः स्याज्जीवेश्वाऽपि पितामहः

पितुः स नाम सङ्कीर्त्य कीर्तयेत्पितामहम् ॥ (३-२२१)

पितामहो वा तच्छ्राद्धं भुञ्जीतेत्यब्रवीन्मनुः । (३-२२२)

पूर्वेषां पितामहादीनाम् । पितुः स नाम सङ्कीर्त्य अस्मत्पितुः पितामह इति स्वपितामहनाम् पिण्डदानादिषु सङ्कीयादित्यर्थः ।

भृशिक्यपुराणे—

जीवमाने ज्ञ देवं स्याद्यस्माद्भरतसप्ततम् ।

तस्माज्जीवत्पिता कुर्याद् द्वाभ्यामेव न संशयः ॥

विष्णुः--(७८, १-६)

“पितरि जीवति यच्छ्राद्धं कुर्याद्येषां पिता कुर्याद्येषां कुर्यात् ।
पितरि पितामहे च जीवति येषां पितामहः । पितरि प्रितम्भे
प्रपितामहे च जीवति नैव कुर्यात् । यस्य पिता प्रेतःस्यात्स पित्रे
पिण्डं निधाय पितामहात्परं द्वाभ्यां दद्यात् । यस्य पिता पितामहः
इव प्रेतो स्यातां स ताभ्यां पिण्डौ दत्त्वा पितामहपितामहाय द्वा-
भ्यां दद्यात् । यस्य पितामहः प्रेतः स्यात्स तस्मै पिण्डं निधाय प्रपिता-
महात्परं द्वाभ्यां दद्यात् । यस्य पिता प्रपितामहश्च प्रेतो स्यातां स
पित्रे पिण्डं निधाय पितामहात्परं द्वाभ्यां दद्यात्” इति ।

जीवतपितृकेन आश्विनशुक्लमतिपदि मातामहश्राद्धपञ्चम्य-
कृतव्यम् ।

तदाह श्राद्धप्रदीपे गौतमः--

आत्ममात्रस्तु दौहित्रो विद्यमानेऽपि मातुले ।

कुर्यान्मातामहश्राद्धं प्रतिपद्याश्विने सिते ॥ इति ।

श्राद्धकमलेऽपि--

गर्भयुतोऽपि दौहित्रः कुर्यात्पितरि जीवति ।

श्राद्धं मातामहानाञ्च पक्षान्तादपरेऽहनि ॥

मातुः पितरमारभ्य त्रयो मातामहाः स्मृताः ।

तेषां वै पितृवत्श्राद्धं कुर्युर्दुहितृसूनवः ॥

इयं शुक्ला प्रतिपत् सक्रवव्यापिनी प्राण्यति निर्णयदीपे उक्तम्--

प्रतिपद्याश्विने शुक्ले दौहित्रस्त्वेकपार्ष्वणम् ।

श्राद्धं मातामहं कुर्यात् सपिता सक्रवे सति ॥ इति ।

आत्ममात्रोऽपि दौहित्रो जीवत्यपि च मातुले ।

मातुः सक्रवयोर्मध्ये यदा तु प्रतिपद् भवेत् ॥ इति बभूवनात् ।

अत्र सपितेतिवचनाज्जीवत्पितृक एवाधिकारी अत एव

पिण्डरहितं कुर्यात् । “मुण्डनं पिण्डदानं च” इति दक्षवचनात् ,
अन्वष्टव्यविशेषवचनात् च ।

जीवत्पितृकस्याऽऽभ्युदयिके कर्मणि निर्णयविशेष उच्यते ।

सायणीये—

नान्दीश्राद्धं पिता कुर्यादाद्ये पाणिग्रहे पुनः ।

अत ऊर्ध्वं प्रकुर्वीत स्वयमेव तु नान्दिकम् ॥

चन्द्रिकायां कात्यायनस्तु—

स्वपितृभ्यः पिता दद्यात् सुतसंस्कारकर्मसु ।

पिण्डानोद्ग्रहनाच्चेषां तस्याऽभावे तु तत्क्रमात् ॥

अस्याऽर्थः । सुतसंस्कारकर्मसु जातकर्मादिषु तेषां सुतानां
आ उद्ग्रहनात् विवाहपर्यन्तं पिता स्वपितृभ्यः पिण्डान्दद्यात् वृद्धि-
श्राद्धं कुर्यात् । तस्याऽभावे तु तेषां कर्तृणां जातकर्मादिसंस्कारकर्मसु—

असंस्कृतास्तु संस्कार्या भ्रातृभिः पूर्वसंस्कृतैः ।

इत्यादिवचनात् यो गम्यमानः क्रमः तेन क्रमेण ज्येष्ठभ्रात्रादिः
स्वपितृभ्यो दद्यादिति । समावर्तनस्याऽपि विवाहप्राचीनसुतसंस्का-
रत्वात् समावर्तनेऽपि पितैव स्वपितृभ्यो दद्यात् । अजीवत्पितृकस्तु
पूर्वसंस्कृतभ्रात्रसम्भवे स्वयमेव स्वपितृभ्यो दद्यात् । उपनयनेन
कर्माऽधिकारस्य जातत्वात् । विवाहेऽप्येवमेव द्रष्टव्यमिति । त-
स्याऽभावे तु तत्क्रमादित्यंशस्य हेमाद्रिकृता व्याख्या छिद्यते ।
मित्रभावे अन्यो यः कश्चित् संस्कारं कुर्यात् स तत्क्रमात् तं
पितरमारभ्य यः संस्कार्यस्य पितृणां क्रमः तेन क्रमेण (१) दद्या-
न्नतु स्वकीयेभ्यः पितृभ्य इत्यर्थः स्थापितो निगमवाक्येन । तस्मा
त्पितृव्याऽऽचार्यमातृच्छादयः संस्कार्यस्योपनेपादेरेव पितृभ्यः श्राद्धं
दद्युर्न स्वपितृभ्यः इति अनुपारमार्थिकः पक्षो विधीयते इति ।

(१) क्रमेण क्रमेण इति 'क' पुस्तके पाठः ।

वृद्धिश्राद्धाकरणे प्रत्यवायो वृद्धस्तातपेनोक्तः—

- • वृद्धौ न तर्पिता ये वै तर्पितां गृहमेधिभिः ।
तद्दानमफलं सर्व्वमासुरो विधिरेव सः ॥ इति ॥

अथ श्राद्धकालाः । तत्र याज्ञवल्क्यः—

- • अमावास्याऽष्टका वृद्धिः कृष्णपक्षोऽयनद्वयम् ।
द्रव्यं ब्राह्मणसम्पत्तिं विधुवत्सूर्यसंक्रमः ॥ [१-२१७]
व्यतीपातो गजच्छाया ग्रहणं चन्द्रसूर्ययोः ।
श्राद्धं प्रति रुचिश्चैव श्राद्धकालाः प्रकीर्तिताः ॥ [१-२१८]
ब्रह्मपुराणेऽपि—

आषाढ्यामथ कार्तिक्यां माघ्यां मन्वन्तरादिषु ।

युगादिषु च दुःस्वप्ने जन्मर्से ग्रहपीडिते ॥

प्रौष्ठपदासिते पक्षे श्राद्धं कुर्वीत यत्रतः ।

मार्गशीर्षे च पौषे च माघे प्रौष्ठे च फाल्गुने ॥

कृष्णपक्षेषु पूर्व्वेद्युरन्वष्टक्यन्तथाऽष्टमी । इति ।

तिस्रोऽष्टकास्तासु श्राद्धं कुर्वीत पार्वणम् । मार्गशीर्षे मासि
तथा पौषे माघे फाल्गुने प्रौष्ठे भाद्रपदे च कृष्णपक्षेषु पूर्व्वेद्युरष्टम्या-
न्वष्टक्यञ्चेति तिस्रोऽष्टकास्तासु श्राद्धं कुर्वीत । पूर्व्वेद्युः सप्तमी,
अन्वष्टक्यं च नवमी ।

तदाह शौनकः—

हेमन्तशिशिरयोश्चतुर्णामपरपक्षाणामष्टम्योऽष्टकाः । वृद्धिः
पुत्रजन्मादिः । कृष्णपक्षो भाद्रपदाऽपरपक्षः । अयनं दक्षिणोत्तरम् ।
हव्यब्राह्मणयोः श्राद्धार्हयोः सम्पत्तिः प्राप्तिः । विधुवन्मेवतुलां-
संक्राती । सूर्यसंक्रमः आदित्यस्य राशितो राश्यन्तरगमनम् ।
अयनविधुवतोः संक्रान्तिस्वेनैवोपादाने. सिद्धेऽपि पृथगुपादानं
फलातिशयप्रतिपादनाऽर्थम् ।

व्यतिपातयोगः श्राद्धान्तरे दर्शितः ।

पञ्चाननस्थो गुरुभूमिपुत्रो मेवे रविः स्याद्यदि शुक्लपक्षे ।

पाशाभिधाना करभेन युक्ता तियिर्व्यनीपात इतीह योगः ।

पञ्चाननः सिंहः, गुरुभूमिपुत्रौ बृहस्पत्यङ्गारकौ, पाशाभि-
धाना द्वादशी, करभं हस्तनक्षत्रम् । गजच्छाया ग्रन्थान्तरे—

यदेन्दुः पितृदैवस्ये हंसश्चैव करे स्थितः ।

तियिर्वैश्रवणीया च गजच्छायेति सा स्मृता ॥

युगाद्यो विष्णुपुराणे—

वैशाखमासस्य तु या तृतीया नवम्यसौ कार्तिकशुक्लपक्षे ।

नभस्यमासस्य तमिस्रपक्षे त्रयोदशी पञ्चदशी च भागे ॥

भागे पञ्चदशी अर्षावास्या ।

नारदीयपुराणे—

द्वे शुक्ले द्वे तथ कृष्णे युगादी कवयो विदुः ।

कृष्णे पूर्वयुते श्रुक्ते शुक्ले तूत्तरसंयुते ॥

द्वे शुक्ले वैशाखतृतीया कार्तिकनवमी च । द्वे कृष्णे भाद्रपद-
त्रयोदशी माघाऽर्षावास्या च ।

आस्मिन् गोभूमिहिरण्यवस्त्रदानेन सर्वं प्रविहाय पापम् ।

शूरत्वमिन्द्रस्य सुहृत्वमेव मर्त्याऽधिपत्वं लभते मनुष्यः ॥

मन्वादयो मत्स्यपुराणे—

अश्वयुक् शुक्लनवमी कार्तिकी द्वादशी तथा ।

तृतीया चैत्रमासस्य तथा भाद्रपदस्य च ॥

फाल्गुनस्य त्वमावास्या पौषस्यैकादशी सिता ।

आषाढस्याऽपि दशमी माघमासस्ये सप्तमी ॥

श्रावणस्याऽष्टमी कृष्णा तथाऽषाढी च पौर्णिमा ।

कार्तिकी फाल्गुनी चैत्री ज्यैष्ठी पञ्चदशी सिता ॥

मन्वन्तरादयश्चैता दत्तस्याज्ञयकारकाः ।

यत्र कृष्णेति विशेषनिर्देशस्तत्र कृष्णैव । यत्र विशेषनिर्देशा-

भावस्तत्र सितैव । (१) अकरणे प्रायश्चित्तमुक्तं ऋग्विधाने—

त्वं भुवः प्रतिमन्त्रञ्च शतवारंञ्जले जपेत् ।

मन्वादयो यदा न्यूनाः कुरुते नैव वाऽपि यः ॥ इति

एवं षण्णवतिश्राद्धान्यपि नित्यानि । तेषामयं सङ्ग्रहः—

अमायुगमनुक्रान्ति वृत्तिपातमहालयाः ।

अन्वष्टव्यञ्च पूर्वेषुः षण्णवत्योऽष्टकास्तथा ॥ इति ।

मन्वादिश्च युगादिश्च अमा संक्रातिवैधृती ।

पक्षश्राद्धाऽष्टकापाताः श्राद्धकाला इति स्मृताः ॥

श्राद्धकमले द्विसप्ततिश्राद्धकालाः—

अमावास्या द्वादशैव क्षयाहद्विंशये तथा ।

षोडशापरपक्षस्य अष्टकाऽन्वष्टकाश्च षट् ॥

संक्रान्तयो द्वादश तथा अयने द्वे च कीर्तिते ।

चतुर्दश च मन्वादेर्युगादेश्च चतुष्टयम् ॥

अनन्तिकाश्चतस्रश्च श्राद्धान्येवं द्विसप्ततिः ।

अनन्तिका आषाढीकार्तिकीमाघीवैशाख्य इति ।

कल्पादयो रेवास्रण्डे—

वैशाखस्य तृतीया या कृष्णारूपा फाल्गुनस्य च ।

पञ्चमी, चैत्रमासस्य अमावास्या तथा परा ॥

शुक्ला त्रयोदशी माघे कार्तिकस्य तु सप्तमी ।

नवमी मार्गशीर्षस्य सप्त कल्पादयः स्मृताः ॥

अत्राऽपि पूर्वपक्षे कृष्णैव, उचरत्र शुक्ला इति विवेकः ।

तासु जप्तं हुतं श्राद्धं कृतमक्षयतां व्रजेत् । इति ।

अथ काम्यकालाः । तत्र मनुः—

कुर्वन्प्रतिपदि श्राद्धं सुरूपान् लभते सुतान् ।

कन्यकांतु द्वितीयायां तृतीयाया तु बन्दिनः ॥

(१) एतावान्प्रमथः 'अ' बुस्तके नास्ति ।

पशून् शूद्राश्चतुर्थ्यां तु पञ्चम्यां शोभनान् सुतान् ।

षष्ठ्यां द्यूतजयं चैव सप्तम्यां लभते कृषिम् ॥

अष्टम्यामपि पाण्डित्यं लभते श्राद्धदः सदा ।

स्यान्नवम्यामेकसुरं दशम्यां द्विसुरं बहु ॥

एकादश्यां तथा रूप्यं ब्रह्मर्ष्वस्विनः सुतान् ।

द्वादश्यां जातरूपञ्च राजतं कुप्यमेव च ॥

ज्ञातिश्रेष्ठ्यं त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां तु (१) कुप्रजाम् ।

भीयन्ते पितरश्चाऽस्य ये शस्त्रेण हता ऋणे ॥

पक्ष्मादिविनिर्दिष्टान् विपुलान्मनसः प्रियान् ।

• श्राद्धदः पञ्चदश्यां तु सर्वान्कामान् समश्नुते ॥

वन्दिनः स्तुतिपाठकाः, स्तुतो भवतीत्यर्थः । द्यूतं द्यूतजयम् ।

जातरूप्यं हेम । रूप्यं सुवर्णरजतव्यतिरिक्तं ताम्रादि । पक्षतिः

प्रतिपत् तदादितिथिष्वभिहितानि यानि फलानि तेषु स्वीयमनसोऽ-

भीष्टान् सर्वान् कामानमात्रास्याश्राद्धदः प्राप्नोतीत्यर्थः ।

ब्रह्मपुराणे—

अश्विन्यां प्राप्नुयादश्वान् , भरण्यामायुरुक्तमम् ।

कृत्तिकायां विज्वरत्वं श्राद्धकृत्समवाऽप्नुयात् ॥

प्राजापत्ये तथा पुष्टिं, सौम्ये चौजः सुशोभनम् ।

आर्द्रायां तु परां सिद्धिं, पुत्रान् श्रेष्ठान् पुनर्वसौ ॥

पुष्ये सुतान् वीरधर्मान् , सार्व्ये च लभते धनम् ।

ज्ञातिश्रेष्ठ्यं मघास्वेव, भाग्ये सौभाग्यमुत्तमम् ॥

दानशक्तिमथाऽर्व्यम्णे, हस्ते श्रेष्ठ्यं महर्द्धिमत् ।

त्वाङ्गे दुहितरं पुण्यां, स्वातीं वाणिज्यमुत्तमम् ॥

विशाखायां शुभम् पुत्रान् , मैत्रे चाप्यहतां गतिम् ।

ज्येष्ठायामधिपत्यं तु, मूले (२) चारोग्यमुत्तमम् ॥

(१) 'सुप्रजाम्' क. ग.।

(२) मूले चारोग्यमुत्तममिति क. बुस्तके पाठः ।

आषाढासु यशोलाभमुत्तरासु विशोकताम् ।

श्रवणे च गतिं पुण्यां, घनिष्ठ्यासु धनं बहु ॥

वारुणे तु कृषेर्दृष्टिं वैशाखे वार्षिकं बहु ।

बर्हीर्गाश्चोत्तरायाञ्च, पौष्णे कुप्यं महानिश्चिम् ॥

इति संचिन्त्य योगेन विधिना साधयेच्च यत् ।

स तस्मिन्दिवसे श्राद्धे भक्त्या सन्तपर्येत्पितॄन् ॥

कूर्मपुराणे—

आदित्यवारे त्वारोग्यं, सोमे सौभाग्यमेव च ।

कुजे सर्वत्र विजयं, सर्वान्कामान्बुधस्य तु ॥

विद्यामभीष्टां तु गुरौ, धनं वै भार्गवे पुनः ।

शुनैश्चरे लभेदापुरारोग्यं च सुदुर्लभम् ॥

परीचिः—

कृत्तिकादिषु ऋक्षेषु यदेव फलमीरितम् ।

विष्कम्भादिषु योगेषु तदेव फलमश्नुते ॥

तथाच—

विष्कम्भादिषु योगेषु फलं नक्षत्रवत् स्मृतम् ।

श्राद्धं रव्यादिवारेषु ह्यारोग्यादिफलेष्ववः ॥

कुर्युः, फलमिदं तेषां बवादिकरणेष्वपि ।

बृहस्पतिः—

आरोग्यं चैव सौभाग्यं शत्रूणाञ्च पराजयम् ॥

सर्वान्कामान्प्रियां विद्यां धनमायुर्यथाक्रमम् ।

सूर्यादिदिवसेष्वेतच्छ्राद्धकृत्तुभते फलम् ॥ इति ॥

अथाऽमावास्याद्वैविध्ये निर्णयः । तत्र सङ्ग्रहकारः—

दशौ चत्वारऽपराहं स्पृशति स दिवसः श्राद्धकालो द्वयोश्चे-

द्यत्वाऽनरयो षडाऽसौ यदि भवति सप्तः क्षीयमाणे तु पूर्वः ॥

इदौ साम्येष्वनघोर्युवतिवृषलयोश्च इत्, एवाऽहिताग्नेः ।

पूर्वो न काऽपराहं स्पृशति कुतुपसंस्पर्शतोऽर्थ वित्रिः स्यात् ॥

अस्याऽर्थः—दर्शो यत्राऽपराणहं स्पृशति प्राप्नोति स दिवसः
श्राद्धकालः ।

अथ दिनद्वयापराणहयोर्दर्शस्पर्शे निर्णयमाह—द्वयोश्चेद्वयत्रानस्य
इति । दिनद्वयापराणहयोर्दर्शस्पर्शश्चेद् यत्र दिवसे सोऽधिकः स एव
श्राद्धकालः । अथ दिनद्वयाऽपराणहयोर्दर्शसाम्ये निर्णयमाह—यदाऽसौ
यदि भवति समः क्षीयमाणे तु पूर्वः । वृद्धौ साम्येऽप्यनग्रेयुर्बतिवृषलयो-
श्च न्व एवाहिताग्नेः पूर्व इति । असौ दर्शो यदा दिनद्वयापराणहयोः
समो भवति, तदा तिथिहासे आहिताग्न्यनाहिनाग्निषुवतिवृषलानां
पूर्वदिवसः श्राद्धकालः । तिथिवृद्धौ तिथिसाम्ये वाऽनाहिताग्निषुव-
तिवृषलाः परेषुः । आहिताग्नेस्तु पूर्वदिवस एव श्राद्धकालः ।

अथ दिनद्वयाऽपराणहयोर्दर्शाऽभावे निर्णयमाह । न काऽपराणहं
स्पृशति कुतपसंस्पर्शतोऽयं विधिः स्यादिति । यदा दर्शः पूर्वस्मिन्
परस्मिन् वा कापि दिवसे अपराणहं स्पृशति तदा कुतपसंस्पर्शतः।
ल्यच्छोपे पञ्चमी, दर्शस्य कुतपकालसंस्पर्शमाश्रित्य अयं विधिः
दर्शश्राद्धकालविधिर्ज्ञेयः । कुतपकालप्रशंसा इतिहासे दृश्यते ।

दिवसस्याऽष्टमे भागे यदा मन्दायंते रविः ।

स कालः कुतपो नाम पितृणां दत्तमक्षयम् ॥

मत्स्यपुराणे—

ऊर्ध्वं मुहूर्तात् कुतपात् यन्मुहूर्तचतुष्टयम् ।

मुहूर्तपञ्चकंश्चेत्स्वधामवनमिष्यते ॥

ऊर्ध्वश्चेद्दोष उच्यते तत्रैव—

सायानहस्त्रिमुहूर्तः स्याच्छ्राद्धं तत्र न कारयेत् ।

राक्षसी नाम सा वेला गर्हिता सर्वकर्मसु ॥

रात्रिनिषेधस्य क्वचिदपवादमाह विष्णुः— [८x५^{vii}, ६]

सन्ध्यारात्र्योर्न कर्तव्यं श्राद्धं खलु विचक्षणैः ।

तयोरपि च कर्तव्यं यदि स्याद्वाहुदर्शनम् ॥

इत्यमावस्याविर्णयः । अथ क्षयाहतिथिनिर्णयः । तत्र

सङ्ग्रहकारः—

सायन्तन्यपरत्र चेन्मृततिथिः सैवीन्दिके मासिके
ग्राह्या सा अथपराह्वयोर्द्येदि तदा यत्राऽधिका सा मता ।
तुल्या चेद्भयाऽपराह्वसमये पूर्वा न चेत्तद्वद्वये
पूर्वैव त्रिमुहूर्तगास्तऽसमये नोचेत्परैवोचिता ॥

अस्थाऽर्थः—सायन्तनीति । यदा मृततिथिः सायम् अपराह्व
वा अस्ति । सा तदा आन्दिके मासिके च ग्राह्या स्यात् । सा अ-
पराह्वोरिति । सा तिथिः उभयत्राऽपराह्वव्यापिर्नाचेत् तत्र यस्या-
मपराह्वकालः अधिकः अस्ति सा ग्राह्या । तुल्या चेदिति । उभय-
त्राऽपराह्वे तिथिः समा चेत् , तदा पूर्वैव । एतत्तिथिसयविषयम् ।
वृद्धौ परतिथिविधानात् । नचेत्तद्वय इति । उभयाऽपराह्वे नाऽस्ति-
चेद् अस्तमयसमये त्रिमुहूर्तगामिनी च यदा भवेत् , तदा पूर्वैव ।
इति क्षयाहनिर्णयः ।

अथैकचित्यारोहणे क्षयाहनिर्णयः ।

तत्र चन्द्रिकायां भृगुः—

या समारोहणकुर्यात् भर्तृचिन्त्यां पतिव्रता ।

तां मृताऽहनि सम्प्राप्ते पृथक् पिण्डे नियोजयेत् ॥ इति ।

स्मृत्यन्तरेऽपि—

एकचित्यां समारूढौ दम्पती निधनं गता ।

पृथक् श्राद्धं तयोः कुर्यादोदनञ्च पृथक् पृथक् ॥ इति ।

ओदनमोदनपिण्डः । यस्तु लौगाक्षिणोक्तम्—

मृताऽहनि समासेन पिण्डनिर्वपणं, पृथक् ।

नवश्राद्धञ्च दम्पत्यो रन्वारोहण एव तु ॥ इति ।

समासेन संक्षेपेण पिण्डनिर्वपणम् । नवश्राद्धन्तु दम्पत्योः
पृथक् कार्यम् । स्मृत्यन्तरे—

एकचित्यधिराहक्षेत्रिथिरेकैव जायते ।

एकपाकेन पिण्डैक्ये द्वयोर्मृद्गीतनामनि ॥ इति ।

तदेतस्समासेन पिण्डनिर्वपणमापद्विषयम् । तथाहाविस्म-

तिरूपेण—

एकत्रिंशदां समारूढां मृतयोरेकवर्हिषि ।

पित्रोः पिण्डान्पृथक् दद्यात्पिण्डं वाऽऽपत्सु तत्सुतः ॥

अत्रैकवर्हिषीत्युक्तिविशेषेण पाकैक्यं श्राद्धकालैक्यञ्चोपल-
क्षितम् ।

अन्ये तु—

एककाले गताऽसूनां बहूनामथवा द्वयोः ।

तन्त्रेण श्रपणङ्कुत्वां श्राद्धं कुर्यात् पृथक् पृथक् ॥

चन्द्रप्रकाशे—

एकचिलां समारूढौ दम्पती प्रमृतौ यदि ।

पृथक् श्राद्धं प्रकुर्वीत पत्युरेव क्षयेऽहनि ॥

तत्रैव—

मृतानामपि भृत्यानां भार्याणां पतिजासह ।

तन्त्रेण श्रपणङ्कुत्वां श्राद्धं स्वामिक्षयेऽहनि ॥

पूर्वकस्य मृतस्याऽदौ द्वितीयस्य ततः पुनः ।

तृतीयस्य ततः कुर्यात् सन्निपातेष्वयं क्रमः ॥ इति ।

श्रपणम्प्रदेयाक्षपाकः । पूर्वकस्य मुख्यस्य द्वितीयस्य मुख्या-
ऽपेक्षया जघन्यस्यं तृतीयस्य जघन्यतरस्येत्यर्थः । पतिमुद्दिश्य का-
लान्तरे याऽन्वारूढा सा यस्यां तिथावप्रिप्रविष्टा तस्यामेव श्राद्धम-
र्हति, ननु पतिक्षयतिथौ “क्षयाहस्तु क्षयेऽहनि” इति यत्र क्षयः स
क्षयाहः । तिथिस्तात्कालिकी ग्राह्या ‘तथा मरणजन्मनोः’ इतिव-
चंनात् । इति केषाञ्चिन्मतम् । तदयुक्तम् । मरणतिथौ श्राद्धप्र-
तिपादकवाक्यानामन्वारूढाश्राद्धेतरश्राद्धविषयत्वात् । अत्राऽ
नुष्पः—

आर्ताऽऽर्च्य, मुद्दिते हृष्टा, मोषिते मञ्जिना कुशा ।

मृते झ्रियेत या परस्यौ, सा स्त्री ज्ञेया पतिव्रता ॥ इति ।

स्वधर्ममनुपालंभन्ती या सास्त्री कस्माच्चित्प्रतिबन्धकात्, प-

तिमरणदिने मरणाऽच्छाभे ततः प्रागूर्ध्वं वा तमुद्दिश्य तद्भक्ष्ये वाऽऽन्नं त्यजति तस्या आब्धिकं पतिसप्तदिन एव युक्तम् ।

उक्तञ्च—

सहाऽग्रतः पृष्ठतो वा तद्भक्ष्या भ्रियते यदि ।

तस्याः श्राद्धं प्रदातव्यं पृथक्पत्युः क्षयेऽहनि ॥ इति ।

पत्युः क्षयेऽहनि तस्याः श्राद्धं पृथक् दातव्यमित्यन्वयः । तस्याः क्षयेऽहनीत्यन्वये पत्युः पृथगिति व्यर्थं स्यात् । किञ्च अन्यथाप्राप्ते विधिः स्यात् । तथाच वाक्याऽनर्थक्यमिति । अत्र केचित्—तस्या अन्वारूढाया भर्तुश्च क्षयाऽहनि स्वस्वभयाहे पृथक् श्राद्धं प्रदातव्यम् । तेन तत्क्षयाहे तस्याः, पतिक्षयाहे पत्युः गत्वेकस्य भर्तुरेव क्षयतिथावित्यर्थं इत्याहुः । तन्न, क्षयेऽहनीत्यस्य सम्बन्ध्याकाङ्क्षायां तत्पतिशब्दाभ्यां सम्बन्धिसमर्पणे कृते श्राद्धपदेऽपि सम्बन्ध्याकाङ्क्षायां ताभ्यामेव सम्बन्धिसमर्पणे तस्याः श्राद्धं तस्याः क्षयेऽहनीति, पत्युः श्राद्धं पत्युक्षयेऽहनीत्याहृत्तिलक्षणो वाक्यभेदः स्यात्, पृथक्पदे वीप्साप्रसङ्गाच्च । किञ्च एकस्मिन्नेव दिने यदा तिथिद्वयं तत्र च प्रातरेकस्यां तिथौ पत्युर्मरणमपरस्यां चाग्निमवेशः स्त्रियाकृतस्तत्र सहगमनेऽपि दिनद्वये श्राद्धमसङ्गः । तस्मात् तिथिस्तास्कालिकी' इतिवचनमन्वारूढाश्राद्धेतरश्राद्धविषयम् । तदेतदुक्तं पुराणसमूहयेऽपि—

अग्रतः पृष्ठतो वाऽपि तद्भक्ष्या भ्रियते तु या ।

तस्याः श्राद्धं सुतैः कार्यं पत्युरेव क्षयेऽहनि ॥

यदि दैवादेकदिने पित्रोर्भूतिस्तदा युगपदेवोभयोः श्राद्धं पितृपूर्वकं कार्यं, नतु पितुः श्राद्धं समाप्य पश्चान्मातुरिति । रौहिणाऽतिक्रमे दोषस्मरणात् । इत्येकचित्पारोहणक्षयाहनिर्णयः ।

अथ प्रोक्षितमृताहनिर्णयः । विश्वदर्शने—

ज्ञातो मासः क्षयाहयदि नहि विदितं तर्हि तत्र दशैः स्यादज्ञातोऽनु मासो यदि विदितमहस्तद्भक्ष्येन्मार्गशीर्षे ।

माघे वा, प्रस्थितस्य दूयमनवगतं तर्हि तत्स्याद्द्वयं यत्-
प्रस्थाने, तत्र चेत्तद्भवति, तपसहो तेऽथवा कृष्णरुद्रे ॥

अस्यार्थः—यदि प्रस्थितस्य द्वयं दिनमासमज्ञातम् । तर्हि
यत्प्रस्थाने द्वयं तदेव ब्राह्मम् । तदपि न ज्ञातञ्चेत्तर्हि माघस्य मा-
र्गस्य वा कृष्णैकादश्यां मृताहश्राद्धं कार्यमित्युत्तरार्द्धे सम्बन्धः । १-पू-
र्वाद्धं तु-स्पष्टमेव ।

तथाच वायुपुराणे बृहस्पतिश्च—

न ज्ञायते मृताहश्चेत् प्रमीते प्रोषिते सति ।

मासश्चेत्प्रतिविज्ञातस्तद्दर्शे स्मान्मृतेऽहनि ॥

यदा मासो न विज्ञातो, विज्ञातं दिनमेव तु ।

तदा मार्गशिरे मासे माघे वा तदिनं भवेत् ॥

इति प्रोषितमृताहनिर्णयः ।

अथ क्षयाहश्राद्धस्य मलमासे कार्याकार्यऽनिर्णयः ।

तत्र सत्यव्रतः—

वर्षे वर्षे तु यच्छ्राद्धं मातापित्रोर्मृतेऽहनि ।

मलमासे न कर्तव्यं व्याघ्रस्य वचनं यथा ॥ इति ।

अनेन शुद्धमासमृतस्य मलमासे प्रतिसाम्बत्सरिकश्राद्धं न
कर्तव्यमित्युक्तम्भवति । यत्तु बृहद्वसिष्ठेनोक्तम्—

प्रतिसंवत्सरे श्राद्धे नाऽधिमासं विवर्जयेत् ।

मलमासेऽपि कर्तव्यं श्राद्धं यत्प्रतिवत्सरम् ॥ इति,

एतन्मलमासमृतविषयम् ।

तथाच पैठीनासिः—

मलमासे मृतानाञ्च श्राद्धं यत्प्रतिवत्सरम् ।

मलमासेऽपि कर्तव्यं नाऽन्येषान्तु कथञ्चन ॥

इति योऽयं प्रतिषेधः, स तु प्रथमाऽब्दिककर्मतिरिक्तविषयः,
प्रथमाब्दिकस्य मलमासे वचनबलेन कर्तव्यत्वात् । तथाच

हारीतः—

असंक्रान्तेऽपि कर्तव्यमाब्दिकं प्रथमे द्विजैः । इति ।

स्युत्यन्तरेऽपि—

आब्दिकप्रथमं यत्स्यात्, तत्कुर्वीत मल्लिम्बुचे ।

त्रयोदशे च सम्प्राप्ते कुर्वीत पुनराब्दिकम् ॥

अस्वार्थः । प्रथमाब्दिकं मल्लिम्बुच एव कुर्वीत । पुनराब्दिकं द्वितीयाद्याब्दिकं त्रयोदशे मासे परिपूर्णे चतुर्दशमासे प्रथमदिने कुर्यादिति ।

यत्तु वृद्धवसिष्ठवचनम्—

श्राद्धीयाऽहनि सम्प्राप्ते अधिमासो भवेद्यदि ।

मासद्वयेऽपि कुर्वीत श्राद्धमेवञ्च दुष्यति ॥ इति ।

तथा व्यासवचनम्—

षष्टिभिर्दिवसैर्मासः कथितो बादरायणैः ।

उत्तरे देवकार्याणि पितृकार्याणि चोभयोः ॥ इति ।

इदं वचनद्वयं सांवत्सरव्यतिरिक्तमासिकादिश्राद्धविषयम् ।

तदुक्तं स्मृतिचन्द्रिकायां—

यौगादिकं मासिकञ्च श्राद्धञ्चाऽऽपरपक्षिकम् ।

मन्वादिकं तैथिकञ्च कुर्यान्मासद्वयेऽपि च ॥ इति ।

अत्राऽऽपरपक्षिकमिति प्रतिमामं कृष्णपक्षे विधीयमानं श्राद्ध-
गुच्यते, नस्वाम्बिनसम्बन्धिमहालयश्राद्धम्; तस्य “न कुर्यात् भानु-
लङ्घिते” इति “महालयश्राद्धका” इति च भृगुपरिशिष्टवाक्याभ्यां मल-
मासे निषेधात् । मलमासादन्यत्र मृतानामपि दैवात् त्रयोदशे अधिमासे
सति प्रथमाब्दिकं मलमासं एव कार्यम् । संवत्सरे पूर्णे सपिण्डीकर-
णपक्षाभयणेऽपि तत्रैव सपिण्डीकरणं कुर्यात् । तदाह वसिष्ठः—

असंक्रान्तेऽपि कर्तव्यमाब्दिकं प्रथमं द्विजैः ।

तथैव मासिकं श्राद्धं सपिण्डीकरणं तथा ॥ इति ।

वर्षमष्टयेऽधिमासाममे अर्थात् चतुर्दशे मासे प्रथमाब्दिकम् ।

कालादर्शकारैस्तु—प्रत्याम्बिक्रमपि मासद्वये कर्तव्यमित्युक्तम् ।
ततश्च वृद्धाऽऽचरप्राप्तत्वात्मकमासेऽपि क्षयदिनस्य बन्ध्यत्वनिरा-
सार्थं पिण्डवेशेन ब्राह्मणम्भोजयित्वा शुद्धमासे भ्रातृं कुर्वादिति ।

तदुक्तं बृहत्पाराशरेण—

पिण्डवर्जमसंक्रान्तौ संक्रान्तौ पिण्डसंयुतम् ।

प्रतिसंवत्सरं भ्रातृमेवं मासद्वयेऽपि च ॥

क्षयमासात्पूर्वासंक्रान्तविषयं किञ्चिदुक्त्वा क्षयविषयमप्याभि-
धीयते ।

तत्र क्षयस्वरूपमुक्तं सिद्धान्ते—

असंक्रान्तमासोऽधिमासः स्फुटः स्याद्

द्विसंक्रान्तमासः क्षयरूपः कदाचित् ।

क्षयः कार्तिकादिश्रये, नान्यदा स्यात्

तदा वर्षमध्येऽधिमासद्वयञ्च ॥

एतस्याऽऽगमनकाल उक्तस्तत्रैव—

गतोऽब्ध्यद्रिनन्दैः (१७४) गते शाकृकाले

तिथीशौ (१११५) र्भविष्यत्यथाङ्गाऽक्षमूर्धैः (१२५६) ।

गलाद्रथमिभूमि (१३७८) स्तथा प्रायशोऽयं

कुवेदेन्दुर्बैः (१४१) कचिद्रोक्तुमि (१९) च ॥

एतच्चित्तयमपि त्याज्यम्—

यद्वर्षमध्ये त्वधिमासयुग्मं

तत्कार्तिकादित्रितये क्षयरूपे ।

मासत्रयं त्याज्यमिदं प्रयत्नाद्

विवाहयज्ञोत्सवमङ्गलेषु ॥ इति ।

एवं त्रयोदशमासात्मके वर्षे अधिमासशब्दः क्षयमासादूर्ध्वं
भान्नियसंक्रान्तिमासे प्रवर्तते, न पूर्वभाविनि । तदुक्तं तत्रैव—

एकत्र मासद्वितयं यदि स्यात्

वर्षाऽधिकंस्तत्र परोऽधिमासः ।

प्रबोदशं तु श्रुतिराह मासं

चतुर्दशः काऽपि न चाऽस्ति दृष्टः ॥

द्विसंक्रान्तेऽपि मलमासवद्व्यर्षवर्षविवेकः स्यात् । तदुक्तम्—

मलमासे द्विसंक्रान्तौ संक्रान्तिरहिते तथा ।

कार्यवर्षविवेकः स्यादिति शास्त्रविदो विदुः ॥

संक्रान्तिरहिते मासे यथा कार्यविवेकः तथैव द्विसंक्रान्तौ संक्रान्तिद्वययुक्तेऽपि मासे स्यादिति धर्मशास्त्रविदो विदुः । द्वादशाऽहं सपिण्डाहमित्त्राद्यनियतनिमित्तानि कर्माणि, अब्दोदकं कुम्भमित्यादिनियतनिमित्तानि च कर्माणि कुर्यात्, अनित्यमनिमित्तं चेत्यादिकर्माणि वर्जयेदित्यर्थः ।

काठकपुराणेऽपि—

रविसंक्रमहनि यो वद्व्यर्षवर्षविवेधिः स्मृतः ।

स एव तु द्विसंक्रान्तौ मलमासेऽप्युदीरितः ॥ इति ।

अतो मलमासोक्तं कर्तव्याऽकर्तव्यविधानं सर्वमत्राप्यनुसन्धेयमिति । एवं काठार्दोऽप्युक्तम्—“मलमासवदत्राऽपि भवति” द्वितीयाब्दिकादौ विशेषः स्मृत्यन्तरात्—

एक एव यदापासः संक्रान्तिद्वयसंयुतः ।

मासद्वयगतं श्राद्धं मलमासेऽपि शस्यते ॥ इति ।

गालवाऽपि-

वर्षे वर्षे तु यच्छ्राद्धं पातापिप्रोर्धतेऽहनि ।

मासद्वयेऽपि तत्कुर्वात् व्याघ्रस्य वचनं यथा ।

अत्र मासद्वयेऽपि सति संक्रान्तिद्वययुक्तत्वान्मासद्वयात्मके क्षयमासे इत्यर्थे इति व्याख्यातं निबन्धान्तरे ।

अत्रैवं विशेषः क्षयमासमध्ये मरणे सति सांवत्सरिकादौ मरणमासज्ञानोपायः । क्षयमासस्थां तिथिं द्विधा विभज्य पूर्वार्द्धे मरणं चेत् पूर्वे मासे, द्वितीयेऽर्धे चेत् उत्तरे मासे ज्ञेयः । तथाचोक्तम्—

तिथ्यर्द्धे प्रथमे पूर्वं द्वितीयेऽर्द्धे तदुत्तरः ।

मासाविति बुधैश्चिन्तौ क्षयमासस्य मध्यमौ ॥ इति ।

एवं पक्षः शुक्ले शुक्लपक्षः, कृष्णे कृष्ण इति । तत्र जन्मनि प्रति-
वर्षं जन्मदिवसोत्सवेऽप्येवम् ।

एवं दीपिकायामपि—

“नष्टानां क्षयमासगासु तिविधु प्रागन्त्ययोरर्द्धयोः-

ग्राह्यास्तस्त्रियः क्षयाहविषये प्रागूर्ध्वमासस्थिताः ।

एवं तद्भववर्धनेऽपि” इति । क्षयमासे यस्यास्तियेः पूर्वाद्धे मृतः सैव
तिथिः क्षयात्पूर्वमासस्या ग्राह्या । एवमुत्तरार्द्धे चैन्मृतः तदाक्षया-
दुत्तरमासस्थंति योजना । एवं तद्भववर्धनेपीति । क्षयमासोत्पन्नस्य
वर्द्धापनेऽपि एवं तिथिः ग्राह्येत्यर्थः । नियतं त्रिंशद्दिनत्वाच्छुभे
मास्यारभ्य समापयेत् मलिने मासोपवासव्रतमिति स्पष्टम् ।

विवाहमध्ये यदि चेत् क्षयाहस्तत्राश्रुमुलयाः पितरो न यान्ति ।

जाते विवाहे परतः प्रकुर्यात्, श्राद्धस्वधाभिर्नतु दूषयेत्त ॥

विवाहमारभ्य चतुर्थिमध्ये श्राद्धं दिनं दर्शदिनं यदि स्यात् ।

वैधव्यमाप्नोति तदा तु कन्या, जीवेत्पतिश्चेदनपत्यता स्यात् ॥

इति मलमासे क्षयाहश्राद्धनिर्णयः ।

अथ नैमित्तिकश्राद्धकालनिर्णयः । ग्रन्थान्तरे—

नैमित्तिकन्तु यच्छ्राद्धं निमित्ताऽनन्तरम्भवेत् ।

नान्दीमुखाह्वयं प्रातराग्निक्वपराणहतः ॥

यच्छ्राद्धं नैमित्तिकं तन्निमित्तानन्तरम्भवेत् । तुशब्द ए-
कोविष्टोक्तमध्याह्नहव्यावर्तकः । नान्दीमुखाह्वयं प्रातः पूर्वाह्णे
भवेत् ।

देवलोऽपि—

पूर्वाह्णे दैविकं कर्म, स्वपराह्णे तु पैतृकम् ।

एकोविष्टन्तु मध्याह्णे, प्रातर्द्विदिनिमित्तकम् ॥ इति ।

तदाह शातातपः—

आमश्राद्धन्तु पूर्वाह्णे, एकोविष्टन्तु मध्यमे ।

पार्ष्णश्राद्धपराह्णे तु मातृवृद्धिनिमित्तकम् ॥ इति ।

एवं सर्वस्य नान्दिसुखस्य प्रातःकालप्रसक्तौ विशेषवाह—
“आग्निं हवपराहृतः” इति । सप्तम्यर्थे तसिद्ध् । आग्निमग्न्युत्पत्ति-
निमित्तकम्, आधाननिमित्तमित्यर्थः । तदपराह्णे भवेत् ।

तदाह, शाकवः—

‘आमश्राद्धन्तु पूर्वाह्णे सिद्धाक्षेन तु मध्यमे ।

पार्ष्णश्राद्धपराह्णे तु वृद्धिश्राद्धं तथाऽऽग्निं ॥ इति ।

नियतनिमित्तं मातरनियतनिमित्तं निमित्ताऽनन्तरं कार्यम् ।

तदाह लौगासिः—

नियतेषु निमित्तेषु प्रातृवृद्धिनिमित्तकम् ।

तेषामनियतत्वे तु तदानन्तर्यमिष्यते ॥

अत्रिरपि—

पूर्वाह्णे वै भवेद् वृद्धिर्विना जन्मनिमित्तकम् ।

पुत्रजन्मनि कुर्वीत श्राद्धं तात्कालिकं बुधः ॥

पुत्रजन्मनीत्यनियतनिमित्तोपलक्षणम् । तात्कालिकं पुत्रज-
न्मनन्तरम् ।

तदाह काष्णाञ्जिनिः—

मातृभवे पुत्रपुत्र्योर्ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।

स्नात्वाऽनन्तरमात्मीयान् पितृन् श्राद्धेन तर्पयेत् ॥

इति नैमित्तिकश्राद्धकालनिर्णयः ।

अथ गयाश्राद्धकालनिर्णयः । वायुपुराणे—

गयायां सर्वकालेषु पिण्डं दद्याद्विचक्षणः ।

अधिभासे जन्मादिने अस्ते च गुरुशुक्रयोः ॥

न त्यक्तव्यं गयाश्राद्धं सिंहस्थे च बृहस्पतौ ॥ इति ।

अत्र श्राद्धस्य यात्रापूर्वकत्वाद्गयाम्भति यात्रा न निषिद्धेत्यर्थः ।

तीर्थयात्रायान्तु निषेध उक्तः शातातपेन—

अस्तत्रते गुरौ शुके, वृद्धे, शाले, यक्षिन्सुबे ।

प्रतारस्याऽपवर्गश्च न कुर्यान्मौञ्जिबन्धनम् ॥

gaya shraद्ध
shraद्ध
pram
nimitte

दामोदर्येऽपि—

नीचस्थे-वृक्षसंस्थेऽप्यतिचरणगते बालवृद्धास्तगे वा . .

संन्यासो यज्ञयात्रा(१)व्रतनियमविधिः कर्णवेधोऽपिदीक्षा ।

मौञ्जीबन्धोऽङ्गनानां परिणयनविधिर्वास्तुदेवप्रतिष्ठा

वर्ष्याः सद्भिः प्रयत्रात् त्रिदशपतिगुरौ सिंहराशिस्थिते च ॥

अत्राऽपि तीर्थयात्रा ऽपूर्वेव । सपूर्वा तु कार्येव । इति गया-

श्राद्धकालनिर्णयः ।

अथ केनचिन्नमित्तेन श्राद्धदिवसेऽन्तीते श्राद्धकाल-
निर्णयः ।

तत्र मरीचिः—

श्राद्धविघ्ने समुत्पन्नेऽप्यविज्ञाते मृताऽहनि ।

कुर्यादन्नेन कृष्णायामेकादश्यां विधुक्षये ॥ इति ।

अत्र मृताऽहनि श्राद्धविघ्ने समुत्पन्ने अविज्ञातेपर्य्ययः । अ-
तश्च मृताहश्राद्धस्पैव मासिकस्य साम्बत्सरिकस्य च कृष्णैका-
दश्यमावास्याविधानं, नामाचास्यादिश्राद्धस्य । सूतकेनाऽऽब्दिके
श्राद्धेऽन्तरिते सूतकानन्तरदिने तत्कुर्यात् । तदाह ऋष्यशृङ्गः—

आब्दिके चैव सम्प्राप्ते आशौचं जायते यदि ।

आशौचे तु व्यतिक्रान्ते तत्र श्राद्धं विधीयते ॥ इति ।

आशौचानन्तरदिनेऽपि करणासम्भवे अमावास्यायां कुर्यात् ।

तदाह गोभिलः—

देवात्प्रत्याब्दिके श्राद्धे त्वन्तरामृतसूतके ।

आशौचानन्तरकुर्यात्तन्मासेन्दुक्षयेऽपि च ॥ इति ।

केचिन्वाशौचानन्तरं पुनः क्षयाहतिथावेव कार्यमित्याहुः ।

यथा—

तदहश्चेत् मरुष्येतकेनचित्सूतकादिना ।

सूतकानन्तरकुर्यात्पुनस्तदहरेव च ॥ इति ।

(१) 'वेद्ययात्रा' इति निर्णयसिन्धौ पाठः ।

*When a
intentional
omission
be done*

अत्र सूतकादिना सूतकानन्तरमिति च सूतकपदं वि-
ज्ञानिमित्तोपलक्षणम् । सूतकानन्तरमिति सामान्योपादानेऽपि
सूतके एकादशे दिवसे सूतके त्रयोदश इति ।

सूते त्रयोदशे श्राद्धं वृद्धावेकादशेऽहनि ।

इति श्राद्धकमलेऽभिधानात् । धर्मप्रदीपेऽपि—

सूतकान्तरितं श्राद्धं प्रमादादकृतं तथा ।

तद्विन्दे द्वादशाहे वा कर्तव्यं वाऽपि पर्वाणि ॥

द्वादशेऽहनि सूतक इति द्रष्टव्यम् । तथा—

भार्या रजस्वला यत्र मातापित्रोः क्षयेऽहनि ।

पञ्चमेऽहनि कुर्वीत, केचित्तदहरेव हि ॥

तथा—

भार्या रजस्वला यत्र श्राद्धं स्वार्थेऽहनि ॥

इति श्री महाराजाऽधिराजैसहगिलान्वयैकभूषण पर-

मानन्दादिष्ट 'धर्माधिकारि'रामपण्डितात्मज पण्डित

विनायककृतायां श्राद्धकल्पलतायां श्राद्धस्वरूप-

कर्तुं-काल-निरूपणस्तबकः प्रथमः ॥

अथ श्राद्धदेशाः—

दक्षिणाप्रवणे देशे तीर्थादौ च गृहेषु वा ।

भूसंस्कारादिसंयुक्ते श्राद्धं कुर्यात्प्रयत्नतः ॥

स्वभूमौ च नदीतीरे देशे केशाद्यदूषिते ।

स्थलीषु गिरिपृष्ठेषु सरस्वायतनेषु च ॥

गोष्ठेषु च विविक्तेषु तुष्यन्ति पितरस्सदा ।

तुळसीकाननञ्जाया यत्र यत्र भवेद् द्विज ।

तत्र श्राद्धं प्रदातव्यं पितृणां तृप्तिहेतवे ॥

तुळसीबीजनिकरः श्रपतेयत्र नारद १

पिण्डदानं कृतं, तत्र पितृणामक्षयम्भवेत् ॥

तीर्थं ऋषिसेवितं सलिलाश्रमादि । भूसंस्काराः केशतुषाङ्गा-
रामेध्यास्थिमृत्तिसतद्रव्यापसारणपुरःसरमूलखनपरिसमूह-
नगोमयलेपनादयः । स्वतो दक्षिणाप्रवणाऽभावे मयत्रेनाऽपि
दक्षिणाप्रवणत्वं कुर्यात् । तदाह मनुः—

• शुचिं देशं विविक्तञ्च गोमयेनोपलेपयेत् ।

दक्षिणाप्रवणञ्चैव मयत्रेनोपपादयेत् ॥ (३२०६)

स्वभूमौ स्वकीयगोष्ठादौ । अकृत्रिमप्रदेशकः स्थली ।

अथ निषिद्धदेशः ।

रुक्षं कुमिहतं क्लिप्तं सङ्कीर्णानिष्टगन्धिकम् ।

पिपीलिकादिजुष्टं च षणुष्टं व्यालादिभीतिकम् ॥

श्वखरोष्ट्रादिजुष्टञ्च परकीयञ्च कृत्रिमम् ।

देशं त्वनिष्टशब्दं च वर्जयेच्छ्राद्धकर्मणि ॥

रुक्षमास्निग्धं, क्लिप्तं पङ्क्तिम्, सङ्कीर्णं पदार्थान्तरैराकीर्णम्,
अनिष्टगन्धिकं पूतिगन्धादियुतम् । षणुष्टम् अग्निदग्धम् । परकीयं
परगृहीतं गृहगोष्ठादि, नतु गिरिसरिदरण्यतीर्थानि तस्यास्वा-
मिकत्वात् । तथाच—

परकीयगृहे यस्तु स्वान् पितृस्तर्पयेज्जटः ।

तद्बुधमिभागिनस्तस्य हरन्ति पितरो बलात् ॥

अग्रभागं ततस्तेभ्यो दद्यान्मूल्यञ्च जीवताम् ॥

• कृत्रिमम् इष्टकादिनिबद्धम् । 'निष्टकाचिते पितृन् तर्पयेत्' इति-
स्मरणात् । अनिष्टशब्दं श्रूयमाणविलापशब्दम् ।

ब्रह्माण्डपुराणे आद्दकल्पे चतुर्दशोऽध्याये—

त्रिशाङ्कोर्बर्जयेदिष्टं सर्कं द्वादशयोजनम् ।

उत्तरेण महानद्या दक्षिणेन च कैकटम् ॥

देशस्त्रैशङ्करो नाम वर्षो वै आद्दकर्मणि ।

काश्यदेवानाह शङ्खः—

- वाराणस्यां कुरुक्षेत्रे मृगतुङ्गे हिमालये ।
- नर्मदा-बाहुदा-तीरे सर्वमानन्त्यमश्नुते ॥
- गङ्गाद्वारे प्रयागे च नैमिषे पुष्करे तथा ।
- सभिहस्यां गयायाञ्च दत्तमक्षयतां व्रजेत् ॥
- पिण्याकैः सक्तुभिर्वाऽपि गयाशीर्षे सकुम्भरः ।
- यन्मास्ना पातयेत्पिण्डं तं नयेद्भ्रष्टा शाश्वतम् ॥
- एषुष्या बहवः पुत्रा यथेकोऽपि गयां व्रजेत् ।
- यजेत वाऽश्वमेधेन नीलं वा वृषसुःश्रजेत् ॥
- अपि जायेत सोऽस्माकं कुळे कश्चिन्नरोत्तमः ।
- गयाशीर्षे वटे श्राद्धं यो नो दद्यात्समाहितः ॥

गयाशीर्षप्रमाणश्चाऽऽदित्यपुराणे अभिहितम्—

- पञ्चकोशं गयाक्षेत्रं क्रोशमानं गर्घाशिरः ।
- महानद्याः पश्चिमेन यावद् मृध्रेऽश्वरो गिरिः ॥
- उत्तरे ब्रह्मयूपस्थे यावद् दक्षिणमानसम् ।
- एतद् गयाशिरो नाम विष्णुलोकेऽपि विश्रुतम् ॥

बाणपुराणे—

- क्षमीपत्रप्रमाणेन पिण्डं दद्याद्गयाशिरे ।
- उत्तरेत्सप्त गोत्राणि कुळमेकोत्तरं श्रुतम् ॥

“सप्तगोत्राणि तु ग्रन्थान्तरे—

- पिता माता च भार्या च भगिनी दुहिता तथा ।
- पितृ-मातृ-स्वसा चैषां सप्तगोत्राणि वै विदुः ॥ इति ।
- अत्र यादृशब्देन मातामहगोत्रम् । भार्यागोत्रं श्वशुरगोत्रम् ।
- भगिनी दुहितृ पितृस्वसृ यादृश्वमृणां-गोत्राणि यत्कुळे ता दत्तास्त-
दीवानि । एतेषामेव गोत्राणामेकोत्तरशतकुळं कल्पयति तस्याः
पूर्वस्य सुहृन्ते । ते यथा—

तश्वानि विंशति नृपा द्वादशैकादशा दश ।

अष्टादिति च गोत्राणि कुलमेकोचरं शतम् ॥ इति ।

पितृगोत्रे तश्वानि चतुर्विंशतिः । एते च द्व्यदश परे,
तावन्त एवाऽवरे । मातृगोत्रे दशपरे दशैवावरे इत्येवं
विंशतिः । भार्यागोत्रेऽष्टौ परे अष्टाववरे । भगिनीगोत्रे तद्भर्ता-
दयः षट् परे भागिनेयादयः षडवरे इत्येवं द्वादश । दुहि-
तृगोत्रे तच्छ्वशुरादयः पञ्च परे पञ्च दौहित्रादयोऽवरे जामाता
चेत्येकादश । पितृश्वसृकुले तच्छ्वशुराद्याः परे पञ्च, तद्भर्ताद्या
अवरे पञ्चैवेवं दश । मातृश्वसृकुले तच्छ्वशुराद्याश्चत्वारः परे
तद्भर्ताद्याश्चत्वारोऽवरे इत्येवमष्टौ । सर्वे समुदिता एकोत्तरशतं
भवन्ति । इति श्राद्धदेशाः ।

अथ श्राद्धार्हब्राह्मणा इतिहासे —

वेदाध्यायी तु यी विभः सततं ब्रह्मणि स्थितः ।

स्वाचारो अग्निहोत्री च सोऽग्निर्वै कव्यवाहनः ॥ इति ।

अविद्वान्वा सुविद्वान्वा मुकुलो दुःकुलोऽपि वा ।

बीजक्षेत्रात्मसंशुद्धः श्राद्धेष्वर्हः स्वकर्मकृत् ॥

तस्मात्सदाचारपरान्वेदज्ञान् कर्मतत्परान् ।

चतुःशुद्धान् द्विजः श्राद्धे कुलीनानर्चयेद् बुधः ।

अत एवाह—

विशुद्धो बीजयोनिभ्यां श्रोत्रियः श्रोत्रियात्मजः ।

स्ववर्षनिष्ठः शान्तात्मा श्राद्धे केतनमर्हति ॥

चतुःशुद्धलक्षणं स एवाऽह—

यस्य माता पिता वात्मा शुद्धा भार्या च स द्विजः ।

चतुःशुद्धः स्मृतस्तत्रैव सदाचारस्तु पञ्चमः ॥

त्रिणाचिकेतः त्रिमधुः त्रिमुपर्णः षडङ्गवित् ।

वेदविद्यः सपत्नीकः श्राद्धे केतनमर्हति ॥

ऋत्विक् सदस्योऽप्याचार्यः स्नातृकश्च सुयन्त्रितः ।

सन्ध्यावन्दननिष्ठश्च श्राद्धे कतनमर्हति ॥ •

वस्तु विश्वाभिन्नेणोक्तम् —

न ब्राह्मणम्परीक्षेत कदाचिदपि बुद्धिमान् ।

‘द्रातून् परीक्ष्य दत्तानि नयन्ति नरकं भुवम् ॥’

तत्तीर्थश्राद्धविषयम्, तद्वचनस्य तीर्थश्राद्धमकरणे दर्शयिष्यमा-
णत्वात् । एवमत्रयान्यपि वचनानि योजयानि । परीक्षाप्रकारस्तु
बुद्धयस्तुस्मृतिमत्स्यपुराणयोर्दर्शितः ।

शीलं संवत्सराज्ज्ञेयं, शौचं संख्यषहारतः ।

महा सङ्ख्यनात् ज्ञेया त्रिभिः पात्रं परीक्ष्यते ॥

स्मृत्यन्तरेऽपि—

सर्वलक्षणसं

पुरुषत्रयविख्यातैः सर्वं श्राद्धर्मकल्पयेत् ॥

जातकर्मादिभिर्यस्तु संस्कारैः संस्कृतः, शुचिः 1.

वेदाध्ययनसम्पन्नः षट्सु कर्मस्ववस्थितः ॥

शौचाऽऽचारे स्थितः सम्यक् विद्याभ्यासी गुरुप्रियः ।

सर्वत्रती सत्यपरः स वै ब्राह्मण उच्यते ॥

तपः श्रुतश्च योनिश्चाप्येतद् ब्राह्मणलक्षणम् ।

सत्यं दानं दमोऽद्रोहमानृशंस्यं क्षमा घृणा ॥

तपश्च दृश्यते यत्र स ब्राह्मण इति स्मृतिः ।

गृहस्थो ब्रह्मचारी च यजुर्वेदविदेव च ॥

वेदविद्याव्रतस्नाता ब्राह्मणाः पङ्क्तिपावनाः ।

त्रिणाचिकेतः पञ्चाभिस्त्रिसुपर्णः षडङ्गवित् ॥

ब्रह्मदेवानुसन्तानः छन्दोगो ज्येष्ठसामगः ।

त्रिमधुश्चेति विज्ञेया ब्राह्मणाः पङ्क्तिपावनाः ॥

इतोऽपि ब्राह्मणविषये तिस्रोषो गोविन्दपण्डितकृतायां

श्रद्धदीपिकायां द्रष्टव्यो विस्तरभिया नेहोक्तः ।

अथाऽनुकल्पः । तत्र मनुः—

एष वै प्रथमः कल्पः प्रदाने हव्यकव्ययोः ।

अनुकल्पस्त्वयं ज्ञेयः सदा सद्भिरनुष्ठितः ॥ (३१२४७)

मातामहं मातुलञ्च स्वस्त्रीयं श्वशुरं गुरुम् ।

दौहित्रं विद्वपतिं बन्धुसृत्विग्वाज्यौ च भोजयेत् ॥ (३१२४८)

विद्वपतिर्जामाता, बन्धुशब्देन शरीरबन्धवः स्नेहबन्धवश्च सूक्त-

न्तै । वसिष्ठः—शिष्यानपि गुणवतो भोजयेत् ।

असमानप्रवरको ह्यसगोत्रस्तथैव च ।

असम्बन्धी च विज्ञेयो ब्राह्मणः श्रद्धसुश्रिये ॥

श्राद्धेषु विनियोज्याः स्युः ब्राह्मणा ब्रह्मवित्तमाः ।

ये योनिसगोत्रमन्त्रान्तेवासिसम्बन्धवर्जिताः ॥

गर्गोऽपि—

नैकगोत्रे हविर्दद्यात्समानप्रवरेऽपि च ।

न चाऽज्ञातकुले दद्याद्यथा कन्या तथा हविः ॥

अभावे ह्यन्यगोत्राणां सगोत्रानपि भोजयेत् ।

अत्र सगोत्रशब्देन एकगोत्रा असम्बन्धिनः अभ्यनुज्ञायन्ते ।

सगोत्रश्च सप्तमपुरुषादूर्ध्वं पञ्चस्त इत्येके ।

तदुक्तं श्रद्धाकाशिकायां जाबालेन—

पद्भ्यस्तु पुरुषभ्याऽर्वाक् श्राद्धे हेयास्तु गोत्रजाः ।

पद्भ्यस्तु परतो भोज्या श्राद्धे स्युर्गोत्रजा अपि ॥ इति ।

नेत्यपरे—

समानोदकता चेषां सापिण्ड्यं वा भवेद्यदि ।

ते वर्ज्या हव्यकव्येषु नेतरे गोत्रिणो द्विजाः ॥

इति ब्राह्मेऽभिप्रेनात् । दिवोदासानिबन्धे बौधायनः—“तस्मदिदं

*Remember
Person's
to find*

विषं सपिण्डमप्याशयेत्' इति । एवंविधं गुणवन्तम् । तं च त्रिपुण्ड-
षात्परम् । तथाच गौतमः—“सर्गात्रांश्च भोजयेद्दूर्ध्वं त्रिभ्यो/
गुणवत्” इति । ‘गुणहान्या तु परेषां सगुणः सोदर्योऽपि भोजनी-
यः’ इति कल्पतरुः । वेदविद्विषाभावे भ्राता वा बहुश्रुतः पुत्रो वा
श्राद्धे तिथोष्य इति विद्वाद्दर्शः । वायुपुराणेऽपि—

‘पुत्रं वाप्यथवा पात्रं ज्ञानिनं यस्तु भोजयेत् ।

पितरस्तस्य तुष्यन्ति मुकुष्टेनैव कर्मणा ॥ इति ।

in a
single
Brahman
de ?

बहूनामलाभे एकोऽपि कार्यः । तदाह श्राद्धतत्त्वालोके वसिष्ठः—

अपि वा भोजयेदेकं ब्राह्मणं वेदपारगम् ।

यद्येकं भोजयेच्छ्राद्धं दैवं तत्र कथं भवेत् ॥

अन्नं पात्रे समुद्धृत्य सर्वस्य प्रकृतस्य तु ।

देवतायतने कृत्वा ततः श्राद्धं प्रवर्तयेत् ॥

मास्येदमौ तदन्नन्तु दद्याद्वा ब्रह्मचारिणे ।

एकब्राह्मणपक्षे विश्वेदेवस्थाने पात्रं प्रकल्प्य दैवे निवेद्य त-
मेकं विषं पित्रादिषु मातामहादिषु च नियुञ्जीत । शङ्खोऽपि—

एक एव यदा विप्रो द्वितीयो नोपपद्यते ।

पितृणां ब्राह्मणो योज्यो दैवे त्वर्षिं नियोजयेत् ॥

for no
Brahman
is omitted
-at.

विप्राऽभावे विशेषमाह वसिष्ठो नारायणसर्वज्ञे—

निधाय दर्भकवटूनासनेषु समाहितः ।

प्रैषानुप्रैष संयुक्तं विधानं परिकल्पयेत् ॥

दर्भकवटुपरिमितकुशमयो मृत्पिथः—

यज्ञवस्तुनि मुष्टौ च स्तम्भे दर्भकटौ तथा ।

दर्भसंख्या न विहिता विष्टरास्तरणेषु च ॥

no shank
is to
in 4 (2) &
eat

इति वचनात् ।

अथ वज्र्याः—

न श्राद्धे भोजयेन्मित्रं, धनैकार्योऽस्य सङ्ग्रहः ।

नारिं न विषं यं विद्यन्तु तं श्राद्धे भोजयेद् द्विजम् ॥

ये स्तेनाः पतिताः क्लीषा ये च नास्तिकवृत्तयः ।
 तान् हृद्यकव्ययोर्विप्राननर्हान्मनुरब्रवीत् ॥
 जटिलं वाऽनधीयानं, दुर्बलं कितवं तथा ।
 याजयन्ति च ये पूगान् तांश्च श्राद्धे न भोजयेत् ॥
 चिकित्सका देवळका मांसविक्रयिणस्तथा ।
 विपणेन च जीवन्तो वर्ज्याः स्युर्हृद्यकव्ययोः ॥
 भेष्यो ग्रामस्य राज्ञश्च कुनस्त्री ईयावदन्तकः ।
 प्रतिरोद्धा गुरोश्चैव त्यक्ताभिर्वाद्दुर्धृषिस्तथा ॥
 यक्ष्मी च पशुपालश्च परिवेत्ता निराकृतिः ।
 ब्रह्मद्विद् परिवित्तिश्च गणाभ्यन्तर एव च ॥
 कुशीलवोऽवकीर्णा च वृषळीपतिरेव च ।
 पौनर्भवश्च काणश्च यस्य चोपपत्तिर्गृहे ॥
 भृतकाध्यापको यश्च भृतकाध्यापितस्तथा ।
 शूद्रशिष्यो गुरुश्चैव वाक्दुष्टः कुण्डगोळकौ ॥
 अकारणपरित्यक्ता मातापित्रोर्गुरोस्तथा ।
 ब्राह्मण्यौनैश्च सम्बन्धैः संयोगं पतितैर्गतः ॥
 अगारदाही गरदः कुण्डाशी सोमविक्रयी ।
 समुद्रयात्री बन्दी च तैलिकः कूटकारकः ॥
 पित्रा विवदमानश्च केकरो मद्यपस्तथा ।
 पापरोग्यभिषास्तश्च दाम्भिको रसविक्रयी ॥
 धनुःशराणां कर्ता च यश्चाऽग्ने दिधिषूपतिः ।
 मित्रधुग् द्यूतवृत्तिश्च पुत्राचार्यस्तथैव च ॥
 भ्रासरी गण्डमाली च चित्रयथो पिशुनस्तथा ।
 जन्मघोऽन्धश्च वर्ज्याः स्युर्वेदनिन्दक एव च ॥
 हस्तिगोऽवोद्दमको नक्षत्रैर्यश्च जीवति ।
 पक्षिणां पौत्रको यश्च युद्धान्वाहस्तयैव च ॥

स्रोतंसां भेदकश्चैव तेषां वाऽऽवरणे(१) रतः ।

सुहसंवेशको दूतो वृक्षारोपक एव च ॥ . .

श्वक्रीडी श्येनजीवी च कन्यादूषक एव च ।

हिंस्रो वृषलपुत्रश्च गुणानाञ्चैव याजकः ॥

आचारहीनः क्लीबश्च नित्यं याजनकस्तथा ।

कृषिजीवी (२)दुष्टीपदी च सन्निरिन्दित एव च ॥

औरञ्जिको माहिषिकः परपूर्वापतिस्तथा ।

प्रेषनिर्यातकश्चैव वर्जनीयाः प्रयत्नतः ॥

एतान् विगर्हिताऽऽचारानपाक्वेयान् द्विजाऽधमान् ।

द्विजातिभ्रूरो विद्वानुभयत्राऽपि वर्जयेत् ॥ (म.स्म.३-१६७)

स्तेनो ब्राह्मणसुवर्णव्यतिरिक्तद्रव्यापहर्ता, ब्राह्मणसुवर्णह-
र्तुस्तु पतितपदेनैवाभिधानात् । पतितो महापातकी । क्लीबः स-
प्तविधो नपुंसकः ।

कर्मविपाकसङ्ग्रहे—

Kind of impiety

षण्डको वातजः षण्डः षण्डः क्लीबो नपुंसकः ।

कीलकश्चेति सप्तैवं क्लीबेभदा विभाषिताः ॥

तेषां स्त्रीतुल्यवाक्चेष्टः स्त्रीधर्मा षण्डको भवेत् ।

पुमान् भूत्वा स्वलिङ्गानि पश्चात् छिन्यात्तथैव च ॥

स्त्री च पुम्भावमास्थाय पुरुषाचारत्रद्वगुणा ।

वातजो नाम षण्डःस्यात्स्त्रीषण्डो वाऽपि नामतः ॥

असल्लिङ्गोऽपि षण्डःस्यात्षण्डस्तु म्लानमेहनः ।

अमेध्याशी पुमान् क्लीबो, नष्टरेता नपुंसकः ॥

• स कीलक इति ज्ञेयो यः क्लृप्त्वादात्मनः श्लिष्यम् ।

अन्येन सह संयोज्य पश्चात्तामेव सेवते ॥

(१) 'आवरणे' इति क पुस्तके पाठः ।

(२) 'कृषिजीवी स्तेयजीवी' क. ख. ग. ।

नास्तिकाः—नास्तिकर्म फलदमित्याभिमानिनस्तेभ्यो वृत्तिर्वेषा-
 न्ते । जटिलो ब्रह्मचारी । अनधीयानमिति तद्विशेषणम् । अन-
 धियानस्य श्राद्धे हेयत्वात् । दुर्बलः खल्वाटकः कपिलकेशो वा ।
 कितवो घृताऽऽसक्तः । पूगयाजको गणयाजकः । चिकित्सकाः
 मिषजः । देवलकाः धनार्थं देवार्चकाः । मांसविक्रयिणः सकृदग्निः ।
 “सद्यः मृतति मांसेनेति” । विपनेन वणिकक्रियया जीवन्तः । प्रे-
 ष्यो धनार्थं ग्रामराजाज्ञाकारी । कुनस्त्रिश्वावदन्तौ स्वभावान्मु-
 तनस्त्रकुण्डन्तौ, अनयोः पुराकृतकर्मशेषसम्बन्धादेव प्रतिषेधः ।
 प्रतिरोद्धा विरोधी । गुरुमति प्रतिकूलाचरणशक्तिः । त्यक्तश्री-
 तस्मार्त्ताग्निः । वृध्याजीवो वादुर्धुषिकः । सति सोदर्ये योग्ये च ज्येष्ठे
 कनीयान् प्रथमं दारः । प्रिसंयोगं कुरुते स परिवेत्ता । विस्मृतवेदो
 निराकृतिः । ब्रह्मदिद् ब्राह्मणद्वेषी । गणो मठाऽधिवासिनः । समूह-
 स्तन्मध्यगो गणाभ्यन्तरणः । कुशीलवो नटवृत्तिः । अवकीर्णी
 सक्तब्रह्मचर्यः । वृषल्यनेकविधा, तत्पतिः ।

तथाच— *Kinds of वृषली*

वन्ध्या च वृषली ज्ञेया वृषली च मृतमजा ।

चाण्डाली च वृता या च कुमारी या रजस्वला ॥

पूनर्भुरनेकविधा तत्पुत्रः पौनर्भवः । यस्य एकं चक्षुः स का-
 णः । यस्य गृहे भार्याया उपपतिर्जारः । मृतको मृत्या परिक्रीतो-
 ऽध्यापकः । तेनैवाऽध्यापितस्तस्य शिष्यः । शूद्रस्य शिष्यः शूद्रशिष्यः ।
 गुरुश्च शूद्रस्येति शेषः । वाग्दुष्टो निष्ठुरः । अमृते भर्तारि ब्राह्मणाज्जातः
 कुण्डः । मृते गोककः । शूद्रादिजातस्य श्राद्धे प्राप्स्यभावात् । कारणं
 पातित्वं तेन विनैव पित्रोर्भुरोश्च त्वागी । ब्राह्मैरध्वयनाऽध्यापनै-
 र्यौनैर्वैर्वाहिकैः सम्बन्धैः । पतितैः सावित्रीपतितैर्त्रात्यैर्य इमं सं-
 योगं गतः । अगारदाही शूद्रदाहकः । गरदो विषदः विप्रादभ्ये-
 पाम् । तस्य दानेन महापातकत्वेन सङ्गहात् । कुण्डाशी कुण्डगोकक-

योर्गृहे भोक्ता । सोमविक्रयी सोमलताविक्रेता । समुद्रायायी वहि-
 ब्रधाकृतेशेवः । बन्दी स्तावकः । तैलिकः तिलयन्त्रप्रवर्तकः ।
 कूटकारको मानतुलाकूटकारी । पित्रा धनार्थं विवदमानः । केकरोऽ-
 ध्यर्द्धहृष्टिः (१) । मद्यपो द्राक्षादिमद्यपः । पापरोगी कुष्ठादिनिन्ध्यरोगी ।
 अपिश्वस्तो वाच्ययुक्तः । दाम्भिकः पाखण्डकूटधर्मचारी । रसवि-
 क्रयी गुडलवणादिविक्रेता । वृथयर्थं धनुःशराणां कर्ता । उषे-
 ष्टायाम् अनूढायां कनीयसी परिणीयते । सा अग्नेदिधिषूः, तस्याः
 पतिः । मित्रधुक् मित्रद्वेषा । द्यूतवृत्तिर्द्यूतजीवकः । पुत्र एव आचा-
 र्योऽस्य असौ पुत्राचार्यः । ग्रामशिञ्जनाम् अक्षरपाठकश्च । भ्रामरी
 भ्रमरवत् अर्धाजकः । गण्डमाली गण्डरोगविशेषः । चित्री वृथयर्थं
 चित्रकर्ता । पिथुनः सूचकः । उन्मत्तः उन्मादवान् । अन्धः सर्वथा
 गतबधुः । वेदस्य निन्दकः वेदनिन्दकः । हस्तिगोऽश्वोष्ट्रदमको
 दमनजीवनः । नक्षत्रैः ज्योतिषवृत्त्या जीवदः । पक्षिणां पञ्जरसंस्थानां
 क्रीडार्थं पोषकः । युद्धाचार्यो युद्धोपदेष्टा । स्रोतसां भेदकः स्रोतो-
 निरोद्धा तेषां वावरणे रतः निजगतिप्रतिबन्धकः । ग्रहसंवेशको
 बर्द्धकिधर्मं वर्तमानः । दूतोदूत्यवृत्तिः । वृक्षारोपको वृथयर्थम् । इव-
 क्रीडी श्वभिः क्रीडी । इयेनैर्जीवति क्रयविक्रयादिना । कन्यादूषकः
 अङ्गुल्यादिना योनिविदारकः । हिंस्रः हिंसारतः । वृषलः अधर्मः
 तस्युत्रो वृषलपुत्रः, वृषल एव पुत्रो यस्याऽसौ वृषलपुत्रः । गणानां
 याजकः अनेकयजमानकोऽहीनद्वादशाहादियज्ञेषु याजकः । गुर्व-
 तिथिप्रस्युस्थानाद्याचारवर्जितः । क्लीबः स्वधर्मेष्वनुत्साही ।
 निजयाजकस्त्वेन परोद्वेजकः । स्वयङ्कृतया कृष्या यो जीवति । स्त्री-
 पृथ्वी व्याधिना स्थूलचरणाः । केनाऽपि निमित्तेन सतां निन्दाविषयः ।
 औरञ्जिको मेषपोषकः । माहिषिको व्यभिचारिण्यां भर्ता पुत्रश्च ।
 परपूर्वां प्रागन्यस्मै दत्ता तस्याः पतिः परिणता । प्रेतनिर्यातको सू-
 त्रेणु प्रेतहारकः ।

(१) नेत्रवियुक्त इत्यर्थः । 'तिरवा' इति शब्दात् ।

यमोऽपि—

काणाः कुन्दाश्च षण्ढाश्च कुतघ्ना गुरुतल्पमाः ।

ब्रह्मघ्नाश्च सुरापाश्च स्तेना गोघ्नाः चिकित्सकाः ॥

राष्ट्रकामास्तथोन्मत्ताः पशुविक्रयिणश्च ये ।

ज्ञानकूटास्तुलाकूटाः शिल्पिनौ ग्रामयाजकाः ॥

राजभृत्यान्धबधिरा मूकखल्वाटपङ्गवः ।

वणिजो मधुहर्तारो गरदा वनर्दाहकाः ॥

समयानां च भेत्तारः प्रदाने ये निवारकाः ।

प्रव्रज्योपनिवृत्तश्च वृथाप्रव्रजिताश्च ये ॥

यश्च प्रव्रजिताज्जातः प्रव्रज्यावासितश्च यः ।

समुद्रयायी वान्ताशी केशविक्रयिणश्च ये ॥

अवकीर्णा च वीरघ्नः गुरुघ्नः पितृदूषकः । इति

राष्ट्रकामाः नृपधर्मभिलाषुकाः । वान्ताशी भुक्तं वमित्वा-

लालसया पुनर्भोजी ।

सालङ्कारानोऽपि—

अविद्धकर्णैर्धृक्त्तं लम्बकर्णैस्तथैव च ।

दग्धकर्णैश्च यद् भुक्तं तदै रक्षांसि गच्छति ॥

लम्बकर्णलक्षणमाह गोभिलः—

इतुमूलादधःकर्णौ लम्बौ तु परिकीर्तितौ ।

द्व्यङ्गुली त्र्यङ्गुली शस्तौ तेन शातातपोऽब्रवीत् ॥

परीचिः—

अविद्धकर्णः कृष्णश्च लम्बकर्णस्तथैव च ।

वर्जनीयाः प्रयत्नेन ब्राह्मणाः श्राद्धकर्माणि ॥

मूकश्च घृत्तिकासश्च छिन्नाङ्गश्चाऽभिकाङ्गुलिः ।

गळरोमी च गडुमान् स्फुटिताङ्गश्च सञ्जरः ॥

षष्ठ्युपरमन्दाश्च ये चाऽग्रे दीर्घरोगिणः ।

चतुरश्रमवाहोभ्यः श्राद्धकौष प्रहापयेत् ॥

गडुवान् रोगवशादुरासि पृष्ठे चोन्नताऽस्थिसंस्थानः । सूपरो
यौवनेऽप्यमश्रुः । “काकघाती कूर्चहीनश्च” इतिस्मरणात् ।

स्कान्दे—

वर्जयेत्कुण्डगोलौ तु नास्तिकं रङ्गजीविनम् ।

• जपहोमविरक्तश्च शीकुनं राजसेवकम् ॥

चिकित्सकश्च गणकं कितवं हेतुवादिनम् ।

हेतुवादी तर्कक्षलेन सर्वत्र संशयकृत् ।

वृथाऽऽमिषपरित्यागी वृथापाकरुचिर्द्विजः ।

ब्राह्मणा ये विकर्मस्या वैडालव्रतिकाश्च ये ॥

धर्मध्वजी सदालुब्धश्छाद्मिल्लो लोकदम्भकः ।

वैडालव्रतिको ज्ञेयो हिंस्रः सर्वाभिसन्धकः (म.४।१९५) ॥

शुद्धः—

रोगी हीनातिरिक्ताङ्गः क्रूरो धूर्तपुरोहितः ।

अनध्यायेष्वधीयानः सूचकश्चानियामकः ।

विवादद्रष्टा—

स्त्रीजितश्च कदर्यश्च स्वदृष्यश्चाहितुण्डकः ।

ग्रामयाजी शूद्रयाजी वेदसोमोपजीवकः ॥

दृष्टेति श्राद्धादौ मांसत्यागी । आहितुण्डकः अहिदन्तो-
त्पाटकः ।

आत्मानं धर्मकृत्यश्च पुत्रदारांश्च पीडयेत् ।

लोभायः पितरौ मृत्यान् स कदर्य इति स्मृतः ॥

एतस्य काचिदपवादमाह—

• अपि चेन्मन्त्रविदू युक्तः शारीरैः पङ्क्तिदूषणैः ।

अदृष्यंतं यमः प्राह पङ्क्तिपावन एव सः ॥

एवं परीक्षाक्रमेण सम्यग्विचार्युं विवर्जितसंस्थाकान् ब्राह्म-
णान् पूर्वदुर्निमन्त्रयेत् ।

निमन्त्रयत पूर्वष्टुः स्वशास्त्रीयान् द्विजोत्तमान् ।

स्वशास्त्रीयद्विजाभावे द्विजानन्याग्निमन्त्रयेत् ॥

देमलोऽपि—

इवः कर्ताऽस्मीति निश्चित्य दाता विप्राग्निमन्त्रयेत् ।

निरामिषं सकृद् भुक्त्वा भुक्तैः सर्वजने गृहे ॥

स्वगृहे यद् जनजातमस्ति तस्मिन् भुक्तवति सति पश्चाद्ग्निमन्त्रयेत्
इत्यर्थः ।

आमिषाणि च पञ्चपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये—

‘प्राण्यङ्गमामिषं शुक्तिशङ्खादिचूर्णं कलं जम्बीरमामिषम्’ ।

धान्ये मसूरिका प्रोक्ता ह्यङ्गमपर्युचितं तथा ।

गोछागीमहिषीदुग्धादन्यदुग्धादि चामिषम् ॥

द्विजक्रीता रसास्सर्वे लवणं भूमिजं तथा ।

ताम्रपात्रस्थितं शक्यं जलं पल्लवसंस्थितम् ॥

आत्मार्थे पाचितं चाऽङ्गमामिषं तस्मिन् बुधैः । इति ॥

निमन्त्रणप्रकारो मात्स्ये—

दक्षिणं जानुमाच्छभ्य त्वं मयाऽत्र निमन्त्रितः । इति ।

चरणग्रहणे वर्णानां विशेषमाह प्रचेताः—

दक्षिणं चरणं विप्राः सव्यं च क्षत्रियस्तथा ।

पादावादाय वैश्यो द्वौ शूद्रश्च प्रीतिपूर्वकम् ॥

निमन्त्रयेदिति शेषः । निमन्त्रणं शिष्यादिभिरपि कार्यम् ।

यथाऽऽह यमः—“स्वयं शिष्योऽथवा सुतः” इति ।

प्रचेताः—

सवर्णम्प्रेषयेदाप्तं द्विजानामुपमन्त्रणे ।

एषु पूर्वः पूर्वैः भवान् । यमः—

अभोज्यं ब्राह्मणस्वामिं वृषलेन निमन्त्रितम् ।

तथैव वृषलस्याऽप्ये ब्राह्मणेन निमन्त्रितम् ॥

ब्राह्मणशूद्रयोरेव निषेधात् क्षत्रियवैश्यकर्तृके आज्ञे प्रीति-

येन निमन्त्रितेऽपि न दोषः । अत एव पूर्ववचने सर्वर्णपदं संभवा-
भिप्रायम् ।

Number
? 200
500

ब्राह्मणसंख्यामाह—

बहुत्वं ब्राह्मणानाम् तु नैव श्राद्धेषु शस्यते ।

द्वौ दैवे पितृकार्ये श्रानेकैकमुभयत्र वा ॥

ब्राह्मणान् भोजयेत् श्राद्धे नाऽधिकं तनुयादतः ॥ इति ।

ब्राह्मणेनऽपि अनिन्द्याऽऽमन्त्रणं न प्रत्याख्येयम् । 'अनिन्द्ये-
नामन्त्रितो नापक्रामेत' इति । 'अशक्तेन प्रत्याख्यानं कर्तव्यम्' इति ।

यस्तु निमन्त्रितं ब्राह्मणं त्यजति तं प्रत्याह नारायणः—

केतनं कारयित्वा तु निवारयति दुर्मतिः ।

ब्रह्महत्यामवाप्नोति शूद्रयो नौ च जायते ॥

एतस्मिन्नेनसि प्राप्तौ ब्राह्मणो नियतः शुचिः ।

यतिश्चान्द्रायणं कृत्वा तस्मात्पीपात्प्रमुष्यते ॥ इति ।

यस्तु निमन्त्रणमङ्गीकृत्य भोजनसमर्थोऽपि भोजयितारं त्य-

जतिं तं प्रत्याह मनुः—

केतितस्तु यथान्यायं ह्यव्यकृत्ये द्विजोत्तमः ।

कथञ्चिदप्यतिक्रामपापः शूकरतां व्रजेत् ॥ (३।१.९०)

केतितो निमन्त्रितः । कथञ्चिदिति । मिष्टान्नबहुदक्षिणाको-
भादिना न तु भोजनाऽसामर्थ्येनेत्यर्थः । तदेतदाप्तविप्रविषयम् ।
तथाच—

विद्यावान्सधनो विद्वान् भोज्याग्नेन निमन्त्रितः ।

कथञ्चिदप्यतिक्रामन् पापः शूकरतां व्रजेत् ॥ इति ।

यस्तु तस्माद् गृहीत्वा अन्यस्मादपि ग्रहीतुमिच्छति तं प्रति
निषेधमाह कात्यायनः— 'निमन्त्रितोऽन्यदन्वदक्षं न प्रतिगृहीयात्'
इति । आमन्त्रितः पूर्वमन्येन अनिमन्त्रितस्तदाद्यादन्वदक्षं
तन्मूलादिक्रमं न प्रतिगृहीयादित्यर्थः । देवकोऽपि—

in line 15
9 lines
605 ant

पूर्वं निमन्त्रितोऽन्वेज कुर्यादन्यप्रतिग्रहम् ।

शुक्ताहारोऽथवा भुङ्क्ते मुकुतं तस्य नश्यति ॥

यस्त्वामन्त्रितोऽप्यनागमनेन कुतपादिश्राद्धकालातिषर्त्तिं करो-
ति, तस्य दोष आदित्यपुराणे दर्शितः—

आमन्त्रितश्चिरञ्चैव कुर्याद्विपः कदाचन ।

कर्तृभोक्त्रोर्ब्रह्मचर्यमाह सङ्ग्रहकारः—

श्राद्धभुक् प्रातरुत्थाय प्रकुर्यादन्तधावनम् ।

श्राद्धकर्ता न कुर्वीत दन्तानां धावनं बुधः ॥

इतिहासोऽपि—

दन्तधावनताम्बूलं तैलाभ्यङ्गमभोजनम् ।

रत्यौषधपराङ्गं च श्राद्धकृत्सप्त वर्जयेत् ॥

श्राद्धकर्तुः दन्तधावने प्रायाश्चित्तमुक्तं विष्णुरहस्ये—

श्राद्धोपवासदिवसे स्वादित्वा दन्तधावनम् ।

गायत्र्या शतसम्पूतमम्बु प्राश्य विशुध्यति ॥

पुनर्भोजनमध्वानं भारमायासमैथुनम् ।

दानं प्रतिग्रहो होमः श्राद्धभुक् त्वष्ट वर्जयेत् ॥

आमन्त्रितस्तु यः श्राद्धे कलहं कुरुते द्विजः ।

भवन्ति पितरस्तस्य तन्मासं त्वश्रुभोजनाः ॥

आमन्त्रितस्तु यः श्राद्धे भारमुद्दहते द्विजः ।

भवन्ति पितरस्तस्य तन्मासं स्वेदभोजनाः ॥

आमन्त्रितस्तु यः श्राद्धे हिंसां वै कुरुते द्विजः ।

भवन्ति पितरस्तस्य तन्मासं मलभोजनाः ॥

आमन्त्रितस्तु यः श्राद्धे अध्वानं प्रतिपद्यते ।

भवन्ति पितरस्तस्य तन्मासं पांसुभोजनाः ॥

आश्वलायनाऽऽचार्योऽपि—

भोजनं कश्चिद्यत् यः श्राद्धं पूर्वरत्रौ प्रयत्नतः ।

व्यंवायं भोजनंचैव ऋतौ चाऽपि विवर्जयेत् ॥
 रेतोगर्तं पातयति स्त्रियं गत्वा निमन्त्रितः ।
 ऋरिष्यंश्च तथा भुक्त्वा स्वपितृन् क्षाश्वतीः समाः ॥

पि—

नेत्री ब्रह्मचारी स्याच्छ्राद्धकृच्छ्रादिकैस्सह ।
 अन्यथा वर्तमानौ तु स्यातां निरयगामिनौ ॥
 पुनर्भोजनमध्वानं भारयामासमैथुनम् ।
 श्राद्धकृच्छ्राद्धमुक् चैव सर्वमेतद्विवर्जयेत् ॥
 स्वाध्यायं कलहं चैव दिवास्वप्नं च स्वेच्छया ॥

यमः—

पुनर्भोजनमध्वानं भाराऽध्ययनमैथुनम् ।
 सन्ध्याम्प्रतिग्रहं होमं श्राद्धभोक्तःऽष्ट वर्जयेत् ॥

धर्मसारसुधानिधौ—

ब्रह्महत्यामवाप्नोति यदि स्त्रीगमनं चरेत् ।
 अध्वानं कलहं क्रोधं पुत्रमार्यादिताडनम् ॥
 श्राद्धभोजी भवेद्योहि तद्दिने परिवर्जयेत् ।
 श्राद्धेनियुक्तो भुक्त्वा वा भोजयित्वा नियुज्य वा ॥
 व्यावाये रेतसोगर्तं पातयत्यात्मनः पितृन् ।
 श्राद्धं दृष्ट्वा च भुक्त्वा च सङ्गमश्च समाचरेत् ॥
 पितरस्तस्य तन्मासं भवन्ति रेतर्भोजनाः ।

वासिष्ठः—

यंस्तयोर्जायते गर्भो दृष्ट्वा भुक्त्वा च पैतृकम् ।
 न स विद्यामवाप्नोति क्षीणायुश्चैव जायते ॥
 श्राद्धं दृष्ट्वा च भुक्त्वा वा प्यर्ध्वानं योऽपि गच्छति ।
 पितरस्तस्य तन्मासं भवन्ते पांसुभोजनाः ॥
 श्राद्धं दृष्ट्वा च भुक्त्वा च पारंमुद्गहते द्विजः ।
 पितरस्तस्य तन्मासं भवन्ते भारपीडिताः ॥

अन्येऽपि कर्तृनियमा उच्यन्ते । सोमोत्पत्तौ—
 वनस्पतिगते सोमे यस्तु हिंस्याद्वनस्पतिम् ।
 घोरारायां भ्रूणहत्यायां युज्यते नाऽत्र संशयः ॥
 एतत् कर्मार्थाभ्यतिरिक्तविषयम्, इध्माद्याहरणस्य तस्यामेव
 विहितत्वात् ।

वनस्पतिगते सोमे अनडुहो यस्तु बाहयेत् ।
 नाश्रन्ति पितरस्तस्य दशवर्षाणि पञ्च च ॥
 वनस्पतिगते सोमे मन्थानं यस्तु कारयेत् ।
 गावस्तस्य प्रणश्यन्ति चिरकालमुपस्थिताः ॥
 वनस्पतिगते सोमे स्त्रियं वा योऽधिगच्छति ।
 स्वर्गस्थाः पितरस्तस्य च्यवन्ते नाऽत्र संशयः ॥

इति कर्तृभोक्तृनियमाः ।

इति श्रीमहाराजाऽधिराजसहगिलान्वयैकभूषण परमा-
 नन्दादिष्ट 'धर्माधिकारि' श्रीरामपण्डितात्मज पण्डित
 विनायक कृतायां श्राद्धकल्पलतायां देशविज-कर्तृ-
 नियमनिरूपणस्तबको द्वितीयः ॥ २ ॥

अथ स्नात्वा कर्माऽधिकारसिद्धार्थमूर्ध्वपुण्ड्रं धारयेत् ।

तथाच हेमाद्रौ—

caste man

जपे होमे तथा दाने स्वाध्याये पितृकर्मणि ।

तत्सर्वं नश्यति क्षिप्रमूर्ध्वपुण्ड्रं विना कृतम् ॥ इति ।

सङ्ग्रहे तु—

वामहस्ते तु दर्भाश्च गृहे रज्जुवर्कं तथा ।

ललाटे तिलकं दृष्ट्वा निराशाः पितरो गताः ॥ इति ।

अन्यच्च—

ऊर्ध्वं पुण्ड्रं द्विजातीनामुग्निहोत्रसमो विधिः ।

श्राद्धकालेऽमुसम्प्राप्ते कर्ता भोक्ता च तत् त्यजेत् ॥ इति ।

अत्र वृद्धाचारतो व्यवस्थाद्रष्टव्या । तिर्यक् पुण्ड्रस्य निषेधउक्ता
हेमाद्रौ—

तिर्यक् पुण्ड्रं तथा दृष्ट्वा स्कन्धे मास्यन्तथैव च ।

निराशाः पितरो यान्ति दृष्ट्वा च वृषलीपतिम् ॥ इति ।

तदेतद्गन्धेन तिर्यक् पुण्ड्रधारणविषयं मास्यसाहचर्यात् ।

प्राक् पिण्डदानान्गन्धाद्यैर्नाऽल्लक्षुर्वास्त्वविग्रहम् ।

इत्याश्वलायनाऽऽचार्यवचनात् । आचार्येणाऽप्यन्धे निय-
मा उक्ताः—

दानाऽध्ययनदेवार्चाजपहोमव्रतादिकान् ।

न कुर्याच्छ्राद्धदिवसे प्राग्निप्राणां विसर्जनात् ॥ इति ।

अत्र देवार्चनजपहोमनिषेधस्तु नित्यव्यतिरिक्तविषयः ।

तेषां नित्यकर्मणां कालात्यये दोषस्मरणात् अनन्यगतिकत्वा-
च्चेति ।

श्राद्धेऽहिं भोजयेद्वास्तौ न बालानपि यत्नतः ।

प्राक् पिण्डदानान्गन्धाद्यैर्नाऽल्लक्षुर्वास्त्वविग्रहम् ॥

वास्तौ गृहे ।

स्त्रीकर्तृकनियमाः उक्ताः—पाद्ये—

मुक्तकच्छा तु या नारी मुक्तकेशी तथैव च ।

हसते रुदते चैव निराशाः पितरो गताः ॥ इति ।

अथ पाकारम्भप्रकार उच्यते । तत्र तावद् भूत्यादिद्यु-
द्धिः कार्येत्साहोशनाः—

‘गोमयादिकेभूमिभाजनभाण्डशौचं कुर्यात्’ इति । भूमिर्बृह-
वेशः । भाजनं पाकपात्रम् । भाण्डं तण्डुलादिपूरणपात्रम् । शौ-
चं गोमयेनाभ्युक्षणम् ।

देवस्तु युष्यन्तरमाह—

तिलानाविकरेत्तत्र सर्वतो बन्धयेदजान् ।

असुरोपहतं सर्वं तिलैः शुष्यत्यजेन च ॥

aliga kama
yashwan in
de Sraddha

तथैव यन्त्रितो दातुः प्रातः स्नात्वा सहाम्बरः ।
 आरुभेत नवैः पात्रैरक्षारम्भं च बान्धवैः ॥ इति ।
 समानप्रवरैर्मित्रैः सपिण्डैश्च गुणान्वितैः ।
 कृतोपकारिभिश्चाऽपि पितृकार्यञ्च शस्यते ॥

अथ पञ्चनमोष्ठान्युच्यन्ते ।

तत्र हेमाद्रावादित्यपुराणम्—

पचेदन्नानि मुस्तातः पात्रेषु द्याचिषु स्वयम् ।
 स्वर्णादिधातुजातेषु मृन्मयेष्वपि वा द्विजः ॥
 अच्छिद्रेष्वविकल्पेषु तथाऽनुपहतेषु च ।
 नापसेषु न भिक्षेषु दूषितेष्वपि कर्हिचित् ॥
 पूर्वं कृतोपयोगेषु मृन्मयेषु न तु क्वचित् ।

चमत्कारखण्डे—

पचमानस्तु भाण्डेषु भक्त्या ताम्रमयेषु च ॥
 समुद्धरति वै घोरात् पितृन् दुःखमहाऽर्णवात् ।
 तैजसानाम भावे तु पिठरैः(१) मृन्मयेऽपि च ॥
 नैवाऽशुचौ प्रकुर्वीत पाकं पित्रर्थमादरात् ।
 तस्य तुष्पन्ति पितरः प्रीता यञ्छति वाञ्छितम् ॥

अथः पात्रेषु पचने दोषः स्मर्यते—

न कदाचित्पचेदन्नमयःस्थालीषु पैतृकम् ।
 अयसो दर्शनादेव पितरो विद्रवन्ति हि ॥
 कालार्थं विश्लेषेण निन्दन्ति पितृकर्माणि ।
 फलाज्ञाश्चैव घाकानां छेदनाऽर्थानि यानि तु ॥
 महानसेऽपि शस्तानि तेषामेव हि सन्धिधिः ।
 इष्यते नेतरस्याऽत्र शस्त्रमात्रस्य दर्शनम् ॥

(१) 'पितृणां' इति क. क. म. पुस्तकेषु पाठः ।

श्राद्धदेशे तु विदुषां पितृणां प्रीतिमिच्छता ।

महानसेऽपि युक्तानामपि कार्यं न दर्शनम् ॥

अत्र पक्षाक्षस्थापनादौ विशेष उच्यते आदित्यपुराणे—

पक्षाक्षस्थापनार्थन्तु शस्यन्ते दारुजान्यपि ।

द्वर्ष्यादीन्यपि कार्याणि यज्ञियैरपि दारुभिः ॥ इति ।

इति पाकारम्भनियमाः ।

अथ पाकारहृद्रव्याण्युच्यन्ते ।

चन्द्रिकायां ब्रह्माण्डपुराणे—

कृष्णमाषतिलाश्चैव श्रष्टाःस्युर्यवशाळयः ।

महायवा व्रीहियवास्तथैव च मधूलिकाः ॥

मधूलिका भाषाणां=सर्वुजा=इतिप्रसिद्धाः ।

कृष्णश्वेताश्च लोहाश्च ग्राह्याः स्युः श्राद्धकर्मणि ॥

यवादयो लोहान्ताश्च व्रीहिधान्यविशेषाः ।

अगोभूमश्च यच्छ्राद्धं कृतमप्यकृतं भवेत् ॥

तृप्ताःस्युः पितरो यस्मादभावे पायसादयः ॥

हेमाद्रौ ब्रह्मवैवर्तपुराणे—

गोधूमाश्च यवाश्चैव समूहा रक्तशाळयः ।

एते सोमात्समुद्भूताः पितृणाममृतं तत्रः ॥

तस्मात्तत्प्रयतैर्देया एते श्राद्धेषु वंशजैः ।

भविष्यपुराणे—

क्षीरं क्षीरविकारांश्च पायसं शर्करा मधु ।

देयं श्राद्धेषु यत्रेन सर्वदा पितृत्तये ॥

शाकादीन्युच्यन्ते वायुपुराणे—

तिलाः श्यामाकनींबारा गोधूमा व्रीहयो यवाः ।

महायवा व्रीहियवास्तथैव च मधूलिकाः ॥

कालशाकं(१) महाशाकं द्रोणशाकं तथार्द्रकम् ।

(१) 'मूसा' इति भाषायां प्रसिद्धम् ।

बिल्वामलकमृद्धीकाः पनसाम्नातदादिमम् ॥
 चन्धे शालेवतासोदखर्जूरश्च कसेरुकम् ।
 कोविदारश्च कन्दश्च पटोलं बृहतीफलम् ॥ •
 पिप्पली मरिचं चैव एला सुण्ठी तु सैन्धवम् ।
 शर्करागुडकर्पूरवदरीद्रोणपत्रकम् ॥
 सर्वं गभ्याविकाराणि प्रशस्तानि च पैतृके ।
 मधुकं रामठं चैव कर्पूरं मरिचं गुडम् ॥ •
 श्राद्धकर्माणि शस्तानि सैन्धवं त्रपुसं तथा । •

रामठम् = हिकु । वायुपुराणे —

श्यामाका हस्तिनामानो विद्धि यद्भविनिःसृतान् ।
 प्रसासिका प्रियङ्गुश्च मुद्गाश्च हरितास्तथा ॥
 एतान्यपि समानि स्युः श्यामाकानां गुणैर्द्विजाः ।
 कसेरुः कोविदारश्च नालकन्दस्तथा बिसम् ॥
 तमालं शतकन्दश्च तथा वै शितकन्दकम् ।
 कालेयं कालशाकञ्च सुनिषण्णं सुवर्षलम् ॥
 मांसं शाकं दधि धीरं शस्तं वेत्राङ्कुरस्तथा ।
 कट्फलं कोकनिद्रासा(१) लकुरं मोचमेव च ॥
 अलाबु ग्रीवकं चारु कर्कन्धु मकसावहयम् ।
 कर्कन्धुविशेषणानि अलाबुग्रीवकमित्यादीनि ।
 वैकङ्कतं नारिकेरं शृङ्गाटकमरुषकम् ।
 पिप्पली मरिचं चैव पटोलं बृहतीफलम् ॥
 एषमादीनि चान्यानि स्वादूनि मधुराणि च ।
 नागरं चाऽत्र वै देयं दीर्घमूलकमेव च ॥ इति । •
 प्रसासिकाख्यं (२) धान्यम्, कसेरुः कूलजो मूलविशेषः । कोनि-

(१) 'कीकति द्वाक्षा' इति च पुस्तक पाठः ।

(२) 'पसाही' इति भाषायाम् । •

दारः श्वेतकाञ्चनारसदृशः। नाककन्दो बालमृत्की। शतकन्दः शताव-
री। शितकन्दं शास्त्रकं करालारुचं शाकम्। मुनिवन्धा चात्रेरीसदृशं
शाकम्। सुवर्चलं शाकविशेषः। कोङ्कणदेशोद्भवा कोङ्कणीद्राक्षा।
मोषं कदलीफलम्, कर्कन्धू(?) बदरी। शृङ्गाटकं जलोद्भवमूल-
विशेषः। तत्साहचर्यात् मरुषकमपि तथैव। नागरं सुंठी। इतराणि-
वाभिधानतो देशविशेषनिवासिभिस्त्ववगन्तव्यानि। एवमादीन्य-
न्यान्वपि विहितानि स्मृत्यन्तरतोऽवगन्तव्यानि। यत्र स्मृतिकारैः-
श्राद्धे मांसस्य प्राशस्त्यसूक्तम् तत् कल्पियुगेतरविषयम्

*Hand
written
in
Kalyuga*

Kali var 77

अज्ञता गोपशुश्रूषैव श्राद्धे मांसं तथा मधु।

देवराज सुतोत्पत्तिः कलौ पञ्च विकर्षयेत् ॥

इति निगमवाक्येन निषिद्धत्वात्। तथा बृहन्नारदीये द्वाविं-
शेऽध्याये।

द्विजस्यावधौ तु नौचातुः शोषितस्याऽपि सङ्ग्रहः।

नकार्यः—(२)

समुद्रपान्नास्तीकारः कमण्डलुविधारणम्।

द्विजानामसवर्णासु कन्यासूपगतं तथा ॥

देवराज सुतोत्पत्तिर्मधुपर्कं पशोर्वधः।

मांसदानं तथा श्राद्धे वानप्रस्थाश्रमस्तथा ॥

दत्ताक्षतायाः कन्यायाः पुनर्दानं पुरस्य च।

दीर्घकालं ब्रह्मचर्यं मरमेधाश्वमेधकौ ॥

महाप्रस्थानगमनं गोपेक्षं तथा मलः।

इमान् वर्मान् कल्पियुगे वर्ज्यानाहुर्वनीविणः ॥ इति।

बृहस्पतराश्रयेऽपि—

शौर्यं च पञ्चयुद्धिश्च भद्रा च परमा यदि।

(१) 'कर्कन्धूर्बदरीकोलिः' इत्यमरः।

(२) अयं श्लोको च पुस्तके नास्ति।

अनन्तवृत्तिकं श्राद्धे एतत्सल्लु, न चाभिषम् ॥

तथा—

यस्तु प्राणिबंधं कृत्वा मांसेन तर्पयेत्स्वितृन् ।

सोऽविद्वांश्चन्दनं दग्ध्वा कुर्यादङ्गारविक्रयम् ॥

क्षिप्त्वा कूपे यथा किञ्चिद्बाल्यः प्राप्तुं तदिच्छति ।

एतस्यज्ञानतः सोऽपि मांसेन श्राद्धकृत्तथा ॥ इति ।

श्रीभागवतेऽपि सप्तमस्कन्धे, पञ्चदशोऽध्याये—

न दद्यादाभिषं श्राद्धे न चाग्राह्यमत्स्ववित् ।

मुन्यन्नैः स्यात्परा प्रीतिर्यथा न पशुर्हिसया ॥ (श्लो० ७)

नैताहसः परो धर्मो नृणां सद्धर्ममिच्छताम् ।

न्यासोदण्डस्य भूतेषु मनोवाक्कायजस्य यः ॥ इति । (श्लो० ८)

अथञ्चाऽर्धो हेमाद्रिमाधवीयमदनरत्नपृथ्वीचन्द्रोदयस्मृतिर-
त्नावलीस्मृतिचन्द्रिकादिवोदासप्रकाशदीपिकाविवरणाद्यनेकग्रन्थेषु
धर्मज्ञसमयमूलककलिवर्ष्यगणने

“वरातिथिपितृभ्यश्च पशूपाकरणक्रिया”

इति वाक्यानुरोधेन श्राद्धेषूपाकरणनिषेधान्मांसनिषेधइत्य-
भिधाय निर्णतः । याच वर्णव्यवस्था पुलस्त्येनोक्ता—

मुन्यन्नं ब्राह्मणस्योक्तं, मांसं क्षत्रियवैश्ययोः ।

मधुपदानं शूद्रस्य सर्वेषाञ्चाऽविरोधि यत् ॥ इति,

सापि कलियुगाऽतिरिक्तविषयेति । अन्यच्च कलिमांसनिषेध-
साधकं युक्तिमुक्ताकदम्बकमस्माभिर्मांसमीमांसायामतिविस्तरेणावि-
ष्कृतमिति नेहोच्यते विस्तरभयात् ।

अथ वर्ज्यानि ।

तत्र शङ्खः—

मृत्पुं सुरसं सिधुं फालक्यं मधुकं तथा ।

कूप्याण्डालानुचोर्वाङ्गकोषिदारान्श्च वर्जयेत् ॥

पिप्पलीमरिचश्चैव तथा के पिण्डमूलकम् ।

कृतञ्च लवणं सर्वं चञ्चाग्रञ्च विवर्जयेत् ॥ इति ।

कोविदारपिप्पलीमरीचवंशाकुरुणां विहितप्रतिविद्धत्वादिक-
स्पः । एवं हिंशुषीनपूरादीनामपि ज्ञेयम् । अथवा पिप्पलीमरीचयोः
शाकादिनिक्षिप्तयोः प्रत्यक्षयोर्निषेधः । हिंशुनिषेधः शाकेषु फ-
लक्षयजनेषु ।

तथाच बर्जप्रकरणे व्यासः—

‘हिंशुद्रव्येषु शाकेषु’ इति शाकविशेषणम् । अन्यथा द्रव्येष्वि-
स्यनेनैव सिद्धे शाकपदं व्यर्थं स्यात् ।

ब्रह्माण्डपुराणे—

आसनारूढमन्नाद्यं पादोपहतमेव च ।

अमेध्यैर्जङ्गमैःस्पृष्टं शुष्कं पर्युषितं च यत् ॥

द्विःस्विन्नं परिदग्धं च तथैवाग्नाबलेहितम् ।

शार्कराकीटपाषाणैः केशैर्यन्वाप्युपद्रुतम् ॥

पिण्याकं मयितञ्चैव तथातिलवणञ्च यत् ।

सिद्धाः कृताश्च ये भक्ष्याः प्रत्यक्षलवणीकृताः ॥

वाग्भावदुष्टाश्च तथा दुष्टाश्चोपहतास्तथा ।

वाससा चावधूतानि वर्ज्यानि श्राद्धकर्माणि ॥

राजमाषास्तथा चैव वर्ज्याः सद्भिः प्रयजतः ।

आबिकं मार्गमौष्ट्रञ्च सर्वमैकशफं च यत् ।

ग्राहिषं चामरञ्चैव पयो वर्ज्यं विजानता ॥

द्विःस्विन्नं शाकादिसंस्कारार्थं जीरकादिप्रक्षेपेण यस्पुनः पः
कम् । अत एव पाकादावेव संस्कारः कर्तव्यः । यत् व्यञ्जनादेरौ-

ष्ण्यापगमेऽपि पुनरुष्णताऽऽपाद्यते सोऽपि द्वितीयः पाकः, स च बर्ज-
नीयः । अग्नाबलेहितम् उपयुक्तभागम् । सिद्धाः कृताः सन्त इति ।

येषु सिद्धेषुत्तरकाकं प्रत्यक्षलवणप्रक्षेपःकृतस्ते तादृशाः ।

विश्वामित्रः—

कीदृशा राजमाषाश्च मधुराश्च कुलस्थकाः ।

सत्कवश्चाडकीकुष्णजीरकं काश्चनालकम् ॥
 कुमुदभ्रमतसी चैव बिडाललवणं तथा ।
 एरण्डकाः कुष्णमाषा आविकं माहिषं तथा ॥
 गन्धारिका मर्कटी च महासर्षपमुलकम् ।
 कुष्णसर्षपपत्रं च करीरं काश्चीनालकम् ॥
 कपित्थं कुतकश्चैव नालिकेरं च पैतिकम् ।
 अलाबु शतपुष्पी च कूष्माण्डं पृतिगन्धि च ॥
 पतितस्पशितं दृष्टं क्रियामुद्दिश्य याचितम् ।
 जम्बूफलविपकश्च पिण्याकं तण्डुलीयकम् ॥
 सर्वं पर्युषितश्चैव आच्छ्रान्तं वाऽवधूनितम् ।
 परिदग्धमदग्धं च वर्जयेच्छ्राद्धकर्माणि ॥

नित्यभोजनादौ प्रतिषेधकशास्त्रेषु यद्भक्ष्यं कीर्तितं तत्सर्वं श्राद्धे
 वर्ज्यमिति ।

कुष्णधान्यानि सर्वाणि वर्जयेच्छ्राद्धकर्माणि ।
 न वर्जयेत्तिलाश्चैव मुद्गमाषास्तथैव च ॥
 कोद्रवान् राजमाषांश्च कुलत्थान्वरकांस्तथा ।
 निष्पावांस्तु विशेषेण पञ्चैतांश्च विवर्जयेत् ॥ इति ।

वरकाः वनमुद्गाः । निष्पावाः कुष्णनिष्पावाः । कूष्माण्डं
 मट्टिषीक्षीरम् । आढक्यो राजसर्षपाः ।

चणका राजमाषाश्च घ्नन्ति श्राद्धं न संशयः ।
 पिण्डालुकश्च तुण्डीकं करमर्दश्च नालिका ॥
 कूष्माण्डं बहुबीजानि श्राद्धे द्रव्यां ब्रजत्यधः ।
 बिडालोष्णिल्लमाघ्रातं श्राद्धे यत्नेन वर्जयेत् ॥

स्मृत्यन्तरेऽपि वर्ज्यमुक्तम्—

अतिशुष्काऽऽम्ललवणं विरसं चावदूषितम् ।
 राजसं तामंसं चैव इत्यकस्येषु वर्जयेत् ॥ इति ।

राजसतामसाहारा उक्ताः श्रीगलियायाम्—

कट्वम्ललवणात्युष्णतिका रूक्षविदाहिनः ।

आहारा राजसश्रेष्ठा दुःखशोका भयप्रदाः ॥

यातयामं गतरसं पूतिपर्युषितञ्च यत् ।

उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसं स्मृतम् ॥

आयुः सखबलारोग्य सुखप्राप्तिविवर्धनाः ।

रस्याः स्निग्धा स्थिराहृद्या आहाराः सात्विकमियाः ॥

एवं वर्ज्यानि पंथांस्याह याज्ञवल्क्यः—

सन्धिन्यनिर्दशाऽवत्सामोपयः परिवर्जयेत् ।

औष्ट्रमैकशफंल्लेणमारण्यकमथप्रविकम् ॥ (१—१७०)

वृषाक्रान्ता सा सन्धिनी । अथवा एकस्मिन्नेव काले दुग्ध-
प्राणा सा सन्धिनी । अथवा या वत्सान्तरसन्धानेन दुग्धते सा सन्धि-
नी । यस्याः प्रसूतायाः दशदिनान्यनतिक्रान्तानि सा अनिर्देशा ।
अवत्सा मृतवत्सा ।

सुमन्तुः—

पयो दधि घृतञ्चैव गवां श्राद्धेषु पावनम् ।

महिषीनां घृते प्राहुः श्रेष्ठं न तु पयः क्वचित् ॥

षडश्रिंशन्मते—

क्षीरादि माहिषं वर्ज्यमभक्ष्यं यच्च कीर्तितम् ॥ इति ।

क्षीरादिति—पयोदधिनी गृह्यते । 'माहिषश्च पयो दधि'इति
भारद्वाजस्मरणात् । 'अभक्ष्यं यच्च कीर्तितम्'इति पुरुषार्थतया प्रति-
षेधकशालेषु यद् भक्ष्यं कीर्तितं, तच्च सर्वं श्राद्धकर्माणि न देयमि-
त्यर्थः । मासतृप्तिकरणानि—

“तिकैर्प्रीहियवैर्माषैरङ्गिर्मूलफलेन वा ।

दक्षेन मासं प्रीयन्ते विधिर्वर्तिपतरो नृणाम् ॥ इति ।

कात्यायनोऽपि—

“ग्राम्यादिभिरोषधीभिर्मांसं तृप्तिस्तदभावे मूळफलेरङ्गिर्वा स-
हाग्नेनोत्तरांस्तर्पयेन्ति” इति ।

मार्कण्डेयोऽपि—

गोधूमैरिष्टुभिर्मुद्गैः सतीनैश्चक्रैरपि । (१)

श्राद्धेषु दत्तैः प्रीयन्ते मासमेकं पितामहाः ॥

सतीनाः कलापाः । ‘कलायस्तु सतीनकः’ इत्यमरः
(२।१।१६) । कलायो वर्तुलाकारश्चणकः । चणकाः प्रसिद्धाः ।

सायणीये—

अगोधूमश्च यच्छ्राद्धं माषमुद्गविवाजितम् ।

तैलं पक्वेन रहितं कर्तुरायुःक्षयो भवेत् ।

नारदीयपुराणे—

भक्ष्यं भोज्यं च लेह्यं च पेयं चोष्यं तथैव च ।

पञ्चप्रकारं शशनं हृद्यं गन्धरसान्वितम् ॥

अन्यत्रोऽपि—

भक्ष्यैर्भोज्यैश्च लेह्यैश्च चोष्यैः पेयैः सखाण्डवैः ।

ग्राम्याभिरोषधीभिश्च मांसं सन्तर्पयेत्पितृभ्यः ॥

यत्तु काठिन्यातिक्षयादन्तैः प्रयत्नेन खण्डयित्वा भक्ष्यते
तद्भक्ष्यम् । यथा मोदकादि । अनायासेन चर्वणीयं भोज्यम् ।
यथा भक्तादि । रसनापरिस्पन्दमात्ररसनीयं लेह्यम् । यथा
प्रलेहादि । यस्य तु बदनव्यापारेण रसमात्रपानं तच्चोष्यम् । यथा
इष्टुकाण्डादि । सुखमाहृतमात्रप्राश्यं पेयम् । यथा क्षीरादि । सा-
म्ब्रमासत्वान्य(धान्य)फलमूलादिनिर्यासः खण्डवः । मुद्गव्रीहि
यवतिलमाषमियङ्गुगोधूमाः सप्त ग्राम्योषधयः ।

मार्कण्डेयस्तु—

विदार्या च भुसुण्डैश्च तिलैः शृङ्गाटकैस्तथा ।

(१) सति कैश्चरैरपि इति अ. पुस्तके पाठः ।

केतुकैश्च तथा कन्दैः कर्कन्धुवदरैरपि ॥

पाळेवतैरानुकैश्चाप्यस्रोतैः पनंसैस्तथा ।

काकोल्या क्षीरकाकोल्या तथा पिण्डालकैः शुभैः ॥

कांजाभिश्च शणाभिश्च त्रपुसैर्वा तु चिर्भटैः ।

सर्षपाराजशाकाभ्यां बहिकुन्दै राजजम्बुभिः ॥

प्रियास्वामालकैर्मुख्यैः फल्गुभिश्च तिलम्बकैः ।

वेत्राङ्कुरैस्तालकन्दैः स्वकृकाक्षीरिकावचैः ॥

लोचैः समोचैर्लकुचैस्तथा वै बंजिपूरकैः ।

मुञ्जातकैः पद्मफलैर्भक्ष्यभोज्यैः मूसंस्कृतैः ॥

रागषाढवचोष्पैश्च(१) त्रिजातकसमान्वितैः ।

दत्तैस्तु मासं प्रीयन्ते श्राद्धेषु पितरो नृणाम् ॥ इति ।

विदारी कुष्णवर्णा भूकूष्माण्ड(२)फलम् । केतुकः कचू-
रारुयः शकः । कन्दः सूरणः । उर्वरुः स्वादुकर्कटी (३)चिर्भट-
स्तित्तकर्कटी । सर्षपेति दीर्घः छान्दसः । राजशाकं कुष्णसर्षपः ।
इन्दुदी तापसतरुः । प्रियालो राजादनम् । चक्रिका चिञ्जा । क्षी-
रिका फलाध्यक्षम् । त्रिजातकं लवङ्गैलागन्धपत्राणि ।

अन्यायोजार्जितैर्यैर्यत् श्राद्धं क्रियते नरैः ।

तृप्यन्ति तेन चाण्डाला इत्याह भगवान्निबुधुः ॥

यच्चोत्कोचादिना मासं पतिताद्यदुपार्जितम् ।

अन्त्यार्थकन्याशुल्कोत्थं द्रव्यं चात्र विगर्हितम् ।

पित्रर्यं मे प्रयच्छेतेत्युक्त्वा यथाप्युपार्जितम् ॥

वर्जनीयं सदा सद्भिस्तत्तद्वै श्राद्धकर्मणि ।

उत्कोचादिना स्तेयादिना । कन्याशुल्कं गोमिथुनादधिकम् ।

अथ जलानि । याज्ञवल्क्यः—

शुचि गोतृसिकुचायं प्रकृतिस्थं महीगतम् । इति (१।१९९)

(१) 'काडव' इति ख पुस्तके पाठः (२) कोडला इति क्यातः ।
(३) कांकडी इति क्यातः ।

अथ स्वर्ग्यजलानि । पारिजाते—

दुर्गन्धिः फेनिलं सारं पक्किलं पद्मलोदकम् ।

न लभेद्यत्र गौस्तृप्तिं नक्तं यच्चैव मुह्यते ॥

यच्च सर्वार्थमृत्सृष्टं यच्चाऽभोज्यं निपानजम् ।

तद्वर्ष्यं सलिलं तात सदैव श्राद्धिकर्मणि ॥ (१) इति ।

यच्च सर्वार्थमृत्सृष्टं सर्वप्राण्युपजीवनार्थं यत्कल्पितं कृपा-
दि तद्वर्ष्यम् । निपानं कूपसमीपे कृतपद्मादीनामुदकपानार्थं
जलाशयः ।

वृहस्पतिः—

त्यजेत्पर्युषितं पुष्पं त्यजेत्पर्युषितं जलम् ।

न त्यजेत्स्नान्दहीतोयं तुलसीपद्मविल्वजम् ॥

एवमुक्तप्रकारेण श्राद्धार्हद्रव्यैः पाकं कारयित्वा निमन्त्रित
ब्राह्मणाहानार्थं परिवारकान्श्रेण्यार्चनमाधनद्रव्याणि सञ्जीकुर्वात् ^{Stems} ^{ing} ^{to} ^{the} ^{line}

अत्र मार्कण्डेयः—

अह्नः षट्सु मुहूर्तेषु गतेषु प्रयतान् द्विजान् ।

प्रत्येकं प्रेषयेत्प्रेष्यान् प्रदायामलकोदकम् ॥

ब्राह्मणानां स्नानार्थं परिचारकानां हस्तेषु आमलककलकं (२)
प्रदाय ब्राह्मणेभ्यः प्रत्येकं दीयतामिति प्रेषयेत् । अत्राऽऽमलकप्र-
हणं तैलक्षुरकर्मोपदर्शनार्थम् ।

तथाच. देवलः—

ततो निवृत्ते मध्याह्ने लुप्तलोमनस्वान् द्विजान् ।

अभिगम्य यथामार्गं प्रयच्छेदन्तधावनम् ॥

तैलमभ्यञ्जनस्नानं स्नानीयञ्च पृथग्विधम् ।

पात्रैरौदुम्बरैर्दद्याद्द्वैश्वदेविकपूर्वकम् ॥

ततः स्नात्वा निवृत्तेभ्यः प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः ।

(१) अयं श्लोकः. का पुस्तके नास्ति ।

(२) "भाबला चूर्णम्" इत्यर्थः ।

पाद्यमाचमनीयं च सम्प्रयच्छेद्यथाक्रमम् ॥ इति ।
 तदुम्बरं ताम्रम् । आसादनीयान्युच्यते ग्रन्थान्तरे ।
 उपमूलसकृत्खनान्कुशांस्तत्रोपकल्पयेत् ।
 एवं तिला वृषी कांस्यमापः शुद्धैः समाहृताः ॥
 पार्णराजतताम्रार्णि पात्राणि स्युः शमी मधु ।
 पुष्पं धूपं सुगन्धादि क्षौममूत्रं च मेक्षणम् ॥
 वृषी निमन्त्रितब्राह्मणानामुपवेशनार्थान्यासनानि । 'ऋषी-
 णामासनं वृषी' इत्यमरः । वृषीतिपाठान्तरम् ।

Kuta अथ कुतपाः—

मध्याह्नः सद्गपात्रञ्च (?) तथा नेपालकम्बलः ।
 रौप्यं दर्भास्तिला गावो दौहित्रः कुतपाः स्मृताः ॥
 पापं कुत्सितमित्याहुस्तस्य सन्तापकारिणः ।
 अष्टावेते यतस्तस्मात्कुतपा इति विश्रुताः ॥

तत्र कुशोत्पादनक्रममाह काष्णार्जिनिः—

भुवन्तु शिथिलीकृत्य खनित्रेण विचक्षणः ।
 आदद्यात्पितृतीर्थेन पठनं हुं फद् सकृत् सकृत् ॥ इति ।

Kusa तस्य लक्षणमुक्तं हेमाद्रौ—

अप्रसृताः स्मृता दर्भाः प्रसृतास्तु कुशाः स्मृताः ।
 समूलाः कुतपा प्रोक्ताः छिन्नाग्रास्तृणसंहकाः ॥
 हरितां वै सपिञ्जलाः (२)पुष्टाः स्निग्धाः समाः शुभाः ।
 रत्निमात्रप्रमाणाः स्युः पितृतीर्थेन संस्कृताः ॥
 अंच्छिन्नाग्राः शशुष्काग्रा ह्रस्वाद्यैव प्रमाणतः ।
 कुतपा इति विज्ञेया तैस्तु आद्धं समापयेत् ॥
 उच्छिष्टं शिबनिर्मल्यं वान्तं च मृतकर्मणम् ।
 आद्धे सप्त पवित्राणि दौहित्रः कुतपास्तिकाः ॥

(१) "अद्गपात्रञ्चेति" ख पुस्तके पाठः ।

(२) 'पिसाग्राः' इति ग पुस्तके पाठः ।

श्राद्धे ब्रह्मर्ष्यपदार्थनिर्णयः ।

३५

दौहित्रपदं वृद्धशातातपेन व्याख्यातम्—

दुहित्वां स्वङ्गमृगस्य कञ्जाटे यत् प्रदृश्यते ।

तस्य शृङ्गस्य यस्यात्रं दौहित्रमिति कीर्तितम् ॥

स्पृश्यन्तुरे—

अमावास्यां गते सोमे यातु स्वादति गौस्तृणम् ।

तस्या गोर्घञ्जवेत्सौरं तद्दौहित्रमुदाहृतम् ॥

दौहित्रो दुहितुः पुत्रः सत्पनीत एव । उच्छिष्टं पयः । शिवानि-
मार्चयं गङ्गोदकम् । वमनं मधु । मृतकर्पटं तसरीतन्तुनिर्मितं वासः ।

वर्जनीयानाह सकृद्दे—

चित्तौदर्भाः पथिदर्भा ये दर्भा यङ्गभूमिषु ।

स्तरणासनपिण्डेषु षट् कुशान् परिवर्जयेत् ॥

ब्रह्मयज्ञे च ये दर्भा ये दर्भाः पितृतर्पणे ।

इता मूत्रपुरीषाभ्यां तेषां त्यागो विधीयते ॥

अमूला गर्भितादर्भा ये छिन्नाग्रा नखैस्तथा ।

कुत्सिताभ्रखदग्धांश्च कुशान् यत्नेन वर्जयेत् ॥

गर्भितो गर्भदल्युक्तः । कुशाभावे काशाः ।

कुशाऽभावे द्विजश्रेष्ठ काशैः कुर्वीत यन्नतः ॥

तर्पणादीनि कर्माणि काशाः कुशसमाः स्मृताः ।

श्राद्धेषु वैश्वदेवानि यानि कर्माणि कानिचित् ॥

यवैरेव विधीयन्तां तानि श्रोत्रियपुङ्गवैः ।

यवैरथा यवैर्दानं यवैरर्चा यवैर्हविः ॥

वैश्वदेवे तु यन्न स्यात् वृषिस्तत्र हि शाश्वती ।

तिळा विष्णोः समुद्भूतास्ततस्ते परमं हविः ॥

तिळैः श्राद्धाच्च ह्योमाच्च जगत्प्रीणाति भार्गव ।

अत्र मधुदानमावश्यकमुक्तं नागरखण्डे—

ओषधीनां हि सर्वास्तं परमो वै रसो मधुः ।

सर्वाङ्गानामप्यं सारो विशुतो मधुसंज्ञया ॥

९ भा० क०.

पश्चिमाचमनीयं च सम्प्रयच्छेद्यथाक्रमम् ॥ इति ।
 उदुम्बरं ताम्रम् । आसादनियान्युच्यते ग्रन्थान्तरे ।
 उपमूलसकृत्लूनान्कुशांस्तत्रोपकल्पयेत् ।
 एवं तिला वृषी कांस्यमापः शुद्धैः समाहृताः ॥
 पार्णराजतताम्राणि पात्राणि स्युः शमी मधु ।
 पुष्पं धूपं सुगन्धादि सौमसूत्रं च मेक्षणम् ॥
 वृषी निमन्त्रितब्राह्मणानामुपवेशनार्थान्यासनानि । 'ऋषी-
 णामासनं वृषी' इत्यमरः । वृषीतिपाठान्तरम् ।

अथ कुतपाः—

मध्याह्नः सङ्गपात्रञ्च (?) तथा नेपाळकम्बलः ।
 रौप्यं दर्भास्तिला गावो दौहित्रः कुतपाः स्मृताः ॥
 पापं कुत्सितमित्याहुस्तस्य सन्तापकारिणः ।
 अष्टावेते यतस्तस्मात्कुतपा इति विश्रुताः ॥
 तत्र कुशोत्पाटनक्रममाह काष्णार्जिनिः—
 भुवन्तु शिथिलीकृत्य स्वनित्रेण विचक्षणः ।
 आदद्यात्पितृतीर्थेन पठनं हुं फद् सकृत् सकृत् ॥ इति ।
 तस्य लक्षणमुक्तं हेमाद्रौ—
 अप्रसृताः स्मृता दर्भाः प्रसृतास्तु कुशाः स्मृताः ।
 समूहाः कुतपा प्रोक्ताः छिन्नाग्रास्तृणसंज्ञकाः ॥
 हरितां वै सपिञ्जलाः (२)पुष्टाः स्निग्धाः समाः शुभाः ।
 रत्निमात्रप्रमाणाः स्युः पितृतीर्थेन संस्कृताः ॥
 अंछिन्नाग्राः शशुष्काग्रा ह्रस्वाश्चैव प्रमाणतः ।
 कुतपा इति विज्ञेया तैस्तु श्राद्धं समापयेत् ॥
 अंछिष्टं शिवनिर्मास्यं वान्तं च सूतकर्पटम् ।
 श्राद्धे समं पवित्राणि दौहित्रः कुतपास्तिकाः ॥

(१) "सङ्गपात्रञ्चेति" अ पुस्तके पाठः ।

(२) 'पिसाग्राः' इति ग पुस्तके पाठः ।

श्राद्धे ऋज्यपदार्थनिर्णयः ।

६५

दौहित्रपदं वृद्धशातातपेन व्याख्यातम्—

दुहितं स्वङ्गमृगस्य ललाटे यत् महश्यते ।

तस्य शृङ्गस्य यत्पात्रं दौहित्रमिति कीर्तितम् ॥

स्मृत्यन्तरे—

अमावास्यां गते सोमे यातु खीदति गौस्तृणम् ।

तस्या गोर्यद्भवेत्क्षीरं तद्दौहित्रमुदाहृतम् ॥

दौहित्रो दुहितुः पुत्रः सत्पनीत एव । उच्छिष्टं पयः । शिवनि-
र्मास्यं गङ्गोदकम् । वमनं मधु । मृतकपर्पटं तसरीतन्तुनिर्मितं वासः ।

वर्जनीयानाह सङ्ग्रहे—

चितौदभाः पयिदर्भा ये दर्भा यङ्गभूमिषु ।

स्तरणासनपिण्डेषु षट् कुशान् परिवर्जयेत् ॥

ब्रह्मयज्ञे च ये दर्भा ये दर्भाः पितृतर्पणे ।

इता मूत्रपुरीषाभ्यां तेषां त्यागो विधीयते ॥

अमूला गर्भितादर्भा ये छिन्नाग्रा नखैस्तथा ।

कुत्सिताभ्रखदग्धांश्च कुशान् यत्रेन वर्जयेत् ॥

गर्भितो गर्भदलयुक्तः । कुशाभावे काशाः ।

कुशाऽभजे द्विजश्रेष्ठ काशैः कुर्वीत यत्रतः ॥

तर्पणादीनि कर्माणि काशाः कुशसमाः स्मृताः ।

श्राद्धेषु वैश्वदेवानि यानि कर्माणि कानिचित् ॥

यवैरेव विधीयन्तां तानि श्रोत्रियपुङ्गवैः ।

यवैरर्था यवैर्दानं यवैरर्चा यवैर्हविः ॥

वैश्वदेवे तु यत्र स्यात् तृप्तिस्तत्र हि शान्धती ।

तिळा विष्णोः समुद्भूतास्ततस्ते परमं हविः ॥

तिळैः श्राद्धाच्च ह्योमाच्च जगत्प्रीणाति भार्गव ।

अत्र मधुदानमावश्यकमुक्तं नागरखण्डे—

ओषधीनां हि सर्वास्तं परमो वै रसो मधुः ।

सर्वाङ्गानामप्यं सारो विश्रुतो मधुसंज्ञया ॥

९ भा० क०

मथ
to
Kali

देवानाञ्च पितृणाञ्च तदेतदतिवस्त्रमम् ।
 अतः श्राद्धस्य कर्तव्यं किञ्चिञ्च मधुना विना ॥
 मधुना रहिते श्राद्धे निराशाः पितरो गताः ।
 देवाश्च पितरश्चैव मधुना तर्पिता भुवम् ॥
 सुधारसेन तृप्यन्ति यावदाभूत्सम्प्लवम् ।
 कथञ्चिद्ग्रादि विप्रेभ्यो न दत्तं भोजने मधु ॥
 पिण्डास्तु नैव दातव्याः कदाचित् मधुना विना ।
 अपश्च सृजता पूर्वं मधुसृष्टं स्वयम्मुना ॥
 तेन तच्छस्यते श्राद्धे यदि न स्यात्समाहितैः ।
 ततोऽपि कीर्तनयिं स्यात्पितृणां तृप्तये तदा ॥
 अनेन मधुदानेन येन केनचित् द्रव्यादिना विकलं श्राद्धं स-
 फलम्भवतीत्युक्तम् ।

स्कन्दपुराणे तत्र ऋषिवाक्यम्—

स्वर्गमासेन मधुना कालशार्केन भूरिषाः ।
 विधिहीनं द्विजैर्हीनं तिलदर्भविवर्जितम् ॥
 स्वजातीयान् द्विजाभासान् भोज्याऽऽचारविवर्जितान् ।
 कृतं मया पुरा श्राद्धं श्रद्धाहीनमपि द्विजाः ॥
 श्राद्धस्य तादृशस्याऽपि फलमेतन्ममागतम् । इति ।

तदेतद्युगान्तरविषयम् । कलौ श्राद्धे मधुदानस्य निगमवाक्येन
निषिद्धत्वादिति । वाक्यं च दर्शितं प्राक् ।

अथ पादप्रक्षालनविधिः ।

तत्र श्रुत्यम्—

संमार्जितोपलिप्ते तु द्वारि कुर्वीत मण्डले ।

द्वारि द्वारसमीपे—

प्राङ्गणे मण्डलं कुर्याद्देवे पित्र्ये च कर्षणि ॥

नोत्तरे दक्षिणे वाऽपि पश्चिमे नृ गृहान्तरे ।

तत्प्रमाणमुक्तं सङ्ग्रहे—

प्रादेशमात्रं देवानां मण्डलं चतुरस्रकम् ।
 वितास्तिमात्रं पित्र्ये तु मण्डलं वर्तुलं भवेत् ॥
 यज्ञोपवीति देवार्थं पित्र्यर्थं वाऽपसव्यवत् ।
 अनन्तरं प्रकुर्वीत तयोर्मध्ये षडङ्गुलम् ॥ इति

स्मृत्यन्तरे तु—

गर्तः पञ्चाङ्गुलो विप्रे जानुमात्रां महीभुजिः ।
 प्रादेशमात्रो वैश्ये च साधिकः स तु शूद्रके ॥
 तिर्यगूर्ध्वप्रमाणेन खातव्यो दैवपित्र्ययोः ।
 चतुरस्रं वर्तुलञ्च कथितं गर्तलक्षणम् ॥
 पादप्रक्षालनं प्रोक्तमुपवेश्यासने द्विजान् ।
 तिष्ठतां क्षालनं कुर्यात् निराशाः पितरो गताः ॥

गौतमः—

तिष्ठन् प्रक्षालयेत्पादौ दैवे पित्र्ये च कर्मणि ।
 देवा इव्यं न गृह्णन्ति कव्यानि पितरस्तथा ॥

वसिष्ठः—

दिवा वा यदि वा रात्रौ नं कुर्यात् प्राङ्मुखः शुचिः ।
 प्रत्यङ्मुखस्तु कुर्वीत विप्रपादाऽभिषेचनम् ॥

स्मृत्यन्तरे—

आङ्गुलाके यदा पत्री वामे नीरं प्रदापयेत् ।
 आसुरं तद्भवेच्छ्राद्धं पितृणां नोपतिष्ठते ॥

तत्राऽऽचमनदिग्गनियम उच्यते सङ्ग्रहे—

मण्डलस्योत्तरे भागे विप्रस्याचमनक्रिया ।
 असृतं स पित्र्योयं रुधिरं दक्षिणे तथा ॥

अन्तप्रिक्षालने दोषमाह सङ्ग्रहकारः—

नान्तः प्रक्षालयेत्पादौ कर्ता पित्रादिकर्मसु ।
 भङ्गानाद्यंदि वा कुर्यात् पातयत्युभयङ्गुलम् ॥

अथाऽऽसनानि—

श्रीमं दुर्गलं नेपालमाविकं दारुजं तथा ।
 तार्णं पार्णं वृसीचैव विष्टरादि प्रविन्वसेत् ॥ इति
 क्षमी च काश्मिरी क्षालः कदम्बो वरणस्तथा ।
 पञ्चासनानि शस्तानि श्राद्धे देवार्चने तथा ॥
 अयःशङ्कुमयं पीठं प्रदेयं नोपवेशनम् ।

तथा पुलस्तपः—

श्रीपर्णी वरुणी क्षीरि जम्बुकाम्रकदम्बकम् ।
 सप्तमं बाकुलं पीठं पितृणां दत्तमक्षयम् ॥

पाळाशवटाश्वत्थोदुम्बरमधुकमृन्मयगोमयनैम्बलोहबद्धश्वा-
 सनानि वर्जयेत् ।

पाळाशवटवृक्षोत्थमश्वत्थं शाकवृक्षकम् ।
 मृत्तिकोदुम्बरं पीठं माधुकञ्च विवर्जयेत् ॥

वायुपुराणे—

श्लेष्मातको नक्तमालः कपित्थः शाल्मलिस्तथा ।
 निम्बो विनीतकश्चैव श्राद्धकर्मणि गर्हितम् ॥
 विरिषिल्वस्तथा कोष्ठं तिन्दुकाम्रातकौ तथा ।
 बकुलः कोविदारश्च एते श्राद्धेषु गर्हिताः ॥

अथाऽऽर्घ्यपात्राणि—

खदिरौदुम्बरावर्घ्यपात्राणि श्राद्धकर्मणि ।
 मण्डपमृन्मयानि स्युरपि पर्णपुटास्तथा ॥

ब्रह्माण्डपुराणे—

सौवर्णं राजतं ताम्रं मणिपात्रमयाऽपि वा ।
 स्वङ्गमम्भोजकांस्यं वा एकद्वयेष्वेवाऽपि वा ।
 चमसं पर्णकांस्यं वा मृन्मयं वा प्रकल्पयेत् ॥

अत्र बीजवापः—

सीत्वा पितृणां त्रीण्येव कुर्यात्पात्राणि वर्जयेत् ।

एकस्मिन् वा बहुषु वा ब्राह्मणेषु यथाविधि ॥
तीर्त्वा तिलानघ्योदके प्रक्षिप्येत्यर्थः ।

मनुरपि—

अन्नाभावे द्विजाऽभावे यद्येको ब्राह्मणो भवेत् ।
पात्राण्यासादयेत्रीणि न तु ब्राह्मणसंख्यया ॥
उद्देश्यस्य संख्यया पात्रासादनङ्कार्यम्, नतु ब्राह्मणसंख्यया ।

अथ गन्धस्वरूपम् ।

ब्रह्मपुराणे—

श्वेतचन्दनकर्पूरकुङ्कुमानि शुभानि च ।
विलेपनार्थं दद्यात्तुःप्रीतिदं पितृवल्लभम् ॥ इति

मार्कण्डेयपुराणे—

चन्दनागरुकर्पूरकुङ्कुमानि प्रदापयेत् ।
अश्वमेधमवाप्नोति पितृणामनुलेपनात् ॥

अथ वर्ज्यान्याह मरीचिः—

श्राद्धेषु विनियोक्तव्या न गन्धा देवदारुजाः ।
कल्कीभावं (१) समासाद्य न च पर्युषितं तथा ॥
नाऽतिगन्धश्च दातव्या भुक्तशेषावशेषिताः ।
पूतिकं मृगनाभिश्च रोचनं रक्तचन्दनम् ॥
कालीयं जोगकञ्जैव रुतुष्कं वाऽपि वर्जयेत् ॥

पूतिकं सुगन्धितृणविशेषः । मृगनाभिः कस्तूरी । रोचना
गोरोचना । रक्तचन्दनं प्रसिद्धम् । कालीयजोगकौ गन्धविशेषौ ।
रुतुष्कः सल्लकः । गन्धदाने विशेष उक्तो मदनपारिजाते व्यासेन-
सपवित्रकरो गन्धैर्गन्धद्वारति पूजयेत् ।
धूपश्च धूरसीत्युक्ता दीपाभ्यातिरिद्धश्च ते ॥

(१) "बहुद्रव्यमिश्रितम्" इत्यर्थः ।

अवित्रं

गन्धदानं पवित्रसहित एव कुर्यात् । विलेपने तु विशेषतः
दृढशातातपः—

पवित्रं तु करे कृत्वा यः समालम्बते द्विजान् ।
राक्षसानां भवेच्छ्राद्धं निराशाः पितरो गताः ॥

समालम्बनमनुलेपनम् ।

तथाच व्यासः—

करे पवित्रं कृत्वा तु गन्धं यस्तु विलिम्पति ।
पितृयज्ञस्य ताच्छिद्रं निराशाः पितरो गताः ॥

त्रोपनीति

यो यजमान इत्यर्थः ।

यज्ञोपवीतं विमाणां स्कन्धाभिवावतारयेत् ।
गन्धादिपूजासिद्ध्यर्थं दैवे पित्र्ये च कर्मणि ॥

शङ्खोऽपि—

उपवीतं कटौ कृत्वा कुर्याद्ग्रात्राऽनुलेपनम् ।
एकवासाश्च योऽश्रीयात् निराशाः पितरो गताः ॥

अथ पुष्पाण्युच्यन्ते ।

ब्रह्माण्डपुराणे—

शुक्लाः सुमनसः श्रेष्ठास्तथा पद्मोत्पलानि च ।
गन्धरूपोपपन्नानि यानि चान्यानि कृत्स्नशः ॥ इति ।

सुमनसः पुष्पाणि । सङ्ग्रहे—

Jubani

॥ तुलसी श्राद्धकाले तु दत्ता शिरसि धारिता ।
दाता भोक्ता पिता तस्य विष्णुलोके मर्हायते ॥

प्रयोगपरिजाते—

तुलसीगन्धामाघ्राय पितरस्तुष्टुमानसाः ।
प्रयान्ति गरुडाकटास्तत्पदं चक्रपाणिनः ॥

सायणीये—

तुलसीश्वेतपत्रं च शृङ्गराजं तथैव च ।
मकरं मरिचिकाञ्चैव पितृणां दत्तमङ्गयम् ॥

पार्कण्डेयः—

पितृपिण्डार्धेन श्राद्धे यैः कृतं तुलसीदलैः ।

प्रीणिताः पितरस्त्रेण यावन्नन्द्राऽर्कमेदिनी ॥

यत्तु कैश्विदस्याः श्राद्धे वर्जनीयत्वमुक्तं तत् स्मृतीतिहासपु-
राणेष्वष्टष्टत्रादमूलम् ।

श्राद्धे जात्यः प्रशस्ता स्युर्मल्लिका श्वेतयूथिका ।

तगरं मारुतं चैव पितृणां दत्तमक्षयम् ॥

ग्रन्थान्तरेजातीनिषेधस्तु रक्तजातीविषयः ।

चम्पकं शतपत्रं च भृङ्गराजं च बालका ।

तुलसी मालती पद्मं पितृणां तुष्टिकारकम् ॥

वज्र्यानि पारिजाते—

कदम्बं विल्वपत्रं च केतकी बकुलं तथा ।

बर्बरी कृष्णपुष्पाणि श्राद्धकाले न दापयेत् ॥

केतकीकरबीराणां बर्बरीविल्वपत्रयोः ।

जातेर्दर्शनमात्रेण निराशाः पितरो गताः ॥

शङ्खः—

उग्रगन्धीन्यगन्धीनि चैत्यवृक्षोद्भवानि च ।

पुष्पाणि वर्जनीयानि रक्तवर्णानि यानि च ॥

जपादिकुसुमं श्लिष्टी रूपिका सकुरण्टिका ।

पुष्पाणि वर्जनीयानि श्राद्धकर्माणि नित्यशः ॥

आदिशब्दाञ्जलजन्यतिरिक्तपुष्पाणि, युञ्जन्ते । रूपिकाऽर्कपु-
ष्पम् । पीतकुरण्टिका श्लिष्टीति । चैत्यवृक्षः इमंज्ञानवृक्षः । उग्र-

गन्धीनि केतकादीनि । अगन्धीनि द्रोणार्कधन्तूरादीनि । धूप-

स्वरूपं चन्द्रिकायाम्—

धूपो गुग्गुळजो यस्तु तथा चन्दनसारजः ।

असुरश्च सकर्पूरो रुक्णकत्वक् तथैव च ॥

रुष्कः सल्लकीवृक्षः ।

चन्दनागुरुणी चोभे तथा चोसरिपद्यम् ।
 रुष्कं गुग्गुलं चैव घृताक्तं युगपद्दहेत् ॥
 घृतं न केवलं दद्यात् दुष्टञ्च तृणगुग्गुलम् ।
 घृष्टं बदनराक्तं च आज्यं गुग्गुलघृषितम् ॥
 पतन्ति पितरस्तस्य लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ॥
 हस्तवाताहतं धूपं येऽपर्यन्ति द्विजोत्तमाः ।
 वृथा भवति तच्छ्राद्धं तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥
 वस्त्रवातोत्थितं धूपं हस्तवातोत्थितं तथा ।
 मुखेन धमितं दृष्ट्वा निराशाः पितरो गताः ॥

दीपस्वरूपमाह—

घृताद्वा तिलतैलाद्वा नान्यद्रव्यासु दीपकम् । इति ।

शंखः—

घृतेन दीपो दातव्यस्तथा वा औषधीरसैः ।
 बसामेदोऽन्नं दीपं प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥

अथाऽच्छादनं वायुपुराणे—

आच्छादनन्तु यो दद्याद्दहतं श्राद्धकर्मणि ।
 आयुः प्रकाममैश्वर्यं रूपं च लभते फलम् ॥
 कौशेयं क्षौमकार्पासं दुकूलमहतं तथा ।
 श्राद्धेऽप्यितानि यो दद्यात्कामानाम्प्रोति पुष्कलान् ॥

अदाने प्रत्युषायः ।

मातापित्रोः क्षयश्राद्धे न दद्याद् वाससी तु यः ।
 सप्तजन्मसु नमः स्यात् पितृवस्त्रापहारतः ॥

नमनः पिशाचः । अथ वज्र्यानि वस्त्राणि पारिजाते—

कौपीनं मलिनं रक्तं चित्रं स्रष्टं परांशुकम् ।
 काषायं कारुधीतं च पूर्वधीतमधीतकम् ॥
 धीमानेषं विधं वस्त्रं वर्जयेत् पितृकर्मणि ।

श्राद्धे यज्ञोपवीतदानानिरूपणम् ।

७३

पादुकोपानहौ छत्रं चित्ररक्ताम्बराणि च ।

रक्तपुष्पं च मार्जारं श्राद्धभूमौ विवर्जयेत् ॥

an hollow
shows to be
over the

अथ यज्ञोपवीतदानमादित्यपुराणे—

पितृन् सत्कृत्य वासोभिर्दद्याद् यज्ञोपवीतकम् ।

यज्ञोपवीतदानेन विना श्राद्धेऽन्तु निष्फलम् ॥

तस्माद्यज्ञोपवीतस्य दानमावश्यकं स्मृतम् ।

यज्ञोपवीतं दातव्यं वस्त्राऽभावेऽपि जानता ॥

पितृणां वस्त्रदानस्य फलं तेनाऽऽप्नुतेऽखिलम् ।

अथ भोजनपात्राणि—

भोजने हैमरूप्याणि दैवे पित्र्ये यथाक्रमम् ।

तेषामभावे त्रिष्णुः—“तैजसानि पात्राणि दद्यात्” इति । तै-

जसानि कांस्यताम्रादीनि । तेषामभावे स एव—

पल्लसेभ्यो विनष्टं न स्युः पर्णपात्राणि भोजने ।

पर्णपात्राणि पर्णनिर्मितानि ।

सौवर्णानीह पात्राणि मृन्मयानि नतु कचिद् ।

नायमान्यपि कुर्वीत पैत्तलानि न चैव हि ॥

न च सीसमयानीह शस्यन्ते (१) त्रपुजान्यपि ।

(१) 'त्रपु सीसकरङ्गयोः इति कोशः ।

बोपेदवस्तु स्मृतिसंग्रहमुदाजहार—

श्राद्धेपलाशपात्राणि मधूकोदुम्बराणि च ।

पारिकाकुटकपल्लक्षककचानि क्रमाज्जगुः ॥

कदलीचूतपनसजम्बुपुष्पागचम्पकाः ।

अलाभे मुख्य पात्राणां ग्राह्याः स्युः पितृकर्मणि ॥ इति ।

तत्र कदलीपुत्रं नैव ग्राह्यम् 'न जातिकुसुमानि' इति वचनमिति चन्द्रिकायाम् ।

असुराणां कुले जाता रम्भा पूर्वपरिग्रहे ।

तस्या दर्शनमात्रेण शिराशाः पितरो गताः ।

इति क्रतुवचनाच्छेति तत्रैव ।

१० भा० क०

हृद्धशातातपः—

पात्रे तु मृन्मये यस्तु श्राद्धे भोजयते पितॄन् ।
स याति नरकं घोरं भोक्ता च सपुरोहितः ॥

अथ परिवेशनविधिरभिधीयते ।

हस्तदत्तास्तु ये स्नेहाल्लवणव्यञ्जनादयः ।

दातारं नोपतिष्ठन्ति भोक्ता भुञ्जीत किंत्विषमम् H

विशेषि—

हस्तदत्तां च नाशनीयात् लवणव्यञ्जनादिकम् ।

अर्पकं तैलपक्कञ्च हस्तेनैव प्रदीयते ॥

न दद्यात्तप्तु हस्तेन प्रत्यक्षलवणं तथा ।

नचायसेन पात्रेण नचैवाऽश्रद्धया पुनः ॥

नाऽपवित्रेण हस्तेन हस्तेन नविनाऽसिना ।

नायसे नायसेनैव श्राद्धेषु परिवेषयेत् ॥

अपवित्रेण दुर्लपसंसर्गादिपृतेन । न विनासिना सुवर्णरजतकु-
शादिहीनहस्तेन । आयसेन दर्व्यादिना आयसे अयोमयपात्रे च ।
नैव परिवेषयोदिति ।

हृद्धशातातपवसिष्ठलघुहारीताः—

आयसेन तु पात्रेण यदन्नं सम्प्रदीयते ।

भोक्ता विष्ठासमं भुङ्क्ते दाता च नरकं व्रजेत् ॥

सङ्ग्रहे तु—

काष्ठनायसदर्व्याऽन्नं यदन्नं श्राद्धकर्मणि ।

हस्तेनाऽपिच यदन्नं तद्वै रक्षांसि भुञ्जते ॥

काष्ठदर्वाणिविधस्तु उदुम्बरपात्रव्यतिरिक्तविषयः । तस्य सा-
। नस्वेनोक्तत्वात् ।

तथा चाचार्यः—

उदुम्बरमयाः शस्ता दर्व्याद्याः श्राद्धकर्मणि ।

दर्व्यैव सर्वं दातव्यं न हस्ताद्यैस्तु किञ्चन ॥

दर्व्या देयं श्रितश्चाऽन्नं समस्तव्यञ्जनादिकम् ।

अपक्वं स्नेहपक्वञ्च न च दर्व्या कथञ्चन ॥

हस्तदेयानि दर्व्या च दर्व्या देयानि हस्ततः ।

एवं यो ब्राह्मणोऽश्नीयात् सोऽश्नीयान्मृत्ररेतसी ॥

अपेक्षितं द्विजो मोहाद् भुञ्जानो यो न याचते ।

अपेक्षितं न यो दद्यात्तावुभौ पितृघातकौ ॥

याचनं प्रतिषेधो ब्रा कर्तव्यं हस्तसंज्ञया ।

न बदेन्न च हुङ्कुर्यादत्तौ विरमेन्न च ॥

यावद्दूष्मा भवेदन्ने यावत्पात्रं न मुञ्चति ।

अश्नन्ति पितरस्तत्र यावन्नोक्ता हविर्गुणाः ॥

पिबतः पतितं तोयं यदा भोजनभाजने ।

अभोज्यं तद्भवेदन्नं भुक्त्वा चान्द्रायणश्चरेत् ॥

मण्डलद्रव्याण्युच्यन्ते ब्रह्मपुराणे—

मण्डलानि तु कार्याणि नीवारैश्चणकैः शुभैः ।

गौरमृत्तिकया वाष्पमणीतेनाऽथभस्मना ॥

मणीतेन मण्डलार्थं शुभवर्णतया निर्मितेन । मण्डलकरणस्या-

वश्यकत्वमुक्तं संज्ञे—

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च श्रीर्हुताशन एव च ।

मण्डलानुपजीवन्ति तस्मात्कुर्वीत मण्डलम् ॥

यातुधानाः पिशाचाश्च क्रूराश्चैव तु राक्षसाः ।

हरन्ति रसमन्नस्य मण्डलेन विवर्जितम् ॥

तत्प्रकारः संज्ञे—

नैऋतीं दिशमारभ्य नैऋत्यन्तं समापयेत् ।

तामेव दिशमारभ्य ईशान्यन्तं समापयेत् ॥

ईशान्तीं दिशमारभ्य नैऋत्यन्तं समापयेत् ।

तामेव दिशमारभ्य पैतृकस्य तदन्तिके ॥

अकृत्वा भस्ममर्यादां यः कुर्यात्पाणिशाधनम् ।

आसुरं तद्भवेच्छ्राद्धं पितॄणां नोपतिष्ठते ॥

अथाऽग्नौकरणम् । मार्कण्डेयः—

आहिताग्निस्तु जुहुयाद्दक्षिणाऽग्नौ समाहितः ।

अनाहिताग्निस्वौपसर्देः अग्न्यभावे द्विजेऽप्सु वा ॥

तथा श्राद्धचिन्तामणौ मत्स्यपुराणे—

अभावेषु च विप्रस्य पाणौ वाऽथ जलेऽपि वा ।

अज्ञाकर्णे स्वकर्णे वा गोष्ठे वाऽथ शिवान्तिके ॥

एते जलादिपक्षा दर्भबहुनिधानपक्षे यथा सम्भवं द्रष्टव्या
इति । अन्ये तु जल इति जलसमीपे श्राद्धकरणपक्षे,

विष्णुधर्मोचरे चाप्सु मार्कण्डेयेऽनलः स्मृतः ।

स यदाऽपां समीपे स्यात् श्राद्धे ज्ञेयो विधिस्त्वयम् ॥

इति कात्यायनस्मृतेरित्याहुः । कर्म्यादिषु चतुर्षु ब्राह्मण-
पाणावेव होमः ।

यदाह गृह्यकारः—

अन्वष्टव्यश्च पूर्वेषुर्मासिमास्यथ पर्वणम् ।

काम्यमभ्युदयेऽष्टम्यामेकोद्दिष्टमथाष्टमम् ॥

चतुर्ष्वर्षेषु सार्धानां बहौ होमो विधीयते ।

पित्र्यब्राह्मणहस्ते स्यादुत्तरेषु चतुर्ष्वपि ॥

पित्रिये यस्तु मूर्द्धन्यस्तस्य पाणावनमिकः ।

यमः—

अग्नौकरणशेषन्तु पित्र्ये तु प्रतिपादयेत् ।

प्रतिपाद्य पितृणान्तु दद्याद्द्वै वैश्वदेविकम् ॥

अग्नौकरणशेषश्च पिण्डार्थमवशेषयेत् ।

परिक्षिष्टे—

अग्नौकरणहोमश्च कर्तव्यमुपवीतिना ॥

पाक्युत्वेनैव देवेभ्यो जुहोतीति श्रुतिश्रुतेः ।

अपसव्येन वा कार्यो दक्षिणाभिमुखेन वा ॥

इति सव्याऽपसव्यविकल्पोऽग्निपाणिहोमभेदेन वा शाखाभेदेन वा ।

अन्नं पाणितले दत्तं पूर्वमशनन्त्यबुद्धयः ।

पितरस्तेनतृष्यन्ति शेषान्नं न कृमन्ति ते ॥

यच्च पाणितले दत्तं यच्चान्धैर्दुष्कालिपतम् ।

एकीभावेन भोक्तव्यं पृथक्भावो न विद्यते ॥

उदीच्याः प्राहुरत्रैत्रं न प्राशन्यात्करे द्रुतम् ।

निधाय तद्वधुतं पात्रे आचम्योपाविशेदिति ॥

पार्श्वालम्भनप्रकार उक्तश्चतुर्विंशतिमते—

उत्तानं दक्षिणं, सव्यं न्यञ्जं पात्राण्युपस्पृशेत् ।

स्वस्तिकेच पितॄन् देवान् धरत्वोर्ध्वं च दापयेत् ॥

अङ्गुष्ठनिवेशनविशेषः सायणीये—

परिवर्त्य नचाङ्गुष्ठं द्विजस्याश्रे निवेशयेत् ।

राक्षसं तद्भवेदेव पितॄणां नोपतिष्ठते ॥

अन्यच्च—

उत्तानेन तु हस्तेन द्विजाङ्गुष्ठनिवेशनम् ।

यः करोति द्विजो मोहात्तद्वै रक्षांसि भुञ्जते ॥

सम्बन्धनाम्नोत्राणि इदमन्नं ततः स्वधा ।

पितृक्रमात्प्रदीयन्ते स्वसत्तां विनिवर्त्तयेत् ॥

धर्मप्रदीपेऽपि—

ततोऽन्नं पितृदेवभ्यः सङ्कल्प्यञ्च यथाविधि ।

यहत्तं दास्यमानं च आत्सेर्न ममेति च ॥

एतच्च सङ्कल्पोदकदानं हस्ते न देयम् । तथाच धर्मप्रदीपे—

सिद्धाश्वस्य तु सङ्कल्पो भूमावेव प्रदीयते ।

हस्तेषु दीयमानं यत्पितॄणां नोपतिष्ठते ॥

भूमिर्जनित्री सर्वेषां भूतानाञ्च विशेषतः ।

तत्रोपतिष्ठतेऽन्नन्तु न च हस्ते कदाचन ॥

Pindas & flowers on the ground only

-hulane 7
amkulten

वैश्वदेवस्य वामेतु पितृपात्रस्य दक्षिणे ।

सङ्कल्पोदकदानं स्यान्नित्यश्राद्धे यथा हविः ॥

अकृतेसङ्कल्पेऽन्नं द्विजा न स्पृशेयुः, पात्रञ्च नोद्धरेयुः । तथा-

चाऽत्रिः—

असङ्कल्पितमन्नाद्यं पाणिभ्यां यदुपस्पृशेत् ।

अभोज्यं तद्भवेदन्नं पितृणां नोपतिष्ठते ॥

अकृते ह्यन्नसङ्कल्पे यः पात्रञ्चोद्धरेद् द्विजः ।

वृथा श्राद्धमवाप्नोति दाता च नरकं व्रजेत् ॥ इति ।

सङ्कल्पानन्तरमपीत्वाऽपोशानमन्नं न गृह्णीयात् । तथाच तत्रैव—

अन्नं दत्तं न गृह्णीयात् यावत्तोयं न सम्पिबेत् ।

अपीत्वा मर्दितं चाऽन्नं भुञ्जते किल रुक्षसाः ॥

तथा—

हस्तेनाऽन्नं न गृह्णीयाद्यावत्तोयं न सम्पिबेत् ।

अपीत्वा मर्दयेदन्नं निराशाः पितरो गताः ॥

घृतपात्रमासादने विशेषो ग्रन्थान्तरे—

ओदने परमार्थे च पात्रमासाद्य मूढधीः ।

घृतेन पूरयेत्पात्रं तद् घृतं रुधिरं भवेत् ॥

श्राद्धे नियुक्तान् भोक्तॄन् हविर्गुणान्नं पृच्छेदित्याह शङ्खः—

श्राद्धे नियुक्तान् भुञ्जानान् पृच्छेत्पुत्रादिषु ।

उच्छिष्टाः पितरो यान्ति पृच्छतो नाऽत्र संशयः ॥

अपोशाने विशेष उक्तः स्मृतिसारसमुच्चये—

अपोशानं वामभागे सुरापानसमं भवेत् ।

दक्षिणभागे तु यः कुर्यात् सोमपानसमं भवेत् ॥

अपोशानं करे कृत्वा कृत्वा तु पतितोदकम् ।

पूरयन्तु पुनः कृत्वा सुरापानसमं भवेत् ॥ इति ।

नित्या भोजनाश्रितानियमाः पर्युक्षणादयः प्राणाहृत्यन्ता

भोक्तृणामपि सन्तीति गम्यते ।

nit as k
pant y
si ka
food

कस्यचिद्भोजननियमस्याऽनुष्ठाने दोषमाह--

भरद्वाजः—

पितृणांमैत्रमादाय बालिं यस्तु प्रयच्छति ।

स्वाधेन ब्राह्मणस्वेन हस्तेन स्तेयकृद्भवेत् ॥ इति

पितृणामित्यत्र पितृशब्दो देवानामपि प्रदर्शनाऽर्थः तुर्यन्याय-
त्वात् । अत एव सामान्येनोक्तमत्रिणा—

दत्ते बाध्ययवाऽदत्ते भूमौ यो निर्वपेद्बलिम् ।

तदन्नं निष्फलं याति निराशैः पितृभिर्गर्तैः ॥

तत्र ब्राह्मणानां भोजनकाले अन्योऽन्यस्पर्शने कर्तव्यमाह--

शङ्खः—

श्राद्धपक्वौ तु भुञ्जानो ब्राह्मणो ब्राह्मणं स्पृशेत् ।

तदन्नमत्यजं भुक्त्वा गायत्र्यष्टशतं जपेत् ॥ इति ।

अन्योऽच्छिष्टस्पर्शने कर्तव्यमाह स एव—

उच्छिष्टलेपसंस्पर्शो प्रज्ञात्याऽन्येन वारिणा ।

भोजनान्ते नरः स्नात्वा गायत्र्यां त्रिशतञ्जपेत् ॥

भोजनकाले भोजनपात्राणामन्नन्योन्यस्पर्शं कर्तव्यमाह व्यासः—

उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पर्शस्पृष्टपात्रं विहित्य च ।

सर्वाङ्गं पूर्ववत्स्निग्धत्वा भोजयेत्तु द्विजोत्तमम् ॥ इति ।

अन्योऽपि विशेषो भरद्वाजेनोक्तः—

श्वचाण्डालादिभिर्दृष्टः श्राद्धे भुञ्जन् द्विजोत्तमः ।

तदन्नमत्यजं भुक्त्वा स्नात्वा देवीसहस्रकम् ॥

जपेदिति शेषः । भोजनकाले गुदस्त्रावे विशेषः पारिजाते—

भुञ्जानेषु तु विपेषु प्रमादात्स्रवते गुदम् ।

पादकृच्छ्रं ततः कृत्वाऽन्यं विप्रं नियोजयेत् ॥

श्राद्धोषधे—

हुंकारेणाऽपि यो ब्रूयात् हस्ताद्वाऽपि गुणान् वदेत् ।

भूतलास्वाद्धरेत्पात्रं भुञ्जेद् हस्तेन चाऽपि तत् ॥

Guest.
5 times
on anor.

प्रौढपादो बहिःकच्छो बहिर्जानुकरोऽथवा ।
 अङ्गुष्ठेन विनाऽऽनाति मुखशब्देन वा पुनः ॥
 पीताऽवशिष्टं तोयादि पुनरुद्धृत्य वा पिबेत् ।
 स्वादिताऽर्धे पुनः स्वादेदूपान्मोदकानि वा ॥
 मुखेन वा धमेदग्निं निष्ठीवेद्भोजनेऽपि वा ।
 इत्थमन्नं द्विजः श्राद्धे भुक्त्वा गच्छत्यधोगतिम् ॥
 न स्पृशेद्दामहस्तेन भुञ्जानोऽन्नं कदाचन ।
 न पदा न शिरो वास्ति न पदा भाजनं स्पृशेत् ॥
 नाक्षपानादिकं श्राद्धेष्वारयेन्मुखतः क्वचित् ।
 अनिष्टत्वात् बहुत्वाद्वा न वदेद्दस्तसंज्ञया ॥

अत्र वमनात् श्राद्धविघ्ने निर्णयउक्तो ऋग्विधाने—

इन्द्राय सामसूक्तेन श्राद्धविघ्नो यदा भवेत् ।

अग्न्यादिभिर्भोजनेन श्राद्धं संपूर्णमेव हि ॥ इति ।

अत्राऽग्निशब्देन विधिवल्लौकिकाऽग्निप्रतिष्ठापनम् । आदि
 शब्देन अन्वाधानाद्याख्यभागान्तं स्याल्लीपाकतन्त्रं पितृनामगोत्र-
 पूर्वकान्यर्चनासत्पागहोमादयो गृह्यन्ते । भोजनशब्देन श्राद्धस्य
 पुनःकरणम् । एवमग्न्यादिभिर्भोजनेनेति विधानद्वयमुक्तम् । तत्र
 भोजनानन्तरे श्राद्धे प्रधानभूतपिण्डदाने कृते पश्चाद्गमनादिविघ्न-
 प्राप्ता होम एव कार्यः । पिण्डदानात्प्राग्विघ्नप्राप्तौ तद्दिने उपवासं
 कृत्वा परेऽहनि श्राद्धं कर्तव्यमित्यर्थः । उभयत्र सूक्तजपश्चाऽनु-
 वर्तते । पृथक् निमित्तत्वादर्शनात् । तत्र प्रथमे पक्षे स्मृतिसङ्घ-
 हकारः—(१)

प्राधान्यं पिण्डदानस्य भोजनस्य तदङ्गत्वात् ।

(१) धर्मप्रदीपे तु विशेषोक्तः ।

यजुषां पिण्डदानं स्वात् बह्वृचां द्विजत्वंभम् ।

श्राद्धशब्दामिवेषं स्यादुभयं सामवोधनाम् ॥

अतो मुक्तिक्रियाहीनौ श्राद्धावृत्तिं न मन्यते ॥ इति ।

अत्र "श्राद्धावृत्तिं न मन्यते" इत्यनेन होमविधिः सूचितः ।

तथाचोक्तं तत्रैव—

श्राद्धपक्षौ तु मुञ्जानो ब्राह्मणो वमेते यदि ।

लौकिकाग्निं प्रतिष्ठाप्य अर्चयेत्तु हुताशनम् ॥

मुञ्जान इति भुक्तवानित्यर्थः । इतरथा भोजनमध्ये पिण्डदानाभावात् ।

अन्यच्च—

एक एव यदा विप्रो भोजने छर्दितो यदि ।

तदैवाग्निं समाधाय होमं कुर्याद्यथाविधि ॥

एकः पितृस्थानोपवेशितः । तथाचोत्तरत्रवक्ष्यमाणत्वात् ।

प्राणादिपञ्चभिर्मन्त्रैर्यावद्वृत्ताग्निं शसंख्यया ।

होमशेषं समाप्याऽथ श्राद्धशेषं समापयेत् ॥ इति ।

अत्र च शब्देन(१) स्थालीपाकविधिर्दर्शितः । अथ द्वितीयपक्षमधिकृत्योक्तम्

ऋग्विधाने—

भोजनोपक्रमत्पूर्वं प्रक्रमात्परतो यदि ।

श्राद्धविघ्ने पुनः कार्यं, जपहोमौ न तृप्तिदौ ॥ इति ।

सङ्ग्रहेऽपि—

अकृते पिण्डदाने तु मुञ्जानो ब्राह्मणो वमेत् ।

पुनःपाकं तु कर्तव्यं पिण्डदानं यथाविधि ॥

अत्र पुनःपाकविधानेन श्राद्धस्य पुनरावृत्तिर्विधीयते ।

तथाचोक्तं तत्रैव—

अकृते पिण्डदाने तु विता यदि वमेत्तदा ।

पुनः पाकं प्रकृवीत श्राद्धकुर्याद्यथाविधि ॥

(१) होमशेषशब्देनेत्यर्थः ।

अन्यसु—

पित्रर्यानां त्रयाणां हि पिता च वमते यदि ।

तद्दिने चोपवासश्च पुनः श्राद्धं परेऽहनि ॥ इति ।

अन्यथ—

वमने वा विरेके वा तद्दिनं परिवर्जयेत् ।

सङ्कल्पश्राद्धेऽपि पुनःकरणमुच्यते—

मुक्तिक्रियायाः प्राधान्यं श्राद्धे सङ्कल्पसंज्ञके ।

तत्रैव पितृविभाणां तूपघाते पुनः क्रिया ॥ इति ।

एतद्वचनजातेन श्राद्धविघ्ने परेऽहनि अघ्नैव पुनः
श्राद्धकरणमुक्तम् । तदेतत्सांवत्सरिकमातिमासिकविषयम् । अ-
मावास्यादिश्राद्धकालेषु पित्रर्थब्राह्मणेषु येनकेनचिद्विघ्नसम्भवे
तदैवाऽऽमश्राद्धं कार्यम् ।

तथा मरीचिः—

श्राद्धविघ्ने द्विजातीनामामश्राद्धं प्रकीर्तितम् ।

अमावास्यादिनियतं माससंवत्सराहते ॥ इति ।

अनेन मासिकं चाब्धिकं श्राद्धमावश्यकं पक्षाग्नेन कार्यमिति
वचोभङ्ग्योक्तमिति मन्तव्यम् । इति श्राद्धविघ्ने निर्णयः ।

अथ प्रसङ्गात्सूतकादिना श्राद्धविघ्ने निर्णयः ।

तदाह विष्णुः—

व्रतयज्ञविवाहेषु श्राद्धे होमेऽर्चने जपे ।

भारब्धे सूतकं न स्यादभारब्धे तु सूतकम् ॥ इति ।

सूतकमिति सूतकस्याप्युपलक्षणम् । व्रतादिविषये भारम्भवि-
शेषश्च तेनैवोक्तः ।

भारम्भो वरणं यज्ञे सङ्कल्पो व्रतसप्रयोः ।

नान्दीमुखं विवाहादौ श्राद्धे पाकपरिक्रिया ॥ इति ।

यज्ञे वरणमिति । वृतानामृत्विजां यजमानस्य च तस्मिन्

कर्माणि नाशौचम् इति । एवं श्राद्धादिष्वपि दातृभोक्तृर्वेदि-
तस्यम् ।

निमन्त्रितेषु विषेषु प्रारब्धे श्राद्धकर्माणि ।

निमन्त्रणाद्धि विप्रस्य स्वाध्यायविरतस्य च ॥

देहे पितृषु तिष्ठत्सु नाऽऽशौचं विद्यते क्वचित् ।

अपि दातृग्रहीत्रोश्च सूतके मृतके तथा ॥

अविज्ञाते न दोषःस्याच्छ्राद्धादिषु कदाचन ।

विज्ञाते भोक्तुरेव स्यात् प्रायश्चित्तादिकं क्रमात् ॥

भोजनाद्धे तु सम्भुक्ते विप्रैर्दातुर्विपद्यते ।

यदा कश्चित्तदोच्छिष्टशेषं त्यक्त्वा समाहिताः ॥

आचम्य परकीयेन जलेन शुचयो द्विजाः । इति ।

अन्तरा मृतसूतके निर्णय उच्यते । तत्रैवं—

विवाहयज्ञयोर्मध्ये सूतके सति चाऽन्तरा ।

शेषमन्नं परैर्देयं दातृन् भोक्तृंश्च न स्पृशेत् ॥

अत्र निमन्त्रितेषु विषेषु प्रारब्धे श्राद्धकर्माणि इति द्वितीयोप-
न्यासात्प्राक् यदा निमन्त्रणं तदा निमन्त्रणप्रभृति आकर्मसमा-
प्तेराशौचाभावात्तदाहि पाकोपक्रमस्यैव प्रथमावयवभूतत्वेन श्राद्धा-
रम्भशब्दवाच्यत्वम् । भोजनाद्धे तु सम्भुक्ते यदि दातुः कश्चिद्विपद्यत
इत्येतस्य तत्कालमृतस्य दातृसपिण्डनिबन्धनाशौचविषयत्वं वा निम-
न्त्रितेषु विषेष्वित्यादिना पूर्वोक्तेन सह विरोधपरिहारो विधेयः ।
'शेषमन्नं परैर्देयम्' इत्येतत्तु भोक्तृगृह्यतिरिक्तजन्ममरणविषयम् ।
'दातृन् भोक्तृंश्च न स्पृशेत्' इत्यत्र 'दोषः' इतिशेषः ।
आहकृतुः—पूर्वसङ्कल्पितद्रव्यं द्वीयमानं न दुष्यति ।

उक्तमिहाशौचदूषितेधिकारिणि मुख्यकालमतिक्रम्याऽशौच-
निवृत्तौ श्राद्धकर्तव्यम् इति । इत्याशौचादिष्विधेर्निर्णयः ।

अथ विकिरदानविधिः ।

तत्र वृद्धयाज्ञवल्क्यः—

विकिरं भुवि दातव्यमुच्छिष्टेषुः षडङ्गुलम् ।

अन्यथा—

उच्छिष्टस्योत्तरे भागे पिण्डन्दद्यात् षडङ्गुलम् ॥ इति ।

अथोच्छिष्टप्रातिपत्तिः श्राद्धकाशिकायाम्—

यजमानस्य दासादीनुद्दिश्य द्विजसत्तम ।

तस्मादर्क्षत्यजेद् भूमौ वामभागेषु पैतृके ॥

त्रिंशद् भृत्यसहस्राणां विमोच्छिष्टं पुनःक्रिया ।

विमः कदम्बकं कृत्वा वामभागे तु निक्षिपेत् ॥

अथ पात्रचालनम् । तत्र नारायणः—

अचालयित्वा तत्पात्रं स्वस्ति कुर्वन्ति ये द्विजाः ।

निराशाः पितरस्तेषां शप्त्वा यान्ति यथाऽऽगतम् ॥

बृहस्पतिः—

भोजनेषु च तिष्ठन्तु स्वस्ति कुर्वन्ति ये द्विजाः ।

तदन्नमसुरैर्भुक्तं निराशैः पितृभिर्गतम् ॥

तस्मात्स्वस्तिवाचनात्पाक् पिण्डदानानन्तरं पात्रचालनमव-
श्यकार्यमित्यभिप्रायः । पात्रचालने कर्तृविशेष उक्तो जातुकर्ष्येन-
पात्राणि चालयेच्छ्राद्धे स्वयं शिष्योऽथवा सुतः ।

* न स्त्रीभिर्न च बालेन नासजासा कथञ्चन ॥

अथ पिण्डदानम् । तत्र याज्ञवल्क्यः—

सर्वमन्नमुपादाय सतिलं दक्षिणामुखः ।

उच्छिष्टसभिषौ पिण्डान्दद्याद्द्वै पितृयज्ञवत् ॥ (१।२४२)

भाषाश्च पिण्डे निषिद्धीः । तथाच स्मृतिसङ्ग्रहे—

भाषाः श्राद्धेषु वै ग्राह्या वर्जयित्वाऽग्निपिण्डयोः ।

ब्राह्मणेषु यथा मयं तथा गृध्राऽग्निपिण्डयोः ॥

भाषाः सर्वत्र वै देयाः पिण्डाग्नौ च विवर्जयेत् । इति ।

तथा--

तिल्लाऽऽज्यमधुदध्यादि पिण्डद्रव्येषु योजयेत् ।

पिण्डाऽऽष्टाङ्गता ग्रन्थान्तरे उक्ता--

तिलमन्नञ्च पानीयं धूपं दीपं पयस्तथा ।

मधु सर्पिः खण्डयुक्तं पिण्डमष्टाङ्गमुच्यते ॥

पिण्डदेशः स्मृतिसारमुधानिधौ--

अरत्निमात्रमुत्सृज्य पिण्डांस्तत्र प्रपातयेत् ।

यत्रोपस्पृशतांवाऽपि प्राप्नुवन्ति न चिद्भवः ॥

अत्रिस्तु--

पितृणामासनस्थानादग्रतस्त्रिष्वरत्निषु ।

उच्छिष्टसन्निधानं न्तन्नोच्छिष्टासनसन्निधौ ॥

इत्याह । अनयोर्यथावकाशं विकल्पः । इदञ्च पिण्डदानं पितृयज्ञ-
कल्पातिदेशाच्चरुश्रपणसंज्ञावे अग्नौकरणशिष्टचरुशेषेण सह सर्वमन्न
मुपादाय सन्निधौ कुर्यात् १ तदभावे ब्राह्मणार्थं सार्ववर्णिकमन्नमादाय
तिलमिश्रदक्षिणाभिमुख उच्छिष्टसन्निधौ पिण्डपितृयज्ञकल्पेन कुर्या-
दिति मिताक्षरादिस्वरसः ।

अथ पिण्डप्रमाणम् । सङ्ग्रहे--

एकोद्दिष्टे सपिण्डे च कपित्थन्तु विधीयते ।

नारिकेलप्रमाणन्तु प्रत्यब्दे मासिके तथा ॥

तीर्थे दर्शे च सम्प्राप्ते कुक्कुटाऽण्डप्रमाणतः ।

महालये गयाश्राद्धे कुर्यादामलकोपमम् ॥

अत्र विशेषमाह सङ्ग्रहकारः--

महालये गयाश्राद्धे प्रेतश्राद्धे दशाहिके ।

पिण्डश्राद्धप्रयोगः स्यादन्नमन्यत्र कीर्तयेत् ॥ इति ।

पिण्डोपहतौ निर्णय उक्तेऽग्निना--

मार्जारमूषकस्पर्शे पिण्डे च द्विदलीकृते ।

पुनः पिण्डः प्रदातव्यस्तेन पाकेन तत्क्षणात् ॥

स्मृतिदर्पणे बौधायनोऽपि—

श्वचाण्डालादिभिः स्पृष्टः पिण्डो यद्युपहन्यते ।

प्राजापत्यं चरित्वाऽथ पुनः पिण्डं समाचरेत् ॥

तथा श्राद्धचिन्तामणौ पारस्करः—

शूकरशृगालाद्यैर्ग्रामकुक्कुटकैरपि ।

चाण्डालकरमैः पिण्डसंस्पर्शो तु प्रमादतः ॥

कृच्छ्रग्रयं चरेत्पिण्डमिति व्यासोऽब्रवीन्मुनिः ।

कृच्छ्रग्रयं कृत्वा पिण्डश्चरेदिति “काकाक्षिन्यायेन” सम्बन्धा-
चरेदितिपदादवगम्यते । अनयोश्च शक्ताऽशुक्तविषयत्वेन व्य-
वस्थेत्येके । अन्येतु नवश्राद्धप्रकरणपाठात्तद्विषयतामाहुः । तस्तु-
तस्तु प्रकरणापेक्षया वाक्यस्य बलवत्त्वात्सर्वविषयतेति ।

अथ पिण्डप्रतिपत्तिः ।

तत्र याज्ञवल्क्यः—

पिण्डास्तु गोऽजविप्रेभ्यो दद्यादग््नौ जलेऽपि वा ।

प्रसिपेत्सस्तु विप्रेषु द्विजोच्छिष्टं न मार्जयेत् ॥ (१।२५७)

अथ काम्यपिण्डप्रतिपत्तिः । ब्रह्माण्डपुराणे श्राद्धकल्पे

द्वादशोऽध्याये—

पिण्डमग््नौ सदा दद्यान्नोगार्थी प्रथमं नरः ।

दद्यात्प्रजार्थी यश्चैव मध्यमं मन्त्रपूर्वकम् ॥

उत्तमं मानमन्विच्छन् गोषु नित्यं प्रयच्छति ।

आप्लाञ्चैव यदा कीर्तिमप्नु नित्यं प्रवेशयेत् ॥

मार्थयन्दीर्घमायुश्च वायसभ्यः प्रयच्छति ।

प्रथमेतत्समृद्धिष्टं पिण्डनिर्वपणे फलम् ॥ इति ।

अथ पिण्डदाननि विच्छकालाः । तत्र पुलस्त्यः—

अयनद्वितये श्राद्धं विषुवद्वितये तथा ।

संक्रान्तिषु च कर्तव्यं पिण्डनिर्वपणादवे ॥

श्राद्धे पिण्डदाननिषिद्धकालनिरूपणम् । ८७

एकादश्यां त्रयोदश्यां मघाकृत्तिकयोरपि ।
पिण्डदानं न कर्तव्यं पुत्रांश्च श्रियमिच्छता ॥

स्मृतिरन्नावल्याम्—

पुत्रे जाते व्यतीपाते ग्रहणे चन्द्रमूर्ययोः ।
श्राद्धकुर्यात्प्रयत्नेन पिण्डनिर्वपणादृते ॥ इति ।

महाभारते—

संक्रान्ताबुपवासेन पारणेन च भारत ।
मघायां पिण्डदानेन ज्येष्ठः पुत्रो विनश्यति ॥ इति ।
विवाहप्रतर्षांशेषु वर्षमर्द्धं तदर्द्धकम् ।
पिण्डदानं मृदा स्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥

स्मृतिरन्नावल्यां कात्यायनः—

वृद्धावनन्तरं चैषां यावन्मासः समाप्यते ।
तावत्पिण्डं न दद्यात्तु न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥

बौधायनोऽपि—

संस्कारेषु तथाऽन्येषु मासं मासाद्धमेव वा ॥ इति ।
संस्कारेषु तथाऽन्येषु पुंसवनादिषु । स्मृतिसङ्ग्रहेऽपि—
विवाहोपनयादूर्द्धं वर्षं वर्षार्द्धमेव वा ।
न कुर्यात्पिण्डनिर्वापं न दद्यात्करकाणि च ॥

अस्याऽपवादो दिवोदासीयेबृहस्पतिनोक्तः—

तीर्थे संवत्सरे प्रेते पितृयागे महालये ।
पिण्डदानं प्रकुर्वीत युगादिभरणीमघे ॥
महालये गयाश्राद्धे मातापित्रोः क्षयेऽहनि ।
यस्य कस्याऽपि मर्त्यस्य सपिण्डीकरणे तथा ॥
कृतोद्वाहोऽपि कुर्वीतु पिण्डनिर्वपणं सदा ॥ इति ।

विशेषः सङ्ग्रहे—

मातापितृणामब्दे तु विवाहादिषु सर्वदा ।

तिलैः सपिण्डा दातव्याः शून्ये (१) श्राद्धे विवर्जयेत् ॥ इति ।

निवाहादिषु जातेष्वित्यर्थः । तेन योऽयं पिण्डदाननिषेधः सः
अन्नमयपिण्डविषयः, सङ्गहे तिलैः पिण्डदानस्य विहितत्वात् ।
तथा अन्यत्राऽपि—

भानौ भौमे त्रयोदश्यां नन्दाभृगुमघासु च ।

पिण्डदानं मृदा स्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥

काष्णाग्निनिः—

ऋते नैमित्तिकं काम्यं श्राद्धं यस्तु मघोद्दुनि ।

मदधात् उयेष्टपुत्रस्य नाशः स्यात् तस्य निश्चितम् ॥

नैमित्तिकं ऋते नैमित्तिकं विना काम्यश्राद्धदाने महान्दीषः ।
तथा—

मघा युगादौ भरण्यां श्राद्धकुर्यात्प्रयत्नतः ।

पिण्डदानं न कुर्वीत यदीच्छेज्जित्ततः सुतान् ॥

रामकौतुके—

नन्दाऽश्वकामरव्यारभृग्वग्निपितृकालभे ।

गजे वैधृतिपाते च पिण्डास्त्याज्याः सुतेऽभुभिः ॥

नन्दाः प्रतिपञ्चष्टयेकादश्याः । अश्वः सप्तमी । कामरवयोदशी ।
रव्यारौ सूर्याङ्गारकौ । भृगुः युक्रवासरः । अग्निपितृकालभानि
कृत्तिकामघाभरण्यः । गजवैधृतिपाताः प्रसिद्धाः । अत्राऽयमा-
श्वयः—नन्दायुतादिमन्वादिमघाभरणीसक्रान्तिनिमित्तः क्रिय-
माणेषु काम्यश्राद्धेष्वयं पिण्डदाननिषेधः, न तु निमित्तान्तर-
प्राप्तेषु नित्येषु च निषेधः । तेन भरणीमघायुगाद्यादिभिरप्युपल-
सितायां नन्दायाश्च तिथावपरपक्षे सपिण्डकश्राद्धकर्तुः पुत्रवतो-
प्यधिकारः ।

तथाचोक्तमग्निना—

महाकाले क्षवाहे च दर्शे पुत्रस्य जन्मनि ।

(१) 'तिलैः पिण्डाः प्रदातव्याः अन्य' इति न पुस्तके पाठः ।

श्राद्धे पिण्डदाननिषिद्धकालनिरूपणम् । ८९

तीर्थेऽपि निर्वपेत् पिण्डान् रविवारादिकेष्वपि ॥

तिथिवारप्रयुक्तोऽयं दोषो यः समुदाहृतः ।

स श्राद्धं तस्मिन्निषेधे स्यान्नाऽन्यश्राद्धे कदाचन ॥

सङ्ग्रहे—अमावास्यां क्षयाहे च प्रेतपक्षे तथैव च ।

श्राद्धं सपिण्डकं कुर्यात् तिथिवारं न शोधयेत् ॥

निर्णयदीपिकायाम्—

तीर्थे संवत्सरे प्रेते पितृपक्षे शशिक्षये ।

पिण्डदानं प्रकुर्वीत युगादौ भरणीमध्ये ॥

पितृपक्षो महालयः । युगादिः त्रयोदशी ।

तथा—दर्शश्राद्धे गयाश्राद्धे श्राद्धे चाऽपरपाक्षिके ।

पिण्डदानं प्रकुर्वीत भरण्यां नैव दुष्यति ॥ इति ।

अपरपक्षे प्रतिपदादिदर्शान्तं कृतसङ्कल्पस्य सपिण्डकश्राद्धदाने
कुत्राऽपि न निषेध इत्युक्तम्—

आश्विनस्याऽभिते पक्षे श्राद्धं कुर्याद्दिने दिने ।

नैव नन्दादि वर्ष्यं स्यात् नैव वर्ष्या चतुर्दशी ॥

दशम्यादिपक्षेषु तु चतुर्दशी वर्जनीया ।

तदाह मनुः—

• कृष्णपक्षे दशम्यादौ वर्जयित्वा चतुर्दशीम् ।

श्राद्धे प्रशस्तास्तिययो यथैता न तथेतराः ॥ (३।२७३)

अत्राऽऽदिशब्देन पञ्चम्युपक्रमोऽष्टम्युपक्रमश्च गृह्यते । एवं

• प्रतिपत्प्रभृतिष्वेकां वर्जयित्वा चतुर्दशीम् । •

इति याज्ञवल्क्यवचनं पञ्चम्यादिपक्षेष्ववतिष्ठते ।

इति पिण्डदाननिषिद्धकालनिर्णयः ।

इति श्री महाराजाऽधिराजसहगिलान्वयैकभूषण-

परमानन्दीदिष्ट 'वर्माधिकारि' रामपण्डितात्मज

पण्डित विनायककृताभ्यां श्राद्धकल्पलतायां

श्राद्धीयपदाथैतिकर्तव्यतानिरूपणस्त-

• बकस्तृतीयः ॥ ३ ॥

१९.भा० ४०

अथ परिभाषा उच्यते । पारिजाते—

इष्टिश्राद्धे क्रतुर्दक्षः सङ्कीर्णो वैश्वदेविकौ ।
 नान्दीमुखे सत्यवसू काम्ये च धूरिळोचनौ ॥
 पूरुषाद्रवौ चेति पार्षणे समुदाहृतौ ।
 मैमिषिके कालकामावेवं सर्वत्र कीर्तयेत् ॥
 वसुरुद्रस्तथाऽदित्यः पित्रादिश्रितये क्रमात् ।
 मातामहादि-मात्रादि-श्रितये स्मृतिमर्हति ॥
 पिण्डदाने तु वरुणः प्राजापत्यप्रयस्तथा ।

स्मृत्यन्तरे तु—

सूक्तस्तोत्रजपौ त्यक्त्वा पिण्डाऽऽघ्राणं प्रदक्षिणम्
 आच्छानास्स्वागतान्तश्च विना च परिवेषणम् ॥
 विसर्जनं सौमनस्यमाक्षिषां प्रार्थनं तथा ।
 विप्राणां दक्षिणाञ्चैव स्वस्तिवाचनकं विना ॥
 पित्र्यमन्यप्रकर्तव्यं प्रार्थनावीतिना सदा ।
द्वे द्वे पवित्रे ऋजुनी देवे कर्मणि योजयेत् ॥
विभज्य द्विशुणीकृत्य त्रीणि त्रीणि तु पैतृके ।
 हस्तोच्छिष्टाऽपनयनमावाहनविसर्जने ॥
 दक्षिणां सौमनस्यश्च विनाऽन्यद्देवपूर्वकम् ।
 अन्वाक्य दक्षिणं जानुं प्राग्बोद्ध्वाऽप्रदक्षिणम् ॥
 यज्ञोपवीती स्वाहेति देवे कुर्याद्यवैस्तथा ।
प्रार्थनावीतिना पित्र्यं सव्यजानुनिपातिना ॥
 दक्षिणास्येन कर्तव्यमप्रदक्षिणतस्तैः ।
 दैव्यर्चा दक्षिणादिःस्यात्पादजान्बंसमूर्द्धसु ॥
 शिरोसजानुपादेषु वामाङ्गादिषु पैतृके ।
 पितृभ्यो निखिलं दद्यात्स्वधाकारेण सर्वदा ॥
 अन्नव्यमासनञ्चैव वर्जयित्वाऽर्च्यमेव च । इति ।

नाऽप्रोक्षितं स्पृशेत्किञ्चिन्न वदेन्मानुषीं गिरम् ।
 नचोद्गीक्षेत भुञ्जानं नचैवाऽश्रूणि पातयेत् ॥
 त्यजेत् क्रोधं प्रमादश्च न श्राद्धे त्वरितो भवेत् ।
 यदि वाग्यमल्लोपः स्याज्जपहोमाऽर्चनादिषु ॥
 व्याहरेद्वैष्णवं मन्त्रं स्मरेद्वा विष्णुमव्ययम् ।
 स्वागते स्वस्तिवचने गोत्राशौःषु प्रदक्षिणे ॥
 अर्घ्ये च दक्षिणादाने सव्यं षट्सु विधीयते ।
 अक्षय्यासनयोः षष्ठी द्वितीयाऽवाहने तथा ॥
 अन्नदाने चतुर्थी स्यात् शेषाः सम्बुद्धयः स्मृताः ।
 आसनाऽऽवाहने पद्ये अन्नदाने तथैव च ॥
 अक्षये पिण्डदाने च षट्सु नामानि कीर्तयेत्(१) ।

पृथ्वीचन्द्रोदये शङ्खः—

आवाहनार्घ्यसङ्कल्पे पिण्डदानान्नदानयोः ।
 पिण्डाभ्यञ्जनकाले तु तथैवाञ्जनकर्मणि ॥
 अक्षय्यासनयोः पाद्ये गोत्रं नाम प्रकाशयेत् ।

तत्रैव परिशिष्टे—

क्षणे च पिण्डदाने च गन्धे धूपाक्षये तथा ।
 सङ्कल्पे चांसने दीपे अञ्जनाभ्यञ्जने तथा ॥
 अन्नाहर्षदानाद्यन्तेषु गोत्रं नाम च कीर्तयेत् ।

काङ्ठिकायां सङ्ग्रहे मत्स्यः—

सम्बन्धं प्रथमं श्रूयाद्गोत्रं नाम तथैव च ।
 पश्चाद्भूपं विजानीयात् क्रम एष सनातनः ॥

तत्रैव—

सकारेण तु वक्तव्यं गोत्रं सर्वत्र धीमता ।
 सकारः कुतपो श्रेयस्तस्माद्यत्नेन तं वदेत् ॥

यथा काश्यपसगोत्रेति,

पराश्वरसगोत्रस्य वृद्धस्य तु महात्मनः ।

भिक्षोः पञ्चशिखस्याहं शिष्यः परमधार्मिकः ॥

इति मोक्षधर्मप्रयोगाच्च । तेन गोत्रसगोत्रयोः पर्यायत्वा-
ज्जालाभेदाद्यवस्थेतिशुद्धपाणिः ।

गोत्रस्य स्वपरिज्ञाने काश्यपं गोत्रमुच्यते ।

यस्मादाह श्रुतिः सर्वाः प्रजाः काश्यपसम्भवाः ॥

पृथिवीसत्पिता वाक्यस्तत्पिता चान्तरिक्षसत् ।

अभिधानाऽपरिज्ञाने दिविषत्प्रपितामहः ॥

श्राद्धारम्भेऽवसाने च पादशौचे तथाऽर्चने ।

विकिरे पिण्डदाने च षट्सु चाऽऽचमनं स्मृतम् ॥

श्राद्धारम्भे न्व ये दर्भाः पादशौचे विसर्जयेत् ।

अर्चनादौ तु ये दर्भा पिण्डोत्थाने विसर्जयेत् ॥

उत्थानान्ते तु ये दर्भा दक्षिणान्ते विसर्जयेत् ।

पार्थनादौ तु ये दर्भा नमस्कारे विसर्जयेत् ॥

स्थितिरन्नावल्यामपि—

विकिरे पिण्डदाने च तर्पणे स्नानकर्षाणि ।

आचान्तश्च प्रकुर्वीत दर्भसन्त्यजनं बुधः ॥ इति ।

सङ्घरेऽपि—

न स्मरेद् ऋषिदैवञ्च श्राद्धे वैतानिके मत्से ।

ब्रह्मयज्ञे च वै तद्गत् तथोङ्कारश्च नोचरेत् ॥

वृद्धवसिष्ठोऽपि—

सर्वत्रोङ्कारमुच्चार्य श्राद्धमन्त्रेषु नोचरेत् ।

आर्षञ्जम्बांसि वै तद्गत् यज्ञतर्पणकर्मणि ॥

इति श्राद्धपरिभाषा ।

श्राद्धे नियन्ताऽनियतनिमित्तश्राद्धनिर्णयः । ९६

अथ नियन्ताऽनियतनिमित्तश्राद्धनिर्णयः ।

तत्र नियन्ताऽनियतनिमित्तयोः श्राद्धयोः सन्निपातेऽनियत-
निमित्तस्याऽनुष्ठानादेव नियतनिमित्तमपि सिध्वतीत्यनियतनिमि-
त्तमेव कुर्यात् ।

तदुक्तं कालादर्शे—

नित्यदाशिकयोः सोदकुम्भमासिकयोरपि ।

दाशिकस्य युगादेश्च दाशिकालभ्ययोगयोः ॥

दाशिकस्य च मन्वादेः सम्पाते श्राद्धकर्मणः ।

प्रसङ्गादितरस्याऽपि सिद्धेरुत्तरमाचरेत् ॥

कुर्याद्द्वारहः श्राद्धमन्वाद्येनोदकेन वा । इत्यादि ।

नित्यम् अमावास्याश्राद्धं दाशिकम्, तयोः सन्निपाते एकदिने
प्रसक्तौ उत्तरमाचरेत् । नरणदिनादारभ्य संवत्सरपूर्तिपर्यन्तं प्रति-
मासं सृताहे विहितं मासिकम् । संवत्सरादर्वाक् सपिण्डीकरणे
संवत्सरपूर्तिपर्यन्तं प्रतिदिवसं विहितं सोदकुम्भश्राद्धं कुर्यात् ।
माघामावास्या युगादिः । अतः सन्निपातः । अलभ्ययोगशब्देन
चन्द्रक्षेत्रग्रहणसंक्रान्त्यर्द्धोदयादीनामुपसङ्ग्रहः । अलभ्ययोगनिमित्ताऽ-
मावास्याश्राद्धसम्पाते अलभ्ययोगनिमित्तं श्राद्धं कुर्यात् । ग्रहणा-
र्द्धोदययोरेमावास्याकालीनत्वात्सम्पातः । दाशिकस्य मन्वादेश्च म-
न्वाते मन्वादिश्राद्धं कुर्यात् । फाल्गुनामावास्या मन्वादिः । अतः
सन्निपातः । ननुत्तरशास्त्रार्थानुष्ठाने पूर्वशास्त्रस्य बाध इत्यत्राह-
प्रसङ्गादिति । उत्तरशास्त्रार्थभूतश्राद्धाऽनुष्ठानेन पूर्वशास्त्रार्थभूत-
श्राद्धस्याऽपि सिद्धिर्भवति । यथा काम्यशास्त्रार्थाऽनुष्ठाने नित्य-
शास्त्रार्थानुष्ठानसिद्धिरिति न बाधः । अत्र पूर्वं निषतनिमित्तम्
उत्तरमनियतनिमित्तम् । अतः उत्तरमेवाऽनुष्ठेयम् । तस्याऽप-
वादमाह—

नित्यस्य चोदकुम्भस्य नित्यमासिकयोरपि ।
 दर्शस्य चोदकुम्भस्य दर्शमासिकयोरपि ॥
 नित्यस्य चाब्दिकस्याऽपि दार्शमासिकयोरपि ।
 युगाद्याब्दिकयोश्चाऽपि मन्वाद्याब्दिकयोरपि ॥
 प्रत्याब्दिकस्य चाऽर्कभ्ययोगेषु विहितस्य च ।
 सम्पाते देवताभेदात् श्राद्धयुग्मं समाचरेत् ॥

अत्र नियतनिमित्ताऽनियतनिमित्तश्राद्धसम्पाते देवताभेदात्-
 पसङ्ग इति श्राद्धयुग्ममनुष्ठेयमेव । ननु जीवन्नार्यस्य दार्शमासिकस-
 म्पाते सपत्नीकत्वाभावेन देवताभेदाभावान्मासिकमेवाऽनुष्ठेयम् ।
 उत्तरं, मासिकस्यैकोद्दिष्टत्वे भवत्वेवम् । पार्वणत्वे तु पितृपितृमाह-
 योरन्यतरस्य च मृतभार्यत्वेन सपत्नीकत्वाद्देवताभेदोऽस्त्येवेति मा-
 सिकं दार्शिकञ्चानुष्ठेयम् । एवं दार्शिकोदकुम्भसंपाते दार्शिका-
 ब्दिकसम्पातेऽपि विज्ञेयम् । ननु द्वन्द्वाभापनुष्ठेयत्वे किम्पूर्वमनुष्ठेय-
 मित्यत्राह—

निमित्तानियतिश्चाऽत्र पूर्वाऽनुष्ठानकारणम् ।

एषु द्वन्द्वेषु यस्य श्राद्धस्य निमित्तमनियतं तच्छ्राद्धं पूर्वमनु-
 स्ठेयम् । अनियतनिमित्तस्य बलवत्त्वात् । तेन मासिकोदकुम्भादि-
 पूर्वं कृत्वा पश्चात्श्राद्धादि कुर्यात् । अत्रैव विशेषमाह—

पित्रोस्तु पितृपूर्वत्वं सर्वत्र श्राद्धकर्मणि ।

नित्योदकुम्भादिसर्वश्राद्धकर्मणि मातापितृसम्बन्धिनि युगप-
 दुपस्थितौपितुः पूर्वं कृत्वा पश्चान्मातुः कुर्यात् । सर्वत्र दाहादौ
 सपिण्डीकरणान्ते सर्वत्रैतदुत्तरकालमाविनि प्रत्याब्दिकादौ श्रा-
 द्धकर्मणि ।

तदाह कार्णाभिनिः—

पित्रोः श्राद्धे समम्पाते नवे पर्युषितेऽपि वा ।

पितृपूर्वं मृतः कुर्याद्व्यजासन्नियोगतः ॥ इति ।

श्राद्धे नियन्ताऽनियतनिमित्तश्राद्धनिर्णयः । ९६

पर्युषिते चिरन्तने । अन्यत्र पातृपितृव्यतिरिक्तश्राद्धे । ननु
नैकः श्राद्धद्वयं कुर्यात्समानेऽहनि कुप्रवित् ॥

इति प्रचेतसा एकस्यैकस्मिन्दिने श्राद्धद्वयकरणं निषिद्धम् ,
तत्कथमुच्यते सम्बन्धक्रमेणैको बहूनि शुद्धानि कुर्यादिति ? सत्यं
देवताभेदे निमित्तभेदे चैकस्याऽनेकश्राद्धविधानात् ।

तदुक्तं जावालिना—

श्राद्धं कृत्वा तु तस्यैव पुनः श्राद्धञ्च तद्धिने ।

नैमित्तिकन्तु कर्तव्यं निमित्ताऽनुक्रमोदयम् ॥ इति ।

तथा—

श्राद्धं कृत्वा पुनः श्राद्धं न कुर्यादेकवास्तरे ।

यादि नैमित्तिकं न स्यादेकोद्देशं भवेद्यदि ॥ इति ।

कात्यायनोऽपि—

द्वे बहूनि निमित्तानि जायेरश्वेकवास्तरे ।

नैमित्तिकानि कार्याणि निमित्तोत्पश्यनुक्रमात् ॥

अत्रैव विशेषमाह—

पार्वणैकोद्दिष्टयोश्च पार्वणं पूर्वमाचरेत् ।

पितृभ्रात्रोरन्येषां वा मध्ये द्वयसम्बन्धिनोः पार्वणैकोद्दिष्टयोः
पार्वणं पूर्वमाचरेत् ।

तदाह जावालिः—

यद्येकत्र भवेताञ्छेदेकोद्दिष्टश्च पार्वणम् ।

पार्वणं त्वभिनिर्वर्ष्य एकोद्दिष्टं समाचरेत् ॥

अत्रैव विशेषमाह—

दैवतैक्ये तु काम्याऽनुष्ठाने नित्यञ्च सिध्यति ।

यत्र दैवतैक्यं तत्र काम्यानुष्ठानान्धित्यञ्च श्राद्धं प्रसङ्गात्
सिध्यति ।

तदुक्तं स्पृतिसङ्घे—

काम्यानुष्ठानेन नित्यस्य तन्नं श्राद्धस्य सिध्यति ।

स्यादेकत्वञ्च देशादेर्देवतैक्यं भवेद्यदि ॥ इति ।

द्विवह्नि श्राद्धानि कुतपाद्युक्तकाले पृथग्भिधातुम् शक्यम्
सति तन्त्रेण कुर्यात् । तन्त्रविशेष उक्तो गरुडपुराणे—

एकेनैव तु पाकेन श्राद्धानि कुरुते बहु ।

विकिरन्त्वेकतः कुर्यात्पिण्डान् दद्यात्पृथक् पृथक् ॥

एतदेकपाकविधानं समानधर्मश्राद्धविषयम् । मासिक्रमत्या-
म्बिकादिभिन्नधर्मेषु पृथगिति ।

अथ महालयविधिरभिधीयते—अग्निपुराणे व्रतपरिभा-
षाऽध्याये—

आषाढीमर्षिं कृत्वा यः स्यात्पक्षस्तु पञ्चमः ।

कुर्याच्छ्राद्धं तत्र रविः कन्यां गच्छतु वा नवा ॥ इति ।

अन्यत्राऽपि—

नभस्यस्याऽपरः पक्षः शुक्लप्रतिपदा सह ।

महालय इति प्रोक्तो गजच्छायाह्वयस्तथा ॥

नभस्याऽपरः भाद्रपदस्याऽपरः । पक्षः कृष्णपक्षः । शुक्ल-
प्रतिपदा- आश्वयुजशुक्लप्रतिपदा सह महालयः इति प्रोक्तः । तथा
गजच्छायाह्वयः प्रोक्तः ।

तदाह बृहन्मतुः—

नभस्यस्याऽपरः पक्षो यत्र कन्यां व्रजेद्विः ।

स महालयसंज्ञः स्यात् गजच्छायाह्वयस्तथा ॥ इति ।

तथाच श्लोकगौतमः—

कन्यागते सवितरि यान्यहानि तु षोडश ।

ऋतुभिस्तानि तुल्यानि सम्पूर्णवरदक्षिणैः ॥ इति ।

देवलक्ष्य—

अहः षोडशकं यत्तु शुक्लप्रतिपदा सह ।

चन्द्रक्षयाविशेषेण साऽपि दशस्त्रिंशत्कं स्यात् ॥ इति ।

अत्र षोडशपदं त्रिधा व्याख्यातम्—आद्यां पूर्णमासीमादाया-
थवा तिथिदृश्यभिप्रायेण, शुक्लकृतिपदभिप्रायं वा ।

अत्र कर्तव्यमाह स एव—

वर्गद्वयं समुद्दिश्य श्राद्धमाद्यं सदैवकम् ।

कुर्यात्पार्वणमार्गेण नोचेदोषो महान् भवेत् ॥

तत्रं वर्गद्वयं पितृवर्गं मातामहवर्गश्च समुद्दिश्य श्राद्धं कुर्यात् ।
नत्वेकमेव पितृवर्गम् । पितृपितामहप्रपितामहाः पितृवर्गः, मातामह-
मातुःपितामहमातुःप्रपितामहा मातामहवर्गः ।

तदाह गौतमः—

पितरो यत्र पूज्यन्ते तत्र मातामहा अपि ।

अविशेषेण कर्तव्यं विशेषाभरकं व्रजेत् ॥ इति ।

जाबालिः—

पुत्रानायुस्तथाऽऽरोग्यमैश्वर्यमतुलं तथा ।

माप्नोति पञ्चमे पक्षे(१) श्राद्धकामस्तथा परान् ॥ इति ।

नोचेत् श्राद्धाकरणे महान् दोषो भवेत् ।

तदाह गार्ग्यः—

सूर्ये कर्त्यागते श्राद्धं यो न कुर्याद्दृष्ट्वाश्रमी ।

धनं पुत्राः कुतस्तस्य पितृनिःश्वासपीडया ॥ इति ।

काष्णाजिनिरपि —

द्विश्विके समतिक्रान्ते पितरो दैवतैः सह ।

निःश्वस्य प्रतिगच्छन्ति शापं दत्त्वा सुदारुणम् ॥ इति ।

यदाह काष्णाजिनिः—

हस्तर्क्षस्थे दिनकरे प्रेतराजाऽनुशासनात् ।

तावत्प्रेतपुरी शून्या यावद् द्विश्विकददर्शनम् ॥ इति

दिनकरस्य हस्तर्क्षस्थता चोत्तरफाल्गुनीद्वितीयपादे कन्या-
गतस्यैव भवतीति न स्वार्थपरमित्पर्यः ।

(१) 'दत्त्वा' इत्यपि पाठः ।

अत्रैव विशेषमाह—

पक्षाद्यादि च दर्शान्तं पञ्चम्यादि दिगादि वा ।

अष्टम्यादि यथाशक्ति कुर्यादापरपक्षिकम् ॥

पक्षादिः प्रतिपत् तदादि दर्शान्तम् अमावास्यापर्यन्तम्
आपरपक्षिकं श्राद्धं कुर्यात्, पञ्चम्यादिदर्शपर्यन्तम्, दिग्दर्शमी
तदादि दर्शपर्यन्तम्, अष्टम्यादि दर्शपर्यन्तमिति चत्वारः पक्षाः ।
यथाशक्तीत्यनेन शक्या व्यवस्था-प्रथमपक्षाशक्तौ द्वितीय
पक्षः, तदशक्तावष्टम्यादिपक्षः, तदशक्तौ दशम्यादिपक्ष इति
व्यवस्था ।

तदाह गौतमः—“अथाऽपरपक्षे श्राद्धं पितृभ्यो दद्यात्, पञ्च-
म्यादि दर्शान्तम् अष्टम्यादि, दशम्यादि सर्वस्मिन्वा” इति ।

यथा ब्रह्माण्डपुराणे—

नभस्यकृष्णपक्षे तु श्राद्धं कुर्याद्दिने दिने ।

त्रिभागहीनं पक्षं वा त्रिभागं त्वर्द्धमेव वा ॥ इति ।

त्रिभागहीनपक्षे पञ्चम्यादि, त्रिभागपक्षे दशम्यादि, अर्द्धपक्षे
अष्टम्यादि । यस्तु-महालयनिमित्तकमेव श्राद्धं करोति, स पितृ-
मृताह एकं कुर्यात्(१) ।

तदुक्तं निर्णयदीपिकायां नागरखण्डे—

आपाठ्याः पञ्चमे पक्षे कन्यासंस्थे दिवाकरे ।

मृताऽहनि पितुर्यो वै श्राद्धं दास्यति मानवः ॥

तस्य संवत्सरं यावत्तृप्ताः स्युः पितरो ध्रुवम् ।

तस्मात्तत्र प्रकर्तव्यं श्राद्धं श्राद्धं परैर्नरैः ॥ इति ।

अत्र मृताहनीतिविशेषोपादानात्तत्र नन्दाभृगुवाङ्मादिबचनान्त-
रोक्तनिषेधानवकाशः ।

कात्यायनः—

अशक्तः पक्षमध्ये तु करोत्येकदिने यदि ।

निषिद्धेऽपि दिने कुर्वात् पिण्डदानं यथाविधि ॥

या तिथिर्यस्य मासस्य मृताहे सम्भवति ।

सा तिथिः पितृपक्षे तु पूजनीया भयव्रतः ॥

पूर्वादाहृतनिषेधवचनानां तन्निमित्तश्राद्धविषयत्वमिति पूर्वमु-
क्तमेव । एतदापरपक्षिकं प्रथमसंवत्सरे न कार्यम् ।

तदुक्तम्--

दर्शश्राद्धं गयाश्राद्धं श्राद्धश्चापरपक्षिकम् !

प्रथमेऽब्दे न कुर्वीत कृतेऽपि तु सपिण्डने ॥

nor krm
300
misty
do

अस्याऽपवादः--

अस्थिक्षेपं गयाश्राद्धं श्राद्धश्चापरपक्षिकम् ।

प्रथमेऽब्देऽपि कुर्वीत यदि स्यात् भक्तिमान् सुतः ॥ इति ।

अस्मिन् महाकाल्ये या भरणी सा महाभरण्युच्यते ।

तदुक्तं मात्स्ये--

भरणी पितृपक्षे तु महती परिकीर्तिता ।

अस्यां श्राद्धं कृतं येन स गयाश्राद्धकृद्भवेत् ॥

महाकाल्ये गयाश्राद्धे वृद्धौ चाऽन्वष्टकामु च ।

नवदैवत्यमत्र स्यादन्यत् षट्पुरुषं विदुः ॥

तथा--

देवतानवकं वृद्धौ तथैवाऽन्वष्टकामु च ।

त्रेयं द्वादशदैवत्यं तीर्थे प्रोष्ठे गयासु च(१) ॥

स्मृतिदर्पणे गालवः--

अनेका मातरो यस्य श्राद्धे चाऽपरपक्षिके ।

अर्घ्यदानं पृथक् कुर्यात्पिण्डमेकन्तु निर्वपेत् ॥

महाकाल्ये मध्याऽष्टम्यां श्राद्धं गयाश्राद्धतल्यम् ।

आषाढ्याः पञ्चमे.पक्षे. गया मध्याष्टमी स्मृता ।

(१) "प्रोष्ठे महाकाल्ये" इति पुस्तकपाठः ।

त्रयोदशी गजच्छाया गयातुल्या तु पैतृके ॥

अत्र च नवम्यामन्वष्टक्यं श्राद्धं नवदैवतं स्यात् । पृथक्कुर्वादि-
त्युक्तेर्मातुरप्यत्र पृथक् श्राद्धदानम् ।

तदुक्तम्—

अन्वष्टकामु नवभिः पिण्डैः श्राद्धमुदाहृतम् ।

पित्रादि मातृमध्यश्च ततो मातामहान्तकम् ॥

तथा—

वृद्धौ तु मातृपूर्वन्तु श्राद्धं कुर्वीत बुद्धिमान् ।

अन्वष्टकामु सर्वासु पितृपूर्वं समाचरेत् ॥

अन्यच्च—

केवलास्तु क्षये कार्या वृद्धावादीं प्रकीर्तिताः ।

अन्वष्टकामु मध्यस्था नान्त्याः कार्यास्तु मातरः ॥ इति ।

पितृपूर्वमन्वष्टकाश्राद्धं न मातृपूर्वम् ।

सर्वासामेव मातृणां श्राद्धं कन्यागते रवौ ।

नवम्यां हि प्रदातव्यं ब्रह्मलब्धवरा यतः ॥

इति सूतवाक्यात् । पितृव्यपत्नी आतृजाया स्वभागिनी पितृ-
व्यैश्चमातृष्वस्रादीनामपुत्राणां नवदैवोत्तरकाले कार्यम् ।

तमिस्रपक्षे नवमी पुण्या भाद्रपदे हि धा ।

चतस्रः पार्वणाः कार्याः पितृपक्षे मनीषिभिः ॥

इति निगदितं मातामहीश्राद्धं देशकुलधर्मवशेन ज्ञेयम् ।

तथा—

येनैव च पिता यातो येन यातः पितामहः ।

तमेव मार्गं यायाच्च नान्यं यायात्कदाचन ॥

इति न्यायासिद्धं कार्यम् । जीवन्मातृकेन तु सांपत्नमातृगुरु-
त्वभाषिकृत्य मातृपार्वणं न कार्यम् । मुख्यत्वं हि जनन्या एव ।

तेनैव पुत्रिणीत्येऽपि पितरि जीवति पितृव्यस्येव तस्यां न मुख्यत्वम् ।

सयाहैकोदिष्टन्तु कार्यमेव । सकुन्महालयपक्षे तिथ्यादिविशेष उच्यते—

काळविधाने—

कन्या कुम्भगते सहस्रक्रियेण तामिस्रपक्षे षुगो-
वारांशोदयमङ्गनातनययोर्जन्मत्रयं चात्मनः ।
हितवानन्दकरीं चतुर्दशतिथिं श्राद्धं विदध्याद्भृ-
त्वाष्ट्राकार्काशिवसमारमन्त्रियमभे मित्रेन्दुविष्वम्बुषु ॥ इति ।
अस्याऽर्थः—अत्र भृगुग्रहणमुपलक्षणम् । तेन श्राद्धकर्मणि
शुभानां वारवर्गोदयाः प्रतिषिद्धाः ।

अत्रोद्देश्या उच्यन्ते—

ताताम्बाश्रितयं सपत्नजननी मातामहादित्रयं
सस्त्री स्त्रीतनयादि*तातजननीस्वभ्रातरस्तस्त्रियः ।
ताताम्बाऽऽत्मभगिन्यपत्यधवयुक् जायापिता सद्गुरुः
शिष्याप्ताः पितरो महालयविधौ तीर्थे तथा तर्पणे ॥
अस्याऽर्थः—श्रितयंशब्दस्य ताताम्बाभ्यां प्रत्येकं सम्बन्धः ।
सस्त्रीति मातामहादित्रयस्य विशेषणम् । अन्ये तु मातामहादीनां
वृथक् तर्पणमिच्छन्ति श्राद्धवत् । स्त्रीतनयादीति तर्पयित्रपेक्षया । ता-
तजननीस्वभ्रातर इति । तातभ्रातरः पितृव्याः । मातृभ्रातरो मातु-
लाः । स्वभ्रातरः तर्पणकर्तृभ्रातरः । तस्त्रियः पितृव्यमातुलस्व-
भ्रातृस्त्रियः । तातेति—पितृष्वसृमातृष्वसृस्वसारोऽपत्यभर्तृयुक्ताः ।
ततश्च 'पितृष्वस्रे यथायोग्यं सभर्तृकायै सापत्ययै' इत्येवंप्रका-
शकं प्रयोगवाक्यमनुसन्धेयम् । जायापिता श्वशुरः । अन्यत् सर्व-
स्पष्टम् । अत्र केषां केनविधिना कर्तव्यमित्यपेक्षायौ तन्निर्णय
उच्यते हेमाद्रौ—

तत्र पुराणवचनम्—

उपाध्यायगुरुस्वसृपितृव्याचार्यमातुलाः ।
श्वशुरंभ्रातृत्पुत्रपुत्रस्त्रिंशुश्रित्यपोषकाः ॥
भगिनी स्वपितृदुहिता जामातृभगिनीसुताः ॥

पितरौ पितृपत्नीनां पितुर्मातुश्च या स्वसा ॥

सखिद्रव्यदक्षिण्याद्यास्तीर्थे चैव महालये ।

एकोद्दिष्टविधानेन पूजनीयाः प्रयत्नतः ॥ इति ।

अत्र पितराविति पितृसमावित्यर्थः, साक्षात्पितृमातृमाताम-
हानां त्रिपुरुषोद्देशेन कर्तव्यत्वात् ।

तथा ब्रह्माण्डपुराणे—

कन्यागते सवितरि दिनानि दशपञ्च च ।

पार्ष्णेनेह विधिना श्राद्धं तत्र विधीयते ॥ इति ।

अनेन वचनेन दर्शवत्सपत्नीकपितृमातामहवर्गद्वयस्य कर्तव्यत्वं
प्रतिपादितम्, तथापि मातृश्राद्धं पृथक्कुर्यादिति स्मर्यते—

अन्वष्टकासु वृद्धौ च प्रतिसंवत्सरं तथा ।

महालये गयायाश्च सपिण्डीकरणपुरा ॥

मातृश्राद्धं पृथक्कुर्यादन्यत्र पतिनः सह ॥ इति ।

एकोद्दिष्टविधानमुक्तं याज्ञवल्क्येन—

एकोद्दिष्टं दैवहीनमेकार्थैकपवित्रकम् ।

आवाहनाद्यौकरणरहितं ह्यपसव्यवत् ॥ इति । (१।२५१)

तत्र पाणिहोमः कर्तव्य इत्याहाचार्यः—

काम्यमभ्युदयेऽष्टम्यामेकोद्दिष्टमथाऽष्टमम् ।

चतुर्ध्वेषु करे होमः पिण्डाश्चाऽत्र द्विजान्तिके ॥ इति ।

तत्र विशेषमाह मनुः—

अग्न्यभावे तु विप्रस्य पाणावेवोपपादयेत् । (३।११२)

(१) पर्युक्ष्य चर्मानास्तीर्य यतो ह्यग्निसमो द्विजः ॥ इति ।

अत्राऽऽचार्यवचनेन द्विजान्तिके पिण्डदानं कर्तव्यमित्युक्तम्,
तदेकोद्दिष्टस्यैव पृथगतुष्टानविषयम् । पार्ष्णश्राद्धे तन्त्राऽनुष्ठानप-
क्षे स्वेकत्र पिण्डदानं कर्तव्यम् । अत्रैकपांको वैश्वदेवं तन्त्रं पिण्डवर्हि-

(१) यो ह्यग्निः स द्विजो विप्रैर्मन्त्रवर्हिभिरुच्यते ।

अयं पाठो मनुस्मृतौ वर्तते। 'पर्युक्ष्य' इत्यादिपाठो मन्त्रोपलभ्यते ।

श्वेकं स्मृत्यर्थसारेण महालयप्रकरणे उक्तत्वात् ।

स्मृतिसंग्रहेऽपि—

वधेककर्तृकं श्राद्धमनेकन्तु यदा भवेत् ।

वैश्वदेवं तु तन्त्रेण पृथक् पाको न विद्यते ॥ इति ।

*Smadht
ascat
m 12^a*

अथ संन्यासिनो महालयश्राद्धं द्वादश्यामेवं कार्य-
मित्युक्तम् । मदनपारिजाते वायुपुराणे—

संन्यासिनोऽप्याब्दिकादि पुत्रः कुर्याद्यथाविधि ।

महालये तु यच्छ्राद्धं द्वादश्यां पार्वणेन तु ॥

*Jan 12
Jan 21
2/14*

अत्र द्वादश्यामित्यत्र नियमानुपादानेऽपि कालादर्शं नियम-
भिप्रेत्यैवाऽभिहितम् । यथा—

श्राद्धं शस्त्रहतस्यैव चतुर्दश्यां महालये ।

द्वादश्यामेव कुर्वीत यतेरिति विनिर्णयः ॥ इति ।

शस्त्रहतस्य पितुश्चतुर्दश्यामेकोद्दिष्टे कृतेऽपि दिनान्तरे पार्वणं
कार्यम् । एकोद्दिष्टेन पितामहादेस्तृप्त्यासिद्धेरित्युक्तमत्र तु पार्वणेन
पितामहादीनामपि तृप्तेः सिद्धत्वात् दिनान्तरे श्राद्धकूर्तव्यमित्याभि-
प्रायः । तेन सर्वादेशेन द्वादश्यामेव श्राद्धकूर्तव्यमिति विद्याकरः
शुकरप्रसृतयोऽपि मन्यन्त इति अलं विस्तरेण ।

अथ मघात्रयोदशीश्राद्धमुच्यते । विष्णुपुराणे—

अपि नः स्वकुले जातो यो नो दद्यात् त्रयोदशीम् ।

पायसं मधुसर्पिर्भ्यां मघासु च विशेषतः ॥

एतच्च मघात्रयोशीश्राद्धम् अविभक्तैरपि पृथगेव कर्तव्यम् ।

तथाच हेमाद्रौ स्मर्यते—

विभक्ता वाऽविभक्ता वा श्राद्धकुर्युः पृथक् सुताः ।

मघासु च ततोऽन्यत्र नाऽधिकारः पृथक् विना ॥

विभक्तं विना मघाश्राद्धादप्यस्मिन् श्राद्धे पृथक् पृथगधिका-
रो नास्तीत्यर्थः ।

यद्यु वचनम्—

कृष्णपक्षे त्रयोदश्यां यः श्राद्धकुरुते नरः ।

पञ्चत्वं तस्य जानीयात् ज्येष्ठपुत्रस्य निश्चितम् ॥

तत्केवलपितृवर्गश्राद्धविषयम् ।

तथाप्य काष्णाजिनिः—

श्राद्धं नचैकवर्गस्य त्रयोदश्यामुपक्रमेत् ।

न तृप्तास्तस्य पेयस्य प्रजां हिंसन्ति तत्र ते ॥

तेन वर्गद्वयस्य श्राद्धकार्यमित्यभिप्रायः । अस्मिन् श्राद्धे पिण्ड-
दानं न कार्यम् ।

मघायां पिण्डदानेन ज्येष्ठः पुत्रो विनश्यति ।

कनीयांस्तु त्रयोदश्यां क्षयाहाऽभ्युदयावृत्ते ॥

अस्य फलमाह महाभारते व्यासः—

ज्ञातीनान्तु भवेच्छ्रेष्ठः कुर्वन् श्राद्धं त्रयोदशीम् ।

नावश्यन्तु युवानोऽस्य प्रमीयन्ते नरा गृहे ॥

अस्य मघात्रयोदशीश्राद्धकर्तुः गृहे युवानो नरा अवश्यं
स्त्रिभितं न म्रियन्त इत्यर्थः ।

अथ चतुर्दशीश्राद्धमुच्यते ।

तथासङ्ग्रहे—

दृक्षारोहणलोष्टार्थैर्विशुज्जालाविषादिभिः ।

नस्विदंष्ट्रिविषजानां तेषां शस्ता चतुर्दशी ॥

तच्छ्राद्धं देवहीनश्चेत् पुत्रदारधनक्षयः ।

एकोद्दिष्टं दैवयुक्तमित्येवं मनुरब्रवीत् ॥

तेषां प्रत्याब्धिकं श्राद्धं स्मृत्युक्तं पार्ष्णिणम्भवेत् ।

प्रेतपक्षे चतुर्दश्यामेकोद्दिष्टं विधानतः ॥

दैवयुक्तम् तु तच्छ्राद्धं पितृणाम्भक्षवम्भवेत् । इति ।

चतुर्दश्यान्तु तच्छ्राद्धं सपिण्डीकरणात्परम् ।

एकोद्दिष्टविधानेन तत्कार्यं शस्त्रघातिनः ॥

काकादर्श—

श्राद्धं शस्त्रहतस्यैव चतुर्दश्यां महालये ।

द्वादश्यामेव कुर्वीत यतेरिति विनिर्णयः ॥

शस्त्रहतस्य पितुर्महालये चतुर्दश्यामेकोद्दिष्टश्राद्धे कृतेऽपि दिनान्तरे पार्वणश्राद्धकार्यम्, एकोद्दिष्टश्राद्धेन पितामहादितृप्त्यसिद्धेः । नन्वेवं मृताहेऽप्येकोद्दिष्टश्राद्धे कृते पार्वणश्राद्धमपि पितामहादितृप्तिसिद्धयर्थं कर्तव्यं स्यात् ? न, पितृमृताहेऽपितामहादेस्वर्पणीयत्वास्मरणेन तत्तृप्त्यर्थं श्राद्धस्याऽननुष्ठेयत्वात् ।

महालये तु—

“काङ्क्षन्ति पुत्रपौत्रेभ्यः पायसं मधुसंयुतम् ।

तस्मार्चास्तत्र विधिना तर्पयेत्पायसेन तु ॥

मध्वाण्यतिलमिश्रेण”

इति पितामहादेरपि तर्पणीयत्वस्मरणान्तत्प्राये दिनान्तरे पार्वणश्राद्धकार्यमेव । यस्तु पितामहोऽपि शस्त्रादिना हतस्तस्य महालये पितामहश्राद्धमपि चतुर्दश्यामेकोद्दिष्टरूपं कार्यम् । तथाच स्मृत्यन्तरम्—‘एकस्मिन्द्वयोर्वैकोद्दिष्टविधिः’ इति । एकस्मिन्पितरि शत्रुदिना हते द्वयोर्वा पितृपितामहयोः शस्त्रादिना हतयोश्चतुर्दश्यामेकोद्दिष्टविधानात् प्रत्येकं श्राद्धकार्यमित्यर्थः । द्वयोरेकोद्दिष्टेन प्रत्येकं श्राद्धे कृतेऽपि प्रपितामहदृप्तिसिद्धयर्थं दिनान्तरे पार्वणश्राद्धकार्यम् । एकस्मिन् द्वयोर्वैत्यभिधानात् त्रिषु पितृपितामहप्रपितामहेषु शस्त्रादिना हतेषु नैकोद्दिष्टविधिरिति गम्यते । तेन त्रिषु शस्त्रादिहतेषु चतुर्दश्यां पार्वणविधिरेव ।

तदुक्तं निर्णयदीपिकायाम्—

पित्रादयस्त्रयो यस्य शस्त्रघातास्त्वनुक्रमात् ।

स भूति पार्वणकुर्माद्यम्बिकानि पृथक् पृथक् ॥

युक्तञ्चेत्तत् । सपिण्डीकृतानां शस्त्रादिहतानां श्रयाणामपि च-

तुर्दशीरूपविहितकालसम्भवात् । तन्निबन्धनैकोद्दिष्टविधेरनवतारात् ।
अनेनैवाऽभिप्रायेणाऽपराकेणाप्युक्तम्—‘तत्र चैकस्य शस्त्रहतस्वेनैको-
द्दिष्टविधानं, न तु त्रयाणां तथात्वे । तत्र तु पार्वणमेव’इति । त्र-
याणां न तथात्वे शस्त्रहतस्वेनैकोद्दिष्टविधानं, किन्तु पार्वणमे-
वेति - तस्याऽर्थः । देवस्वामिनां तु ‘त्रिष्वपि शस्त्रहतेषु पृथगेकोदि-
ष्टत्रयमेव कार्यम् आहत्यवचनाभावात् पार्वणम्’इत्युक्तम् । यदत्र युक्तं
तद्वाह्यम् । यस्पुनः शाकटायनेनोक्तम्—

जलाऽग्निभ्यां विपन्नानां संन्यासे वा गृहे पृथि ।

श्राद्धं कुर्वीत तेषां वै वर्जयिस्वा चतुर्दशीम् ॥ इति ।

तस्माद्यच्चित्तार्थं विहितजलाग्न्यदिकृतमरणमयुक्तविषयम् ।

अस्मिन् शस्त्रहतश्राद्धे मघास्वपि पिण्डदानं स्यात् ।

तदुक्तम्—

श्वेतपक्षे चतुर्दश्यां मघायुक्तं दितं यदि ।

पिण्डदानं प्रकुर्वीत यस्य शस्त्रहतः पिता ॥

पितेत्युपलक्षणम् । नच शस्त्रादिहतानां कथञ्चिच्चतुर्दश्यतिक्र-
मे विहितकालाऽतिक्रमाच्छ्राद्धस्याऽकरणमेवेति वाच्यम् । मघास्त-
तरकालालाभेऽपि महालये श्राद्धस्याऽनुष्ठानमावश्यकमिति माग्दर्शि-
तत्वात् । ततश्च शस्त्रहतानामपि प्रशस्ततरपञ्चमपक्षचतुर्दश्यतिक्रमे
पार्वणविधानेनैतद् दिनान्तरे कार्यम् ।

“सैक्रान्तात्रुपरागे च पर्वोत्सवमहालये ।

निर्दिपेदत्र पिण्डांस्त्रीन्” । इति प्रजापतिस्मरणात् ।

इति चतुर्दशीश्राद्धविधिः ।

अथ तीर्थश्राद्धविधिः ॥

सदाचाररत्नाकरे हारीतः—

दिवा वा यदि वा रात्रौ भुक्ते चोपोषितेऽग्नि वा ।

न कालनिषमस्तत्र गङ्गाफ्राप्य सरिद्धराम् ॥

काले वाप्यथवा ऽकाले तीर्थश्राद्धं सदा नरैः ।

प्राप्तेरेव सदा कार्यं पितृतर्पणपूर्वकम् ॥

तीर्थमेव समासाद्य सद्यो रात्रावपि क्षणम् ।

स्नानञ्च तर्पणं श्राद्धं कुर्याच्चैव विधानतः ॥

पिण्डदानं ततः शस्तं पितृणाञ्चैव दुर्लभम् ।

विलम्बञ्चैव कुर्वीत न च विघ्नं समाचरेत् ॥

इदञ्च श्राद्धं स्नानतर्पणाद्यनन्तरमविलम्बेनैव कर्तव्यम् । तदुक्तं
देवीपुराणे—

श्राद्धं तत्र च कर्तव्यमर्चावाहनवर्जितम् ।

श्वध्वाङ्ग(१)घृघ्नकाकानां नैव दृष्टिहतं च तत् ॥

श्राद्धं तृतीयैकम्प्राक्तं पितृणां तृप्तिकारकम् ।

काले वाप्यथवा ऽकाले तीर्थे श्राद्धन्तथा नरैः ॥

प्राप्तेरेव च कर्तव्यं पितृणाञ्चैव तर्पणम् ।

पिण्डदानञ्च तच्छस्तं पितृणाञ्चाऽतिवल्लभम् ॥

विलम्बो न च कर्तव्यो न च विघ्नं समाचरेत् ॥ इति ।

प्राप्तेरेवेति । आवश्यकस्नानतर्पणाद्यनन्तरं कर्तव्यम् ।

अन्यत्राऽपि—

स्नानादिकं विधायाऽदौ तीर्थे मुण्डनमाचरेत् ।

तीर्थोपवासनियमं कृत्वा श्राद्धं समाचरेत् ॥

(२) अत्र महालये श्राद्धपक्षे हिरण्ये वाप्यनुव्रज्यतिलोदकम् इति-
मुमन्तुवचनातीर्थे हेमश्राद्धपक्षे श्राद्धीयब्राह्मणविसर्जनानन्तरं ती-
र्थनिमित्तं तर्पणमाचरन्ति केचिन्नतु पूर्वम् । तदयुक्तम्, बहुभिर्वाक्यै-
स्तीर्थस्नानानन्तरमेव तद्विधानात् । तीर्थश्राद्धे निषिद्धकालवर्जन-
मपि नेत्याह शङ्करः—

तीर्थे द्रव्यापेपचौ च न कालमवधारेयत् ।

(१) 'कृष्णाकाक इति' ग. पुस्तके पाठः ।

(२) 'अथ हेमश्राद्धपक्षे' ग. घ. पुस्तके पाठः ।

पात्रञ्च ब्राह्मणम्प्राप्य सद्यः श्राद्धं समाचरेत् ॥

तथा प्रभासखण्डे—

न वारं न च नक्षत्रं न कालस्तत्र कारणम् ।

यदैव इहयते तीर्थं तदा पर्वसइत्युक्तम् ॥

अतश्च तीर्थश्राद्धे तिथिवारनक्षत्रादिमयुक्तो निषेधो न प्रवर्तते इत्यभिप्रायः । इदं तीर्थनिमित्तकं श्राद्धं दशमासानन्तरं तीर्थमाप्ता-
वावश्यकम् । अन्तरा तत्फलेच्छया कृताकृतम् ।

सङ्ग्रहे—

संस्वत्सरं द्विमासानं पुनस्तीर्थं व्रजेद्यदि ।

मुण्डनश्चोपवासश्च ततो यत्नेन कारयेत् ॥ ।

इति यज्ञपदयुक्तवचनोक्तमुण्डनादिसमानन्यायत्वात् चकारेणो-
पसङ्गहादा श्राद्धं पृच्छते । प्रयागे तु विशेषः

सङ्ग्रहे—

प्रयागे प्रतियात्रायां योजनत्रय इष्यते ।

क्षौरं तु विधिवत्कार्यं ततः स्नायात् सिताऽसिते ॥

योजनत्रयाऽधिकदेशतो गमने प्रतियात्रां क्षौरं चकारेण श्रा-
द्धोपवासादि कार्यमित्यर्थः । विधवा तु यदि पुत्रवती तीर्थे गता
तदा नैव कुर्यात् ।

सपुत्रया न कर्तव्यं भर्तुः श्राद्धं कदाचन ।

इतिवचनात् । अपुत्रया तु कार्यमेव । 'अपुत्रा पुत्रवत्पत्नी' इति
वचनात् । अनुपनीतोऽपि तीर्थश्राद्धं कुर्यात् ।

एतच्छ्वानुपनीतोऽपि कुर्यात्सर्वेषु पर्वसु ।

श्राद्धं साधारणं नाम सर्वकामफलप्रदम् ॥

भार्याविरहितो वाऽपि प्रवासस्थोऽपि भक्तिमान् ।

शूद्रोऽप्यमन्त्रकं कुर्यादनेन विधिना नृप ॥

इति पात्रे सृष्टिखण्डे तीर्थे श्राद्धादिकमुपक्रम्योक्तेः । तत्र स्त्री-
या अनुपनीतेन च यथादेशाऽऽचारं ब्राह्मणद्वारा करणयिं स्वयं वा
ऽमन्त्रकं कुर्यात् ।

तदुक्तं स्मृत्यर्थसारे—'अनुपनीताः स्त्रीशुद्राश्च श्राद्धसृत्विजा
कारणेषु । स्वयं वा अमन्त्रकं ज्ञामगोत्राभ्यां कुर्युः । देवेभ्यो नमः,
पितृभ्यः स्वधा नमः, इति मन्त्राभ्याश्च' इति ।

अन्योऽपि विशेषः सङ्गहे—

अर्घ्यमावाहनं चैव द्विजाकुण्डनिवेशनम् ।

विकिरं तृप्तिमदनञ्च तीर्थश्राद्धेषु वर्जयेत् ॥

ब्राह्मणाश्च परीक्षित तीर्थकालं प्रचिन्तयेत् ।

मासुतीर्थो यदा विद्वांस्तदा श्राद्धं समाचरेत् ॥

आवाहनं न तीर्थे स्यात् नाऽर्घ्यदानं तथा भवेत् ।

आहूताः पितरस्तीर्थे कृताऽर्घ्याः सन्ति वै यतः ॥

तीर्थे श्राद्धे पिण्डप्रतिपत्तौ विशेषो ब्रह्मवैवर्ते—

तीर्थश्राद्धे सदा पिण्डान् क्षिपेत्तीर्थे समाहितः ।

दक्षिणाऽभिमुखे भूत्वा पैत्री दिक् सा प्रकीर्तिता ॥ इति ।

अथ तीर्थप्रसङ्गात्, गद्या श्राद्धं निर्णीयते ।

तत्र यद्यपि—

भ्रातृणामविभक्तानामेको धर्मः प्रवर्तते ।

विभागे सति धर्मोऽपि भवेत्तेषां पृथक् पृथक् ॥

इति परीक्षितवचनादविभक्तानां गद्याश्राद्धे पृथगनधिकार-
इति प्रतीयते,

तथाऽपि आग्नेये गयामहात्म्ये—

काङ्क्षन्ति पितरः पुत्राभरकाङ्क्षयभीरवः ।

गयां यास्यति यः पुत्रः स नक्ष्ताता भविष्यति ॥

इत्युपक्रम्य—

श्वेत्सीर्द्धः सम्प्रवृष्य देवमादिगदाधरम् ।

ऋणत्रयविनिर्मुक्तः तारयेत्सकलं कुलम् ॥

इति मध्येऽभिधाय—

विभक्ताऽविभक्ता वा कुर्युः श्राद्धं पृथक् सुताः ।

Even
under
the
supposedly

गयायान्तु ततोऽन्यत्र नाऽधिकारः पृथक् विना ॥

इत्युपसंहारादविभक्तैरपि पितृऋणापाकरणाय गयाश्राद्धं पृथ-

गेव कर्तव्यमिति गम्यते ।

अत एव वायुपुराणे—

पृष्ठव्या बहवः पुत्राः क्षीणवन्तो गुणान्विताः ।

तेषां वै समवेतानां यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ॥

इत्यभिहितम् । समवेतानाम् अविभक्तानामित्यर्थः । गयायां

पिण्डदानद्रव्याणि—

देवीपुराणे—

सक्तुभिः पिण्डदानञ्च संयावैः पायसेन च ।

कर्तव्यमृषिभिः प्रोक्तं पिण्यार्केन गुडेन च ॥

गुडेन वेति वा पाठः । संयावो गोधूमविकारः । पिण्याकस्ति-

रुकरकः ।

अग्निपुराणे—

पायसेनाऽऽज्ययुक्तेन सक्तुना चरुणा तथा ।

पिण्डदानं तन्दुलैश्च गोधूमैस्तिलमिश्रितैः ॥

वायुपुराणे—

पायसेनाऽथ चरुणा सक्तुना पिष्टकेन वा ।

तथा—

तिलाज्यमधुदध्यादि पिण्डद्रव्येषु योजयेत् ।

पिण्डाऽष्टाङ्गता ग्रन्थान्तरे उक्ता—

तिलमक्षं च पानीयं धूपं दीपं पयस्तथा ।

मधु सर्पिःस्त्रण्डयुक्तं पिण्डमष्टाङ्गमुच्यते ॥

गयायां संन्यासिना तु तेषु तेषु श्राद्धस्थलेषु पितृस्मरणपूर्वकं दण्डस्पर्शनमात्रं कार्त्तव्यं न तु श्राद्धतर्पणादि ।

तदुक्तं वायवीये—

दण्डं प्रदत्तं श्राद्धमर्गणां गत्वा न पिण्डदः ।

दण्डं स्पृष्ट्वा विष्णुपदे पितृभिः सह मुच्यते ॥
 स्पृष्ट्वेत्यन्तर्भावितणिजर्थः । तेन स्पर्शयित्वेत्यर्थः ।
 गयायां मुण्डपृष्ठे च कूपे यूपे वठे तथा ।
 दण्डं प्रदर्शयन् भिक्षुः पितृभिः सह मुच्यते ॥
 मार्तण्डपादमूले वा श्राद्धं हरिहरं स्मरेत् ॥
 मार्तण्डो दक्षिणादित्यस्तस्य चरणे । अत्र पतितानामपि पित्रा-
 दीनां प्रथमवर्षानन्तरं श्राद्धं पिण्डदानं वा तत्स्वर्गकामनया क-
 र्तेष्यम् ।

क्रियंते पतितानान्तु गते सम्बत्सरे क्वचित् ।
 देशधर्मप्रमाणत्वाद् गयाकूपेषु बन्धुभिः ॥
 मार्तण्डपादमूले च श्राद्धं हरिहरं स्मरन् ॥
 इति श्राद्धचिन्तामणौ ब्रह्मपुराणेऽभिधानात् ।

इति गृह्यश्राद्धनिर्णयः ।

अथ नित्यश्राद्धं हेमाद्रौ—
 नित्यश्राद्धमदैवं स्यादर्घ्यपिण्डादिवर्जितम् ।
 दातृणामथ भोक्तृणां नियमो न च विद्यते ॥
 सर्वं सदक्षिणं राजन् नित्यं श्राद्धमदक्षिणम् ।
 नामन्त्रणं न होमञ्च नाब्धानं न विसर्जनम् ॥
 महालये च दर्शे च क्षयाहे च पितुस्तथा ।
 नित्यश्राद्धं न कुर्वीत प्रसङ्गात्सिध्यते यतः ॥

*Heavenly
 3rd part*

आमश्वाद्धाऽधिकारिणः—

आपद्यनमौ(?) तीर्थे च प्रवासे पुत्रजन्मनि ।
 आमश्राद्धमकुर्वीत भार्यारजसि संक्रमे ॥

सुमन्तुः—

पाकाभावेऽधिकारः स्याद् विप्रादीनां नराऽधिप ।
 अपर्त्नीनां महाबाहो विदेशगमनादिभिः ॥

(१) औत्सर्गिकताप्रतिपादनमात्रे इत्यर्थः न

सदा चैव त शूद्राणाममश्राद्धं विदुर्बुधाः ।

न पक्वं भोजयेद्विमान् स शूद्रोऽपि कदाचन ॥

॥ भोजयन् प्रत्यवायी स्यान्न च तस्य फलं लभेत् ॥

इति सुमन्वृक्तेः । अस्याऽर्थः—विप्रादीनां त्रैवर्णिकानां
देशान्तरगमनादिभिः कारणैरपत्नीकानामसन्निहितपत्नीकानां पा-
कासम्भवे आमश्राद्धाऽधिकारः स्यादिति । अपत्नीनामित्यनेन
पक्ष्यन्तरपुत्राशिष्यादि योग्यपाककर्त्रन्तरमुपलक्ष्यते । पाकाभावे
इत्यनेनाऽऽमद्रूपस्य सोमाभावे पूतिकवत् प्रतिनिधित्वमुक्तम् ।
तथा—

आपद्यनमौ तीर्थे च प्रवासे पत्न्यसम्भवे ।

चन्द्रसूर्यग्रहे चैव दद्यादामं विशेषतः ॥

आमश्राद्धं क्वचिदावश्यकम् ।

श्राद्धविघ्ने द्विजातीनामामश्राद्धं प्रकीर्तितम् ।

अमावास्यादिनियतं माससम्बत्सराहते ॥ इति

आदिशब्देन संक्रान्त्यादिसाधारणनिमित्तकानि गृह्यन्ते । अनेन
मासिकान्दिकञ्च यच्छ्राद्धं तत्पाकेन कर्तव्यम् ।

मृताहञ्च सपिण्डञ्च गयाश्राद्धं महालयम् ।

आपन्नोऽपि न कुर्वीत श्राद्धमामेन कर्हिचित् ॥

अन्योऽपि विशेषो मदनपारिजाते गोभिस्तेनाऽभिहितः—

दर्शे रविग्रहे पित्रोः प्रत्यान्दिकमुपस्थितम् ।

अक्षेनाऽसम्भवे हेम्ना कुर्यादामेन वा सुतः ॥ इति

अत्र दर्शरविपितृसुतशब्दाः प्रदर्शनार्थाः, न्यायस्य समान-
त्वात् । अतः चन्द्रग्रहणेऽप्यावश्यकसपिण्डाद्युद्देशेन श्राद्धाऽधि-
कारिणा आमश्राद्धादिकं कर्तव्यम् । एवं मासिकेऽपि ज्ञेयम् ।
अत्र पत्न्यां रजस्वलायां सत्पामपि श्राद्धकर्तव्यम् । अन्यथा
दोषस्मर्यात् । ॐ ।

भार्यायां रजस्वलायां श्राद्धविधिः । १११

तथा च पितामहः—

रजस्वलायां भार्यायां स्रगाहं यः परित्यजेत् ।

स वै नरकमाप्नोति यावदाभूतसुम्बलवम् ॥

मासिकानि सपिण्डानि अमावास्यां तथाऽऽब्धिकम् ।

अग्नेनैव तु कर्तव्यं यस्य भार्या रजस्वला ॥ इति ।

अन्यत्रापि—

वैदेशिको वा विगताग्निर्वा रजस्वलायामपि धर्मपत्न्याम् ।

श्राद्धं यथाहे विदधीत पाकैर्नाऽऽमेन हेम्ना न तु पञ्चमेऽहनि ॥

यत्तु श्रान्तो वचनम्—

अपत्नीकः प्रवासी च यस्य भार्या रजस्वला ।

सिद्धाग्नेन न कुर्वति आमश्राद्धं विधीयते ॥ इति,

तत्पाकयोग्यस्रगन्तराऽऽभावविषयम् । तथा हारति—

श्राद्धविधौ द्विजातीनामामश्राद्धं प्रकीर्तितम् ।

अमावास्याऽदिनियतं माससंबत्सराहते ॥ इति ।

मास इति मासिकम् । यत्पुनः पराशरमरीचिवचनम्—

आब्दिके समनुप्राप्ते यस्य भार्या रजस्वला ।

पञ्चमेऽहनि तच्छ्राद्धं न तत्कुर्यान्मृतेऽहनि ॥ इति,

तदेतदपुत्रस्त्रीकर्तृकश्राद्धविषयम् । तथाच श्लोकगौतमः—

अपुत्रा तु यदा भार्या संप्राप्ते भर्तुराब्दिके ।

रजस्वला भवेत्सा तु तत्कुर्यात्पञ्चमेऽहनि ॥ इति ।

यत्तु वचनम्—

सप्ताहात्पितृदेवानां भवेद्योग्या व्रतार्चने ॥

इति सप्ताहपर्यन्तमशुचित्वमुक्तम् । तद्रजोनिवृत्त्यभावविषयम् ।

रजोनिवृत्ते तु पञ्चमेऽहन्येव । अन्योऽपि विशेषो ग्रन्थान्तरे—

आमश्राद्धं यदा कुर्याद् विधिज्ञः श्राद्धस्तथा ।

हस्तेऽज्ञौकरणं कुर्याद् ब्राह्मणस्य विधानतः ।

आमश्राद्धं यदा कुर्यात् पिण्डदानं कथम्भवेत् ॥

१५ श्लो० च०

गृहपाकात्समुद्घृत्य सक्तुभिः पायसेन च ।

यत्तु—

आमेन पिण्डं दद्याद्येद्विप्रान् पक्वेन भोजयेत् ।

पक्वेन कुरुते पिण्डमामात्रं यः प्रयच्छति ।

तावुभौ मनुजैः प्रोक्तौ नरकाहौ न संशयः ॥ इति,

तदमावास्याविषयम् । आमश्राद्धं विशेषमाह व्यासः—

। आमं ददत्तु कौन्तेय दद्यादन्नं चतुर्गुणम् ।

आमं चतुर्गुणं दद्यादथवा द्विगुणं तथा ।

हैममष्टगुणं तद्ददामे हैमेऽप्यसौ विधिः ॥

आमे हैमे तथा नित्ये नान्दीश्राद्धे तथैव च ।

व्यतीपातादिके श्राद्धे नियमान् परिवर्जयेत् ॥

गृहपाकात्समुद्घृत्य सक्तुभिः पायसेन वा ।

पिण्डदानं प्रकुर्वीत हैमे श्राद्धे कृते सति ॥

आमश्राद्धे च दृढौ च प्रेतश्राद्धे तथैव च ।

विकिरन्तैव कुर्वीत मुनिः कात्यायनोऽब्रवीत् ॥

आमश्राद्धमनङ्गुष्ठममौकरणवर्जितम् ।

तृप्तिप्रदानविरहितं कर्तव्यं मानवैर्भुवम् ॥

धर्मप्रदीपे—

आवाहनाऽग्नौकरणं विकिरं पात्रपूरणम् ।

तृप्तिप्रदानं न कुर्वीत आमे हैमे कदाचन ॥

। आमश्राद्धव्याऽभावे तु व्यासेनोक्तम्—

— द्रव्याऽभावे द्विजाऽभावे प्रवासे पुत्रजन्मनि ।

हैमश्राद्धं प्रकुर्वीत यस्य भार्या रजस्वला ॥

अत्राऽपि आमश्राद्धोक्ता विशेषा अवगन्तव्याः । आमश्राद्धे
हैमश्राद्धे च भोजनस्य क्तानामापोशानकर्मादीनां यथा सुखं सुख-

ध्वं, तृप्ताः स्येत्यादीनां च द्वारकार्यलोपाभिष्टित्तिरवगन्तव्यौ ।

तृप्तिपशुनोऽवगाहश्च जुषपशुनो यथासुखम् ।

आमश्राद्धे भवेन्नैतदपोशानं च पञ्चमम् ॥

अवगाहोऽङ्गुष्ठनिवेशनम् । केषुचिद्दहोऽप्यवगन्तव्यः । तथाच मरीचिः—

• आवाहने स्वधाकारे मन्त्राज्ज्ञा विसर्जने ।

अन्यकर्मण्यनूहाः स्युः आमश्राद्धे विधिःस्मृतः ॥

अस्याऽर्थः—आवाहने आवाहनमन्त्रे पितृन् द्वविष अत्तव इति पदस्थाने स्वीकर्तव्य इत्यूहः कार्यः । स्वधाकारे “नमोवः पितर” इत्यादिमन्त्रे ‘इष’ इतिपदस्थाने आमद्रव्यायेत्यूहः कार्यः । विसर्जने विसर्जमन्त्रे “वाजे वाजेवत वाजिनो न” इत्यादिके तृप्ता इति पदगत‘क्त’प्रत्ययस्थाने लृट्प्रत्ययेन तृप्स्यन्त इत्यूहः कार्यः । अन्यकर्मणि ‘ब्रह्मणाङ्गुष्ठनिवेशनादौ’ “विष्णो इव्यं रक्षस्व” इत्यादयो मन्त्रा अनुहाः स्युः । “आमश्राद्धविधिःस्मृतः”

इत्यत्राऽऽमश्राद्धग्रहणं हेमश्राद्धस्याप्युपलक्षणार्थम् ।

हेमद्रव्याऽभावे स्मृत्यन्तराक्तम्—

तृणानि वा गवे दद्यात्पिण्डान्वापि विनिर्वपेत् ।

तिलोदकैः पितृन् वाऽपि तर्पयेत् स्नानपूर्वकम् ॥

अग्निना वा दहेत्कसं श्राद्धकाले समागते ।

तस्मिंश्चोपवसेदहि जपेद्वा श्राद्धसंहिताम् ॥ इति ।

स्मृत्यन्तरेऽपि—

पिण्डमात्रं प्रदातव्यमभावे द्रव्याविप्रयोः ।

श्राद्धाऽहनि तु सम्प्राप्ते भवेन्निरशनोऽपि वा ॥ इति ।

पात्राऽभावे तु विशेषः स्मृत्यन्तरे प्रोक्तः—

पात्राऽभावे परं कृत्वा पितृयज्ञविधिं नरः ।

निर्दिश्यात्प्रक्षम्वृष्ट्य यत्र पात्रं ततो नयेत् ॥ इति ।

Six
or
Substant
for
Sands
be

पितृयज्ञविधिं श्राद्धविधिम् । अत्राऽपि यथासम्भवं
अङ्गसम्पादनाभावेऽपि स्मृत्यन्तरोक्तम्—

अङ्गानि पितृयज्ञस्य यदा कर्तुं न शक्नुयात् ।

सं तदा वाचयेद्विमानं सकला सिद्धिरस्त्विति ॥

अतिक्रियेत्तस्य तु विष्णुपुराणे विशेषो दार्शितः—

Last resort

सर्वाऽऽभावे वनङ्गत्वा कलामूलमदर्शकः ।

सूर्यादिलोकपालानामिदमुच्चैः पठेदिति ॥

• अमेऽस्ति विंशं न घनं नचाऽन्यत्

श्राद्धोपयोगि स्वपितृभृतोऽस्मि ।

तृणमस्तु भक्त्या पितरो मयैतौ

भुजौ कृतौ वर्त्मनि यातु तस्य ।

इत्येतत्पितृभिर्गीतं भाव्यं भावप्रयोजकम् ।

यः करोति कृतं तेन श्राद्धं भवति भारत ॥

अथ सङ्कल्पश्राद्धमुच्यते ।

सङ्कल्पन्तु यदा कुर्यान्न कुर्यात्पात्रपूरणम् ।

नावाहनार्थीकरणं पिण्डांश्चैव न दापयेत् ॥ इति ।

पात्रपूरणमर्घ्यदानम् । आवाहनस्य समन्त्रकस्य निषेधो न-

स्वाऽऽवाहनस्वरूपस्य, तदभावे देवतासाक्षिध्याऽभावप्रसङ्गात् ।

तदश्वावाहनमन्त्रमनुवर्त्तेव देवान् पितॄन् ब्राह्मणेषु ध्यायेदिति ।

स्मृत्यन्तरे तु—

सङ्कल्पन्तु यदा कुर्यान्न कुर्यात्पात्रपूरणम् ।

विकिरश्च न दातव्यः पिण्डांश्चैव न निर्वपेत् ॥ इति ।

तथा—

स्यजेदावाहनश्चार्थमर्षीकरणमेव च ।

पिण्डांश्च विकिरास्ये श्राद्धे सङ्कल्पसङ्गके ॥

हृद्घातातपस्तु—

पिण्डनिर्वापरहितं यत्तु श्राद्धं विधीयते ।

स्वधावचनलोपोऽत्र विकिरस्तु न लुप्यते ॥

अक्षय्यं दक्षिणा स्वस्ति सौमनस्यं यथास्थितम् ।

“विकिरस्तु न लुप्यते” इत्यस्यं यत्र पिण्डदानं न निषिद्धं,

[सख्यदादौ] तत्रचेत्संक्षेपेण पिण्डरहितं क्रियते; तदा तत्राऽपिण्ड-
केऽपि विकिरदानमित्यर्थः । सङ्क्षिप्तश्राद्धे विकिरदानमित्येतद् रूपं
नारायणादिभिरपि क्लिप्तम्

• अथ नान्दीमुखनिमित्तान्वाह—

सङ्ग्रहकारः—

*occasion
for band*

सौमन्तव्रतचौलनामकरणाऽन्नप्राशनोपायन-

स्नानाऽऽधान्विवेवाहयज्ञतनयोत्पत्तिप्रतिष्ठासु च ।

पुंसूत्याऽऽवसथप्रवेशनमुताद्यास्याऽवल्लोकाश्रम-

स्वीकारासितिपाभिषेकदयिताश्रुतौ च नान्दीमुखम् ॥

सौमन्तं सौमन्तोन्नयनम् । व्रतानि प्राजापत्याग्नेयवैश्वदेवसौ-
म्यमोदानव्रतानि [ब्रह्मचारिकर्तृकाणि] । चौकं चूडाकरणम् । सुत-
स्य नामनिर्देशः । अन्नप्राशनं सुतस्य प्रथमान्नभोजनम् । उपायनम्
उपनयनम् । स्नानं समावर्तनम् । आधानमग्न्वाधानम् । विवाहः
सुतस्य मुतापाश्च । यज्ञो दर्शपूर्णमासज्योतिष्टोमादिः । तनयोत्प-
त्तिः पुत्रोत्पत्तिः । प्रतिष्ठासु देवताप्रतिष्ठासु च वापीकूपतडागार-
म्भादिप्रतिष्ठासु वा । पुंसूतिः पुंसवनम् । आवसथप्रवेशः नूतन
गृहप्रवेशः । सुतस्याऽऽस्यावल्लोकः प्रथमं मुखपेक्षणम् । आश्रमस्वी-
कारो वानप्रस्थाद्याश्रमस्वीकारः । सितिपाऽभिषेकः राज्याभि-
षेकः । दयिताश्रुतः भार्यायां प्रथमरजःप्रादुर्भावः । एतेषु निमित्तेषु
पुमान्दान्दीमुखं विदध्यादित्यर्थः ।

Special
features in
7 or 8

नान्दीश्राद्धे विशेषः ।

मातृश्राद्धन्तु पूर्वं स्यात्पितृणां तदनन्तरम् ।
ततो मातामहानां च वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम् ॥
वृद्धौ तु मातृपूर्वं तु श्राद्धकुर्वीत बुद्धिमान् ।
अन्वष्टकामु सर्वासु पितृपूर्वं समाचरेत् ॥

आश्वलायनगृह्यपरिशिष्टम्—“आभ्युदयिके युग्मा ब्राह्मणा, अ-
मूला दर्भाः, प्राङ्मुखेभ्य उदङ्मुखो दद्यादुदङ्मुखेभ्यो वा प्राङ्मुख-
स्त्री द्वौ दर्भौ पवित्रं” इति । कात्यायनः—“आभ्युदयिके मदीक्षणासुप-
चारः, पित्र्यमन्त्रवर्ज्यं जप, ऋजवो दर्भा, यवैस्तिळाऽर्थः, संपन्नमिति-
तृप्तिपशुनो द्राघि बदरासतमिश्राः पिण्डा नान्दीमुखान्पितृनावाहयिष्ये
इति पृच्छति” इति । नान्दीमुखाः पितरः प्रीयन्तामित्यस्यस्थाने
नान्दीमुखान् पितृनावाहयिष्य इति पृच्छति । नान्दीमुखाः पितरः।
प्रीयन्तामित्यस्यस्थाने नान्दीमुखान् पितृन्वाचयिष्य इति पृच्छति वा
नान्दीमुखाः पितरः पितामहाः प्रपितामहाः मातामहाः प्रमातामहा
बुद्धप्रमातामहाश्च प्रीयन्तामिति । न स्वधां प्रयुञ्जीत । युग्मानाश्रये
दन्नेति । अत्र नान्दीमुखाः पितर इति मातृणां मातामहानामपि
मदर्शनार्थम् ।

अथ
श्राद्धे
देहिना
मन्त्राद्य

अथ क्षयाहे किं पार्वणं कार्यमेकोद्दिष्टं वेत्ति विचार्यते ।
उभयथावत्नन्दर्शनात् ।

वर्षे, वर्षे तु कर्तव्या मातापित्रोः सुतैः क्रिया ।

अर्द्धं भोजयेच्छ्राद्धं पिण्डमेकं च निर्वपेत् ॥ इति ।

यमोऽप्याह—

सपिण्डीकरणादूर्ध्वं प्रतिसंवत्सरं सुतैः ।

मातापित्रोः पृथक्कार्यमेकोद्दिष्टं मृतेऽक्षनि ॥ इति ।

व्यासस्तु पार्वणं प्रतिषेधति—

एकोद्दिष्टं रित्यस्य पार्वणं कुरुते नरः ।

अकृतं तद्विजानीयाद्भवेच्च पितृघातकम् ॥ इति ।

जपदग्निस्तु पार्वणमाह—

आपाद्यसहपिण्डत्वमौरसोविधिवत्सुतः ।

कुर्वीत दर्मवच्छ्राद्धं मातापित्रोः क्षयेऽहनि ॥ इति ।

मातापितृऽध्याह—

*सपिण्डीकरणं कृत्वा कुर्यात्पार्वणवत्सदा ।

प्रतिसंवत्सरं श्राद्धं छागलेयोदितो विधिः ॥

इत्थेवं वचनविप्रतिपत्तौ दाक्षिणात्या व्यवस्थामहुः—

औरसक्षेत्रजाभ्यां मातापित्रोः क्षयाहे पार्वणमेव कर्तव्यम् ;
दत्तकादिभिरेकोद्दिष्टमिति ज्ञातृकर्णवचनात् ।

प्रत्यब्दं पार्वणमेव विधिना क्षेत्रजौरसौ ।

कुर्यातामितरे कुर्युरेकोद्दिष्टं सुता दश ॥ इति ।

तदसत्—नह्यत्र क्षयाहवचनमस्त्यऽपितु प्रत्यब्दमिति । स-
न्ति च क्षयाहव्यतिरिक्तानि प्रत्यब्दं श्राद्धान्यक्षयतृतीया-माघी-
वैशाखीप्रभृतिषु । अतो न क्षयाहविषयपार्वणकोद्दिष्टव्यवस्थापना-
यालम् । उदीच्याः पुनरेवं व्यवस्थापयन्ति—अमावास्यायां भाद्र-
पदकृष्णपक्षे वा मृताहे पार्वणमन्यत्र मृताह एकोद्दिष्टमेवेति ।

अमावास्यां क्षयो यस्य प्रेतपक्षेऽथवा पुनः ।

पार्वणं तत्र कर्तव्यं नैकोद्दिष्टं कदाचन ॥ इति स्मरणात् ।

तदपि न । अनिश्चितमूलेनानेन वचनेन निश्चितमूलानां बहूनां
क्षयाहमात्रपार्वणविषयाणां वचनानाममावास्या-प्रेतपक्षमृताहवि-
षयत्वेनातिमङ्गोचस्यायुक्तत्वात् , सामान्यवचनानर्थक्याच्च । न च
(१)पार्वणवचनानां पितृमातृक्षयाहविषयत्वेन (२)एकोद्दिष्टवचनानां
च तदन्यक्षयाहविषयत्वेन व्यवस्था युक्ता । उभयत्रापि मातापि-

(१) 'एकोद्दिष्टवचनानां' घ० पाठः ।

(२) 'पार्वणवचनानां' घ२ पाठः ।

तसुतग्रहणस्य विद्यमानत्वात् । यदपि कैश्चिदुच्यते—मातापित्रोः
क्षयाहे, साभिः पार्वणं कुर्यात्, निरग्निरैकोद्दिष्टम् ।

वर्षे वर्षे सुतः कुर्यात्पार्वणं योऽग्निमान् द्विजः ।

पित्रोरनग्निमान् विप्र एकोद्दिष्टं मृतेऽहनि ॥

इति स्मृन्तुस्मरणात् । * तदपि सत्प्रातिपक्षत्वात्पुत्रेषु ।

बर्हस्पयस्तु ये विमा ये चैकाग्र एव च ।

तेषां सपिण्डनादूर्ध्वमेकोद्दिष्टं न पार्वणम् ॥

इति स्मरणात् । तदत्र विज्ञानेश्वराचार्यास्त्वेवं निर्णयवाद्भवति—
संन्यासिनां क्षयाहे सुतेन पार्वणमेव कर्तव्यम् ।

एकोद्दिष्टं यतेर्नास्ति त्रिदण्डग्रहणादिह ॥

सपिण्डीकरणाभावात्पार्वणं तस्य सर्वदा ।

इति प्रचेतसः स्मरणात् । अमावास्यायां क्षयाहे प्रेतपक्षक्षयाहे
च पार्वणमेव ।

अमावास्यां क्षयो यस्य प्रेतपक्षेऽथवा पुनः ।

इत्यादिवचनस्योक्तरीत्या नियमवचनपरत्वात् । अन्यत्र क्ष-
याहे पार्वणैकोद्दिष्टयोर्ब्राह्मिववाद्रिकल्पएव । तत्रापि वंशसमाचार-
व्यवस्थायां सत्यां सैव व्यवस्थिता । असत्तापैच्छिक इत्यल्लभति-
प्रसङ्गेन ।

अथ स्त्रीश्राद्धनिर्णयः ।

स्त्रीणां तु क्षयाहादिव्यतिरिक्तश्राद्धेषु पत्या सहैव श्राद्धं कार्यम् ।

तदाह कात्यायनः—

न योषिञ्चयः पृथग्दद्याद्वसानदिनाहते ।

स्वभर्तृपिण्डमात्राणां तुप्तिरासां यतः स्मृता ॥

मात्रा अंशाः ।

सपिण्डीकरणादूर्ध्वं यत्पितृभ्यः प्रदीयते ।

सर्वेष्वंशान् माता इति धर्मेषु निश्चयः ॥

बृहस्पतिरपि—

स्वेन भर्त्रा समं श्राद्धं भता भुङ्क्ते स्ववासनम् ।
पितामही च स्वेनैव तथैव प्रपितामही ॥

जातृकथ्योऽपि—

सयाहं वर्जयित्वैकं स्त्रीणां नास्ति पृथक् क्रिया ।
कोचिदिच्छन्ति नारीणामन्वत्रापि महर्षयः ॥ इति ।

अन्यत्र अन्वष्टकादिष्वपि । तदुक्तम्—

अन्वष्टक्यं तथा वृद्धिं मातुः श्राद्धं मृतेऽहनि ।

एकोद्दिष्टं तथा मुक्ता स्त्रीणां नान्यत् पृथक् भवेत् ॥ इति

ज्ञातातपोऽपि—

नान्दीमुखेऽष्टके श्राद्धे गयायां च मृतेऽहनि ।

पितामहादिभिः सार्धं मातुः श्राद्धं समाचरेत् ॥ इति ।

*When death
a mother
and she is
be some
itself*

गारुडेऽपि—

अन्वष्टकासु यच्छ्राद्धं यच्छ्राद्धं दृढिहेतुकम् ।

पितुः पृथक् प्रदातव्यं स्त्रीषु पिण्डं सपिण्डता ॥ इति

कार्णार्जिनिरपि—

अष्टकादिषु वृद्धौ च गयायां च मृतेऽहनि ।

मातुः श्राद्धं पृथक् कुर्यादन्यत्र पतिना सह ॥ इति ।

षट्त्रिंशन्मतेऽपि—

एकत्वं सा गता भर्तुः पिण्डे गोत्रे च सूतके ।

न पृथक् पिण्डदानं तु तस्मात्पत्नीषु विद्यते ॥

मातुः श्राद्धे विशेष उक्तः प्रयोगपारिजाते—

माता मङ्गलसूत्रेण मृता यदि च तद्दिने ।

उद्दिश्य विभषण्णौ तु भोजयेच्च सुवासिनीम् ॥

स्त्रीणां श्राद्धेषु देयाः स्युरलङ्कारास्तु योषितः ।

मञ्जरिमेखलादामकार्णिकाकङ्कणद्वयः ॥

*6 1 2 3 & 4
11 12 13 14*

तथाच स्मृत्यन्तरे—

भर्तुरग्रे मृता नारी सहदाहमृतापि वा ।

सुवासिनीं नियुञ्जति तस्याः श्राद्धे द्विजैः सह ॥ इति ।

अथ संन्यासिश्राद्धनिर्णयः ।

तत्र प्रचेताः—

दण्डग्रहणमात्रेण नैव प्रेतो भवेद्यतिः ।

अतः सुतेन कर्तव्यं पार्वणं तस्य सर्वदा ॥ इति ।

ज्ञातातपः—

एकोद्दिष्टं जलं पिण्डमाशौचं प्रेतसत्क्रियाम् ।

न कुर्यात्पार्वणादन्यद् ब्रह्मीभूताय भिक्षवे ॥

उभयनाः—

एकोद्दिष्टं न कुर्वति यतीनां चैव सर्वदा ।

अहन्येकादशे मासे पार्वणं तु विधीयते ॥

सपिण्डीकरणं तेषां न कर्तव्यं सुतादिभिः ।

त्रिदण्डग्रहणादेव प्रेतत्वं नैव जायते ॥

अथ पार्वणप्रसङ्गाद्विधवाकर्तृकपार्वणं निर्णयते ।

तदुक्तं स्मृतिसङ्ग्रहे—

चत्वारः पार्वणाः प्रोक्ता विधवायाः सदैव हि ।

स्वभर्तृश्वशुरादीनां मातापित्रोस्तथैव च ॥

ततो मातामहानां च श्राद्धदानं तथा भवेत् ।

तथा—

श्वश्रूणां च विशेषेण मातामहानां अपि स्मृतम् ।

विशेषेण काकतीर्थविशेषेणेत्यर्थः । विधवायाः पूर्वं मातुः पार्वणं पश्चात्पितुः । कथम्? मातापित्रोरित्यत्र यद्येकं शेषः स्यात्तदा क्रमो न ब्रवीयेत । मातापित्रोरिति मातृशब्दस्य पूर्वश्रवणात् पाठक्रमादेशा-
वक्रमो ब्रवीयेत । 'रेहोमं जुहोति' 'पवागूं पवति' इति षड्विंश-

It is
shown
to be
for
ancestors

Parvna
by widow
for the
own father

श्राद्धे विधवाकर्तृकश्राद्धनिर्णयः । १२१

स्वाभावात्। सम्बन्धेऽपि क्रमापेक्षायां प्रतीतक्रमानुरोधेन च प्रथमं मा-
ता श्राद्धभाक्, ततः पितेति गम्यते । किञ्च 'शोणितान्तिरेके स्त्री भ-
वति' इति श्रुत्या मातुरवयवानां स्त्रियामाधिक्यप्रतिपादनादेव स्त्री-
कर्तृकत्वे मातापित्रोर्मातुरेव प्रथमं श्राद्धदानं युक्तम् । विस्तरास-
म्भवे विधवा पार्वणद्वयं कुर्यात् ।

तदुक्तं स्मृतिसमुच्चये—

भर्तृहीना तु या नारी प्रकुर्यात्पार्वणद्वयम् ।
एकं तु भर्तृपक्षस्य पितृपक्षस्य चापराम् ॥

तथा—

स्वभर्तृप्रभृति त्रिभ्यः स्वपितृभ्यस्तथैव च ।
विधवा कारयेच्छ्राद्धं यथाकालमतन्द्रिता ॥
अपसव्यं कथं स्त्रीणां श्राद्धकार्यं भवेत्तदा ।
अञ्जलस्यैव निक्षेपो वामदक्षिणयोर्भवेत् ॥

अथाविभक्तकर्तृकश्राद्धनिर्णयः ।

*Should be by
undivided
both these*

तत्र पैठीनासिः—

विभक्तेस्तु पृथक्कार्यं प्रतिसंबत्सरादिकम् ।
एकेनैवाविभक्तेन कृते सर्वैस्तु तत्कृतम् ॥ इति ।

मरीचिः—

भ्रातृणामविभक्तानामेको धर्मः प्रवर्तते ।

विभागे सति धर्मोऽपि भवेत्तेषां पृथक् पृथक् ॥

'एको धर्मः प्रवर्तते' इदन्त्वेकपाकविषयमविभक्तौ चापि पु-
थक्पाकपक्षे प्रत्येकमेव श्राद्धादिकं कर्तव्यमित्युक्तं श्राद्धचिन्ता-
मणौ द्वारीतवाक्यानुरोधेन । तच्च वाक्यम्—

भ्रातृणामविभक्तानां पृथक् पाको भवेद्यदि ।

वैश्वदेवादिकं श्राद्धं कुर्युस्ते वै पृथक् पृथक् ॥ इति ।

अन्योऽपि विशेषस्तत्रैव यमेनाभिहितः—

अविभक्तेन पुत्रेण पितृमेधो मुताऽहानि ।

स्थानान्तरे पृथक् कार्यो दर्शश्राद्धं तथैव च ॥ इति ।

संस्थापितानामप्येकेनैव श्राद्धादिकं कार्यमित्युक्तं चमत्कारि-
रचिन्तामणौ ।

वसतामेकपाकेन विभक्तानामपि प्रभुः ।

एकस्तु चतुरो यज्ञान् कुर्याच्छ्राद्धादिकं तथा ॥ इति ।

अथ जीवत्पितुर्यत्र श्राद्धनिषेधस्तदुच्यते ।

यथाह लौगाक्षिः—

दर्शश्राद्धं गयाश्राद्धं श्राद्धं चापरपाक्षिकम् ।

न जावत्पितृकः कुर्यात्तिलैः कुण्णैश्च तर्पणम् ॥ इति ।

ऋतुरपि—

अष्टकासु च संक्रान्तौ मन्वादिषु युगादिषु ।

चन्द्रवर्षग्रहे पाते छायापूज्यस्य चागतौ ॥

जीवत्पिता नैव कुर्याच्छ्राद्धं काम्यं तथाऽखिलम् ॥ इति ।

अत्राष्टका अन्वष्टकाव्यतिरिक्ता एव । अन्वष्टक्ये(१) श्राद्ध-

विधानात् ।

तदुक्तं मैत्रेयपृष्ठापरिशिष्टे—

अन्वष्टक्ये गयाप्राप्तौ सत्यां यच्च मृताहनि ।

मातुः श्राद्धं मुतः कुर्यात्पितर्यपि च जीवति ॥ इति ।

अत्र गयाप्राप्तौ सत्यामिति दैवात् प्रासाङ्गिकप्राप्तौ गयायां श्रा-
द्धविधायकम् । 'अमाश्राद्धं गयाश्राद्धम्' इति तु श्राद्धोद्देशेनैव ग-
यां गत्वा तत्र श्राद्धं न कर्तव्यमित्येतत्परम् । अतश्च न विरोधः ।

अथ पार्वणश्राद्धानुक्रमणी लिख्यते—

श्राद्धस्य चन्द्रमोमिश्रैः पार्वणस्योच्यते क्रमः ।

निरामिषकभक्ताशी पूर्वेषु विजितेन्द्रियः ॥

स्वयं द्विजो द्विजैर्वापि द्विजात्सायं निमन्त्रयेत् ।

पातः श्मश्रुनखच्छेदं सुस्नानीयमथार्पयेत् ॥

(१) मातृत्ववर्द्धिं सित्यर्थः ।

as soon
as you follow
the law you
can form
a better world

but should
do the same
- say in the
deed in other

Proceder
in order

सामग्रीसंहितः स्नातो मध्याह्ने श्राद्धमारभेत् ।

आहुय स्वागतं पृच्छेच्चरणौ क्षालयेत्ततः ॥

पादार्षदानाचमने श्राद्धदेशोपवेशनम् ।

पूरणं कर्मपात्रस्य प्राणायामस्मृतिं ततः ॥

कुर्वीत पुण्डरीकाक्षदेवस्य त्रिजपेत्ततः ।

• देवताभ्य इति श्राद्धमतिज्ञामासनार्पणम् ॥

आवाहनं देवकर्मपूर्वं सर्वं समाचरेत् ।

हस्तार्षदानं पात्रस्य न्युञ्जीकरणमर्पणम् ॥

गन्धादीनां वाससोऽपि कुर्यादाचमनं ततः ।

• अग्नौकरणकं पात्रालम्भनं शेषरक्षणम् ॥

तिलान्विकीर्य देवादि कुर्वीत परिवेषणम् ।

अवगाह्य तथाऽङ्गुष्ठमक्षसङ्कल्पमाचरेत् ॥

अपोशानक्रियोक्कारव्याहृतिप्रथमां जपेत् ।

गायत्रीं पित्र्यमन्त्रादीन् विकिराचमने ततः ॥

कुर्याच्चुलुकदानं च गायत्रीं मधुमध्विति ।

जपेत्तृप्तास्ततः पृच्छेच्छेषाङ्गामवाप्य च ॥

वेदिकाल्लेपनैरेषा करणोलमुकधारणे ।

कुर्यादास्तीर्य च कुशानवनेजनमप्यथ ॥

दद्यात्पिण्डानथाचामेद् दक्षिणाभिमुखो जपेत् ।

कुर्यात्प्रत्यवनेष्याथ नीधीविस्त्रंसनं तथा ॥

षडक्षरीन् सूत्रद्वानमूर्जस्यकरणं जपेत् ।

देवताभ्य इतित्रिंशच्च पिण्डार्चं विदधीत च ।

द्विजान्नाचम्य सकुशजलाद्येभ्यः समर्पयेत् ॥

मूर्द्धोभिषेकमक्षय्योद्दकदानमथाशिवाम् ।

ग्रहथं विदधीताथ स्वभावाचनमाचरेत् ॥

अर्घ्यपात्रोत्थापनञ्च दक्षिणादानमप्यथ ।

पिण्डानुत्थाप्य कुर्वति देवब्राह्मणवाचनम् ॥
 देवताभ्य इति त्रिंश जपेदथ विसर्जयेत् ।
 अथाचम्य नमस्कुर्याद्दिवाकरमिति क्रमः ॥ इति ।
 अथ श्राद्धकर्तुर्भोजनविधिरभिधीयते ।

मार्कण्डेयपुराणे—

ततो नित्यक्रियां कुर्याद् भोजयेच्च तथाऽतिथीन् ।
 ततस्तदन्नं भुञ्जीत सहसृत्यादिभिर्नरः ॥

*is fasting
after Smadh*

अनेन उपवासनिषेधो गम्यते । अत एव देवस्य—
 श्राद्धं कृत्वा तु यो विप्रो न भुङ्क्ते वै कदाचन ।
 देवा हविर्न गृह्णन्ति कव्यानि पितरस्तथा ॥

पराशनिषेधोऽपि—

योऽश्नाति परगृहेषु श्राद्धं कृत्वा तु तद्दिने ।
 श्राद्धशेषं च नाश्नाति स चापि श्राद्धहा भवेत् ॥

आचार्योऽपि—

ततः करोति नित्यानि बन्धुभिः सह भुञ्जति ।
 श्राद्धशेषमभुञ्जानः कर्त्ता निरयमृच्छति ॥

एतच्च पितृसेवितभोजनं सर्वविधात्किञ्चिद्दुपादाय कर्तव्यम् ।

तथाच मत्स्यपुराणे—

ततश्च वैश्वदेवान्ते सभृत्यसुतवान्धवः ।
 भुञ्जीतातिथिसंयुक्तः सर्वं पितृनिषेवितम् ॥

सामोत्पत्तौ तु—

वनस्पतिगते सोमे पराशं यस्तु भुञ्जति ।
 तस्य मासकृतो होमो दातारमधिगच्छति ॥
 श्राद्धं कृत्वा परश्राद्धे भुञ्जते, ये विश्वस्रणाः ।
 पतन्ति पितरस्तेषां लुप्तपिण्डादेकक्रियाः ॥ •
 उपवासो यदा नित्यः श्राद्धं नैमित्तिकं भवेत् ।

*What should be
done after Smadh*

उपवासं तदा कुर्यादाघ्राय पितृसेवितम् ॥

श्राद्धं कृत्वा तु यो विप्रो न भुङ्के पितृसेवितम् ।

हविर्देवा न गृह्णन्ति कव्यं च पितरस्तथा ॥ इति ।

तद् एकादशीव्यतिरिक्तविषयम् । आघ्राणेनापि भोजनकार्यं सिद्ध्यति, तस्य भोजनकार्ये विधानादिति । एतद्भोजनं रात्रौ न कर्तव्यमित्युक्तम्

सङ्ग्रहे—

अयने रविसंक्रान्तौ रविवारेषु पर्वसु ।

मृताहे जन्मदिवसे न कुर्याद्वात्रिभोजनम् ॥

अथोच्छिष्टमार्जजं हेमाद्रौ—

चालयेद् भुक्तपात्राणि प्रथमं स्वस्तिवाचनात् ।

सूर्येऽस्तमित उच्छिष्टं समाज्यं निखनेद्भुवि ॥ इति

अत्र शूद्रायान्नं निषेधति मनुः—

श्राद्धं भुक्त्वा य उच्छिष्टं वृषलाय प्रयच्छति ।

स मूढो नरकं याति कालमूत्रमवाक्शिराः ॥ इति (३.२४९)

यस्य तु गृहान्तरमस्ति तेन तु अस्तमयादुपरि तदुच्छिष्टं सौ-
शोघनीयम् । तद्दिने शूद्रस्य श्राद्धशेषभोजनदाने निषेधमाह
आचार्यः ।

न शूद्रं भोजयेत्तस्मिन् गृहे यत्रेन तद्दिने ।

श्राद्धशेषं न शूद्रेभ्यो ददाति चाऽखिलेष्वपि ॥

शूद्रादीन् भोजयेत् यो वै दैवे श्राद्धे च मानवः ।

तस्य निष्फलतां याति श्राद्धं दैवं च तत्क्षणात् ॥

अथ अनग्निकषैश्च देवकालो विधीयते ।

प्रातिषासरिको होमः श्राद्धादौ क्रियते यदि ।

देवा इन्ध्रं न गृह्णन्ति कव्यानि पितरस्तथा ॥

When offered to be avoided

bury leave

don't give leaving to Indra

Daily duties to be avoided in Shra

अनेन अग्निहोत्रस्य श्राद्धात्पूर्वं श्राद्धपाकेन पाकान्तरेण वा सर्वथा वैश्वदेवो न कर्तव्य इत्युक्तं भवति । । सग्निकस्य तूत्तरत्र श्राद्धात्प्रागेव कर्तव्यताविधानात् । श्राद्धमध्ये तु वैश्वदेवं कार्यम् ।

ब्रह्माण्डपुराणे—

वैश्वदेवाहुतीरग्नावर्वाक् ब्राह्मणभोजनात् ।

जुहुयाद् भूतयज्ञादि श्राद्धं कृत्वा तु तस्मृतम् ॥ इति ।

‘अर्वाग्ब्राह्मणभोजनात्’ इत्यनेनाग्नौकरणानन्तरं वैश्वदेवाहुतीर्जुहुयादित्युक्तं भवति । ‘श्राद्धं कृत्वा भूतयज्ञादि स्मृतम्’ इत्यनेन भूतयज्ञादेरेव श्राद्धान्ते कर्तव्यता भवति । एतद्वचनं पृथक्पाकविषयम् । पाकैक्ये दोषस्य बक्ष्यमाणत्वात् । अयमेकोऽनग्निहोत्रवैश्वदेवकालः । द्वितीयोऽपि भविष्यपुराणे—

पितृन्सन्तर्प्य विधिवद्बालिं दद्याद्विधानतः ।

वैश्वदेवं ततः कुर्यात् कुर्यात् ब्राह्मणवाचनम् ॥ इति ।

बलिशब्दोऽपि तत्रैव व्याख्यातः—

येऽग्निदग्धामन्त्रेण भूमौ यस्मिन्निषेद् बुधः ।

जानीहि तं बलिं वीर श्राद्धकर्माणि सर्वदां ॥ इति ।

अन्तेन विकिरणसंज्ञकबलिप्रदानानन्तरं स्वस्तिवाचनात्पूर्वं वैश्वदेवं कुर्यात्, इत्युक्तं भवति । इदमपि पृथक्पाकविषयम्, श्राद्धस्य निर्वृत्तत्वात् । अयं तु द्वितीयः कालः । तृतीयोऽपि स्मृतिपुराणादौ उक्तः ।

तत्राह मनुः—

उच्छेषणं तु तच्चिष्टेषुवावद्विमा विसर्जिताः ।

ततो गृहबालिं कुर्यादिति धर्मो व्यवस्थितः ॥ (३।३६५)

अस्य च मेधातिथिकृता व्याख्योक्त्ये—भुक्तवस्तु द्विजेषु यद्विकिरणवाग्रस्थप्रज्ञं भूमौ निपातितं तत्तस्माद्देशात्तावन्न मारुष्यम् ।

यावद् ब्राह्मणा न निष्क्रान्ताः) ततो निष्पन्न श्राद्धकर्माणि अनन्तरं
वैश्वदेवादिकं कर्तव्यम् बलिशब्दस्य प्रदर्शनार्थत्वादिति ।

भविष्यपुराणे—

कृत्वा श्राद्धं महाबाहो ब्राह्मणांश्च विष्टुष्य च ।

वैश्वदेवादिकं कर्म ततः कुर्यान्नराधिप ॥ इति ।

पैठिनसि—

श्राद्धं निर्वर्त्य विधिवद्वैश्वदेवादिकं ततः ।

कुर्याद्भिक्षां ततो दद्याद्धन्तकारादिकं तथा ॥ इति ।

तदेवमुक्तास्त्रयोऽनग्निकवैश्वदेवकालाः—एकोऽग्नौकरणानन्तरं,
द्वितीयस्तु विकिरणादुपरि, तृतीयो ब्राह्मणविसर्जनात्पश्चादिति ।

अत्र स्मृतिसङ्ग्रहे विशेष उक्तः—

दृष्ट्वावादौ, क्षयाहन्ते, दर्शे मध्ये, (१)महाकृषे ।

आचान्तेषु च कर्तव्यं वैश्वदेवं चतुर्विधम् ॥

अत्र दृष्ट्वाचारतो व्यवस्था द्रष्टव्या ।

इत्यनग्निकवैश्वदेव कालनिर्णयः ।

अथ सामिकवैश्वदेवकाल निर्णयः ।

तत्र लौगाक्षिः—

पश्चान्तं कर्म निर्वर्त्य वैश्वदेवं च सामिकः ।

विष्टुष्यन्नं ततः कुर्यात्ततोऽन्वाहार्यकं बुध ॥ इति ।

पश्चान्तं कर्मान्वाधानम् । अन्वाहार्यकं दर्शश्राद्धम् । तत्राने-
कदैवत्यश्राद्धोपलक्षणार्थम् । ततश्चैकादशाहिकव्यतिरिक्तेषु श्राद्धेषु
सर्वत्र सामिकस्य पूर्वमेव वैश्वदेवः ।

तथाच शाकल्लयनः—

श्राद्धात्प्रागेव कुर्वीत वैश्वदेवं तु सामिकः ।

(१) अन्नदानानन्तरं विप्रभोजनारम्भात्प्राक् इत्यर्थः ।

१७ भा० क०

एकादशाहिकं मुक्त्वा तत्र ह्यन्ते विधीयते ॥

इति साग्निकवैश्वदेवकालनिर्णयः ।

अथ वैश्वदेवपाकनिर्णयः ।

*दिव्ये देवे
अप्युक्तं
ले ले के
होने ५-५
दोषः*

तुक्त्वा पितृपाकेन वैश्वदेवकरणे दोषमाह पैठिनसिः—

पितृपाकात्समुद्धृत्य वैश्वदेवं करोति यः ।

आसुरं तद्भवेच्छ्राद्धं पितृणां नोपतिष्ठते ॥ इति ।

एतत्सर्वं श्राद्धादौ मध्ये चानुष्ठीयमानवैश्वदेवविषयम् । आ-

द्धान्तं तु श्राद्धशेषस्य वैश्वदेवे विनियोग उक्तः पैठीनसिना—

श्राद्धं निर्वर्त्य विधिवद्वैश्वदेवादिकं ततः ।

कुर्याद्भिसां ततो दद्याद्धन्तकारादिकं तथा ॥

पिण्डदानात्पूर्वं पितृपाकेन वैश्वदेवादिकं न कुर्यात् ।

गृह्णाभिषिद्युदेवेभ्यो यतये ब्रह्मचारिणे ।

पितृपाको न दातव्यो यावात्पिण्डान्न निर्वपेत् ॥

यानि पृथक्पाकवैश्वदेवाभिघायिकानि वाक्यानि तानि प्रेत

श्राद्धविषयाणि, 'शेषं ब्राह्मणेभ्यः समुत्सृजेत्' इति देवकेनाभिधा-

नत् । यदि शेषप्रश्ने अयमभिसन्धिः । यदि संवत्सरे सपिण्डीक-

रणं तदा मध्ये यान्यूनमासिकादीनि श्राद्धानि भवन्ति, तत्र वैश्व-

देवं पृथक्पाकेनैव भवति, शेषात्भावात् । यदि द्वादशाहे सपि-

ण्डीकरणं तदैकादशेऽह्नि ब्राह्मणैः पृथक्पाकेनैव वैश्वदेव इत्युभ-

यथा पृथक्पाकः । 'अस्मभ्यं दीयताम्' इति द्विजा ब्रूयुस्तदा शेषा-

भावात् पृथक्पाकेन वैश्वदेवकर्म स्यात् ।

वैश्वदेवे तु सम्प्राप्ते भिक्षुके गृहमागते ।

उद्धृत्य वैश्वदेवार्थं भिक्षुकं तु, विसर्जयेत् ॥

यती च ब्रह्मचारी च पक्षास्त्रस्वामिनावुभौ ।

तयोरन्नमदश्वा तु भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥

इत्यादीनि श्राद्धपाकव्यतिरिक्तविषयाणि ।

अथ श्राद्धाङ्गुलितर्पणविधिरुच्यते ।

तत्र गर्गः—

पूर्वं तिलोदकं दत्त्वा अमाश्राद्धं तु कारयेत् ।

प्रत्यन्दे न भवेत्पूर्वं परेऽहनि तिलोदकम् ॥

अमा=अमावास्या ।

(१)पक्षश्राद्धे हिरण्ये च अनुवश्य तिलोदकम् ॥ इति ।

(पारिजाते—

प्रत्यङ्गुलितिलं दद्यान्निषिद्धेऽपि परेऽहनि ।

वर्गकस्य वचो येषामन्येषां तु विवर्जयेत् ॥ इति ।

सङ्ग्रहे—

दर्शे तिलोदकं पूर्वं क्षयाहे च परेऽहनि ।

महालये च पिण्डान्ते सकृच्छ्राद्धे परेऽहनि ॥

स्नात्वा नीरं समागत्य उपविश्य कुशासने ।

सन्तर्पयेत्पितृन्सर्वान्स्नात्वा वस्त्रं च धारयेत् ॥ इति ॥ (२)

तस्य विधानमाह सङ्ग्रहकारः—

अपसव्यं ततः कृत्वा सव्यं जान्वाच्य भूतले ।

नामगोत्रस्वधाकारैर्द्वितीयान्तेन तर्पयेत् ॥

तिलाभावे आह गोभिलः—

तिलाभावे निषिद्धाहे सुवर्णरजतान्वितम् ।

तदभावे निषिञ्चेत्तु दर्भैर्मन्त्रेण वा पुनः ॥ (३)

स्मृत्यन्तरेऽपि—

तिलाभावे राजतेन खड्गहेमकुशैरपि । इति ।

(१) महालयश्राद्धे हेमश्राद्धे च विप्रविस्मर्जनान्ते तिलतर्पणं कार्यमित्यर्थः ।

(२) कंसाम्बुर्गतौ प्रमथ'ख' पुस्तके नास्ति ।

(३) नित्यतर्पणार्थिप्रायामिदम् ।

तिलतर्पणरहितश्रादान्युच्यन्ते बृहन्नारदीये—

• हाडिश्राद्धे सपिण्डे च प्रेतश्राद्धेऽनुमासिके ।

संवत्सर(१)विमोके च न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥ इति ।

इति तिलतर्पणविधिः ॥

तिलतर्पणनिषेधस्तदपवादश्चोच्यते(२) ।

सङ्ग्रहे—

नन्दार्यां भार्गवादिने कृत्तिकासु मघासु च ।

भरण्यां भानुवारे च गजच्छायावहये तथा ॥

अपनद्धितये चैव मन्वादिषु युगादिषु ।

पिण्डदानं सृदा स्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥

दृढमतुः—

सप्तम्यां भानुवारे च मातापित्रोः क्षयेऽहनि ।

तिलैर्यस्तर्पणं कुर्यात्स भवेत्पितृघातकः ॥

तिलतर्पणनिषेधापवादौ स्नानाङ्गतर्पणव्यतिरिक्तपितृतर्पण-

विषयो ।

तदाह दृढमतुः—

• संक्रान्त्यादिनिमित्ते तु स्नानाङ्गे तर्पणे द्विजः ।

तिशिवारनिषेधेऽपि तिलैस्तर्पणमादिशेत् ॥

भानौ भौमे त्रयोदश्यां नन्दासृगुमघासु च ।

पिण्डदानं सृदा स्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥

॥ उपरामे पितुः श्राद्धे पातेऽमायां च संक्रमे ।

निषिद्धेऽपि हि सर्वत्र तिलैस्तर्पणमाचरेत् ॥(३)

(१) आश्विनपूर्णिमादिनिषिद्धितमेतन्नामकं श्राद्धम् ।

(२) प्रसङ्गाच्चिरयतर्पणविषयोऽयं विचारः ।

(३) श्लोकौ 'क' पुस्तके नस्तः ।

व्यतीपातग्रहणेन वैश्वतर्पणम् । पितृग्रहणं पितृव्यादिश्राद्धस-
ङ्ग्रहार्थम् । अम्बवास्याग्रहणं सकलश्राद्धतिथेरुपलक्षणम् । संक्रान्ति-
ग्रहणमयनद्वयव्यतिरिक्तसंक्रान्तिविषयम् ।

तीर्थे तीर्थविशेषे च गयायां प्रेतपक्षके ।

निषिद्धेऽपि दिने कुर्यात्तर्पणं तिलमिश्रितम् ॥

गर्गः—

कृष्णे भाद्रपदे मासि श्राद्धं प्रतिदिनं भवेत् ।

पितृणां प्रत्यहं कार्यं निषिद्धाहेऽपि तर्पणम् ॥

निःपीडयति यः पूर्वं स्नानवस्त्रमर्पितम् ।

निराशाः पितरो यान्ति श्रापं दत्त्वा सुदारुणम् ॥

पाराशरः—

द्वादश्यां पञ्चदश्यां च संक्रान्तौ रविवासरे ।

बस्त्रनिष्पीडनं नैव न च क्षारेण योजयेत् ॥

तिले विशेषमाह गोभिलः—

शुक्लैस्तु तर्पयेद्देवान्मनुष्याञ्छुक्लैस्तिलैः ।

पितृस्तु तर्पयेत्कृष्णैस्तर्पयेत्सर्वतो द्विज ॥ इति ।

तत्र तिलग्रहणविधिमाह परीचिः—

मुक्तहस्तेन दातव्यं मुद्रां तत्र न दर्शयेत् ।

वामहस्ते तिला ग्राह्या मुक्तहस्तस्तु दक्षिणः ॥ इति ।

मुद्रा प्रदेशिन्बहुषु सन्धियोगः । एतद्द्वामहस्ते तिलग्रहणे स्था-
नविशेषं व्यतिरेकेणाह सङ्ग्रहकारः—

(१) हस्तमूले तिलान् क्षिप्त्वा यः कुर्यात्तिलतर्पणम् ।

तज्जळं रुधिरं ज्ञेयं ते तिलाः कृमिसंमिताः ॥ इति ।

तत्राप्यङ्गोमकस्थाने तिलाभिक्षिपेत् इति व्यतिरेकेणाह

गोभिलः—

रोमसंस्थांस्तिलाङ्कृत्वा यस्तु तर्पयेत् पितॄन् ।

(१) 'सङ्गोमप्रदेशे' इत्यर्थः ।

पितरस्तपितांस्तेन रुधिरेण मूलेन वा ॥ इति ।
एतत्सर्वमनुदधृतोदकतर्पणाभिप्रायम्, उदधृते तु विशेषा-
भिधानात् ।

तथाच योगियाद्भवत्कथः—

एद्युदधृतं निषिञ्चतु तिलान्सम्भिभ्रयेज्जले ।

अतोऽन्यथा तु सव्येन तिला ग्राह्या विचक्षणैः ॥.

अन्यथा अनुदधृते । दर्भधारणे विशेष उक्तः । स्मृतिभास्करे—

कुशाग्रैस्तर्पयेद्देवान् मनुष्यान्कुशमध्यतः ।

द्विगुणीकृत्य मूलाग्रैः पितृसन्तर्पयेद्विज ॥ इति ।

अन्वारब्धेन सव्येन पाणिना दक्षिणेन तु ।

देवर्षींस्तर्पयेद्दीमानुदकाञ्जलिभिः पितॄन् ॥

उभाभ्यामपि हस्ताभ्यामपराजितदिक्मुखः ।

संवृताङ्गुष्ठाभ्यां तु सव्योपग्रहमेव च ॥

तृप्यन्त्विति समुच्चार्य तृप्यतामिस्रथापि वा ।

विधिज्ञः प्रसिपेत्त्रोयं देवादीनां विशेषतः ॥ इति ।

अपराजितादिक् पेशानी । सङ्गहेऽपि—

एकहस्तेन तोयेन न कुर्यात्पितृतर्पणम् ।

पितरो न प्रशंसन्ति न प्रशंसन्ति देवताः ॥

यत्तु व्याघ्रेणोक्तम्—

उभाभ्यामपि हस्ताभ्यामुदकं यः प्रयच्छति ।

स मूढो नरकं याति कालसूत्रमवाकृशिराः ॥

तच्छ्राद्धादिविषयम् । अत एव काष्णार्जिनिः—

श्राद्धे विवाहकाले च पाणिनैकेन दीयते ।

तर्पणे तु मयेनैव विधिरेष सनातनः ॥ इति ।

एतत्तर्पणमुदकादौ न कार्यम् । तथाच गोभिलः—

स्थले स्थित्वा जले यस्तु मयञ्छेदुदकं नरः ।

नोपतिष्ठति तद्दारि.पितृणां तन्निरर्थकम् ॥

when
one takes
alone
in water

X ||

ज्ञातातपः—

देधान्पितृन्मनुष्यादीन्स्वशाखाविधिनोदितान् ।

एकैकाञ्जलिना तृप्तिं प्रथमान्तेन वाचयेत् ॥

अञ्जलिसंख्या उक्ता व्यासेन—

एकैकमञ्जलिं देवा द्वौ द्वौ तु सनकादयः ।

अर्हन्ति पितरस्त्रीस्त्रीस्त्रियं चैकैकमञ्जलिम् ॥

स्मृतिरत्नावल्याम्—

मातृमुख्यास्तु यास्त्रिसस्तासां दद्याज्जलाञ्जलीन् ।

त्रीस्त्रीस्तु दद्यादन्पासां दद्यादेकैकमञ्जलिम् ॥

स्मृतिसङ्ग्रहे—

सम्बन्धमनुकीर्त्यैव नामगोत्रमन्तरम् ।

वस्वादिरूपं सङ्कीर्त्य स्वधाकारेण तर्पयेत् ॥

अन्यत्र तु—

मातृस्त्रीनञ्जलीन्दद्यादन्पासामेकमञ्जलिम् ।

सापत्याचार्यपत्नीनां द्वौ द्वौ दद्याज्जलाञ्जलीन् ॥

स्मृतिसङ्ग्रहे—

सम्बन्धमनुकीर्त्यैव नामगोत्रमन्तरम् ।

वस्वादिरूपं सङ्कीर्त्य स्वधाकारेण तर्पयेत् ॥

यमः—

— सम्बन्धो नामगोत्रेण स्वधान्तेन नमोऽन्ततः ।

वस्वादिरूपं निर्दिश्य तर्पयेत्पितृपूर्वकम् ॥

नामग्रहणे विशेषमाह बोधायनः—

धर्मान्तं ब्राह्मणस्योक्तं वर्मान्तं क्षत्रियस्य तु ।

गुप्तान्तं चैव वैश्यस्य दासान्तं शूद्रजन्मनः ॥

इति श्री महाराजाधिराजसहगिलान्वयैकभूषणपरमा-

नन्दादिष्ट 'धर्माधिकारि' रामपाण्डितात्मज पाण्डित

विनायककृतायां श्राद्धकल्पलतायां विकृति-

श्राद्धनिरूपणस्तम्बिकअतुर्थः ॥

अथ नवश्राद्धानि ।

तानि च यथोक्तदाहादिसंस्कृतस्य भवन्तीति तदुपयोगि-
तया तावत्संकारो निरूप्यते ।

तत्रादावग्निनिर्णयः । तत्राऽऽहिताग्नेः श्रौतेनानाहिताग्नेः स्वा-
तन्तेतरस्य लौकिकेनाग्निना दाहः कर्तव्य इत्याह—

*read to
—
—
—*
बृहयाज्ञवल्क्यः—

आहिताग्निर्यथान्यायं दग्धव्यास्त्रिभिरग्निभिः ।

अनाहिताग्निरेकेन लौकिकेनापरो जनः ॥ इति ।

(मि० पृ० २९५)

अत्र विद्यमानेष्वग्निषु तैरेव, तदभावे प्रेतावानमेवेति । एके-
नौपासनेन । अत एव बौधायनः—“औपासनेन ग्रहिणाम्” इति ।

ब्राह्मणेऽपि—

अनाहिताग्नेर्देहस्तु दाहो गार्गाग्निना द्विजैः ।

औपासनेऽपि विद्यमाने तेनैव, तदभावे प्रेतोपासनेनेति । इतरो

ब्रह्मचारि-विधवा-प्रमुखाः,

तदाह याज्ञवल्क्यः—

“आश्मशानादनुव्रज्य इतरो ज्ञातिभिर्वृतः ।

यममूक्तं तथा गाथा जपन्त्रिलौकिकाग्निना ॥

स दग्धव्यः” इति । (३।२।)

तथा लौकिकेऽपि कश्चिन्निषेधतिदेवळः—

चाण्डालाग्निरमेध्याग्निः सूतकाग्निश्च कर्हिचित् ।

पतिताग्निश्चिताग्निश्च नु शिष्टग्रहणोचिताः ॥ इति ।

(मि० पृ० २९५)

*Show
Shon in
to take the form &
with pronunciation*
शुद्धेण चाग्निष्वाद्याधानयनं श्मशाने न कारणीयम् ।

तदाह यमः—

अस्यानयति शुद्धोऽग्निं तृणं काष्ठं हवींषि च ।

प्रेतस्तं च सदा तस्य स चाग्नेषु किञ्चन ॥ इति ।

(मि० पृ० २९५)

अत्रापरं विशेषमाह क्रतुः—

विधुरं विधवां चैव कपालस्याग्निना दहेत् ।

यतिश्च ब्रह्मचारी च दाह्य उत्तपनाऽग्निना ॥

तुषाऽग्निना च दग्धव्या कन्यका बाल एव च । इति ।

अग्निवर्णं कपालं तु कृत्वा तत्र विनिक्षिपेत् ।

करीषादिस्ततो योऽग्निर्जातः स तु कपालजः ॥

इति कपालाग्निः । उत्तपनाग्निस्तु—

दर्भैरग्निं तु प्रञ्चाल्य पुनर्दर्भैस्तु संयुतः ।

पुनर्दर्भे तृतीयेऽग्निरेव उत्तपनीयकः ॥

आहिताग्नेस्तत्पत्न्याश्च श्रौतेनैवेत्युक्तं ब्रह्मपुराणे—

आहिताग्नयोश्च दम्पत्योर्यश्चादौ म्रियते भुवि ।

तस्य देहः सपिण्डेश्च दग्धव्यास्त्रिभिरग्निभिः ॥

पश्चान्मृतस्य देहस्तु दग्धव्यो लौकिकाग्निना ।

आहिताग्नेर्भार्याया अपि मरणे अग्निहोत्रेणैव तस्या दाहः

कार्यः । तदुक्तं क्रतुना—

एवं वृचं सवर्णां स्त्रीं द्विजातिः पूर्वमारिणीम् ।

पूर्वमृताम् ।

दाहयेदग्निहोत्रेण यज्ञपात्रैश्च धर्मवित् ॥

बाह्ववस्कयोऽपि—

दाहयित्वाऽग्निहोत्रेण स्त्रियं वृत्तवतीं पतिः ।

आहरेद्विधिवद्वारानग्नींश्चैवाविकम्बपन् ॥

अनेकभार्यं प्रत्याह शौनकः—

पत्न्योरेका यदि मृता दग्ध्वा तेनैव तां पुनः ।

आदधीताऽन्यथा सार्धमाधानविधिना गृही ॥ इति ।

तेनैव वैतानेनैव । एतज्जम्बुपाया एव मरणे,

कनिष्ठं तु मृतां पूर्वं दहेत्किर्मन्थुषवन्दिना ।

इति विशेषस्मरणात्, तथा—

द्वितीयां चैव यो भार्या दहेद्वैतानिकाग्निभिः ।

तिष्ठन्त्यां प्रथमायां हि सुरापानसमं भवेत् ॥

इति निषेधाच्च । अत्रापि विद्यमाने श्रौते स्मार्ते चाग्नौ तेनैव पत्न्या दाहस्तदभावे प्रेतात्वात् प्रेतापासनाभ्यामिति । सहपरणे तु सहैव पितृमेधः । यद्दाऽनाहिताग्निपत्नीं निर्बन्धयेन दहेत् । 'औपासनेनाहिताग्निं दहोन्निर्बन्धयेन पत्नीम्' इति विष्णुवचनात् । अत्रापरे विशेषा व्याहृतकतन्त्राज्ज्ञेयाः । स चायं दाहो रात्रिमृतस्य रात्रावेव कार्य इत्युक्तं स्मृतिसंग्रहे—

रात्रौ दग्ध्वा तु पिण्डान्तं कृत्वा वपनजितम् ।

वपनं नेष्यते रात्रौ श्वस्तदा वपनक्रिया ॥

देवजानीयेऽपि—

रात्रौ वा रात्रिशेषे च म्रियन्ते ये द्विजातयः ।

दाहं कृत्वा यथान्यायं द्वौ पिण्डौ निर्वपेत्सुतः ॥

रात्रौ वा तच्छेषे वा मृतस्य दाहे क्रियमाणे सूर्योदयश्चेत्तदा प्रातरवयवपिण्डद्वयं दद्यात् ।

रात्रिदाहे वपनं प्रातरेव, "वपनं नेष्यते रात्रौ" इति वचनात् । पर्युषितदाहे प्रायश्चित्तमप्युक्तं स्मृतिरत्नावल्याम्—

शवं रात्र्युषितं चेत्त्रीन् कृत्वा कृच्छ्रान्दहेत्सुतः । इति ।

धर्मतश्वालीकेऽपि—

दिवां वा यदि वा रात्रौ शवं तिष्ठति कर्हिचित् ।

तत्पर्युषितमिसाहुर्दहने तस्य का गतिः ॥

पञ्चगव्येन संस्नाप्य प्राजापसप्रयं चरेत् ।

यत्तु निगमवाक्यम्—

सन्ध्यायां च तथा रात्रौ दाहः पाथेयकर्म च ।

नवभादं च नो कुर्यात्कृतं निष्कलतां ब्रजेत् ॥ इति,

तादिनमृतस्याऽऽकस्यादिना रात्रिदाहनिषेधपरमिति । रा-

त्रिदाहेऽपरोऽपि विशेष उक्तः स्कन्दपुराणे—

यदि रात्रौ भवेत्तस्य समाप्तिर्दहनस्य च ।
 परेऽहन्युदिते सूर्ये कार्या तस्योदकक्रिया ॥
 दग्धस्य तु नवै कार्या रात्रौ जातूदकक्रिया ।

धर्मत्वबालोक्तेऽपि—

तिळोदकं पिण्डदानं नग्नप्रच्छादनं तथा ।
 रात्रौ न कुर्यात्सन्ध्यायां यदि कुर्यान्निरर्थकम् ॥

अथ दाहकालेऽग्निनाशे विशेषमाह यमः—

यजमाने चितारूढे पात्रन्यासं तथा कृते ।
 वर्षाद्यभिहते चाग्नौ ततः पृच्छामि याज्ञिकाः ॥
 शेषं दग्ध्वावदग्धेन निर्मन्थ्यं तत्र कारयेत् ।
 शेषालाभे तथा कुर्याद्दग्धशेषस्य वा पुनः ॥

अप्सु प्रास्यन्ति शेषं तमाग्नेयास्ताः स्मृता बुधैः ।

शेषमरणीप्रभृतिकाष्ठशेषं दग्ध्वा दग्धेनेवाग्न्युत्पादनसम-
 र्थेन निर्मन्थ्यं कृत्वाऽग्निमुत्पाद्य तेनाग्निना दहेत् । अरण्यादि-
 काष्ठशेषालाभे दग्धशेषकाष्ठस्य सम्बन्धी यो मथिताग्निस्तेन, त-
 स्यः स्यभावे अप्सु प्रक्षिपेदित्यर्थः । एवमनाहिताग्नेरपि, न्यायसां-
 भ्यात् । इयान् विशेषो यदरण्यभावान्मन्थाभाव इति मदनः ।

दाहश्च नग्नस्य न कार्यं इत्याह प्रचेताः—

नग्नदेहं दहेन्नैव किञ्चिदेयं परित्यजेत् ।

जटमल्लविलासे ब्रह्मपुराणमपि—

दरिद्रोऽपि न दग्धव्यो नग्नः कस्याश्चिदापि ।

केनापि बल्लखण्डेन छादनीयः प्रयत्नतः ॥

यत्र तत्र भवेद् दुःखी यदि नग्नस्तु दहते ॥

शवस्य चण्डालादिस्पर्शे प्राप्यश्चित्तमुक्तं धर्मप्रदीपे—

चण्डालसूतिकोक्क्यांस्पृष्टे मृते तथैव च ।

तस्य पापविशुद्ध्यर्थं कूर्च्छान्पञ्चदशाचरेत् ।

तथोर्ध्वदौहिकं कर्म नरैः कार्यं यथाविधि ॥

अथ दाहाद्यपवादः । तत्र मनुः—

ऊनद्विवार्षिकं भेतं निदध्युर्वान्धवा बहिः ।

अलङ्कृत्य शुचौ भूमावस्थिसञ्चयनाहते ॥

नास्य कार्योंऽग्नि संस्कारो नापि कार्योंदकक्रिया ।

अरण्ये काष्ठवत् त्यक्त्वा क्षपेयुस्त्वहमेव च ॥ (५।६८)

निदध्युर्निखनेयुः ।

ऊनद्विवार्षिकं भेतं घृताक्तं निखनेद् भुवि ।

यमगाथा गायमानो यमसूक्तमनुस्मरन् ॥

इति यमवचनात् । संन्यासिनामपि न दाहः ।

तदुक्तं द्विबोदासे ब्रह्मपुराणे—

त्रयाणामाश्रमाणां च कुर्याद्दाहादिकाः क्रियाः ।

यतेः किञ्चिन्न कर्तव्यं नवाऽन्येषां करोति सः ॥

ब्राह्मेऽपि—

सर्वसङ्गनिवृत्तस्य ध्यानयोगरतस्य वा ।

न तस्य दहनं कार्यं नाशौचं नोदकक्रिया ॥

महाभारतेऽपि—

न दग्धव्यो न दग्धव्यो विदुरोऽयं कादीचन ।

ज्ञानदग्धशरीरस्य पुनर्दाहो न विद्यते ॥

एतदेकदण्डिपरम् । त्रिदण्डिनां तु दाहो वक्ष्यते । पतिताना-

मपि न दाहः ।

तदुक्तं छाहरे ब्राह्मे—

पतितानां न दाहः स्यान्नान्येष्टिर्नास्थिसञ्चयः ।

न चाश्रुपातः पिण्डश्च कार्यं श्राद्धादिकं क्वचित् ॥

(परा० विद्वा० पृ० १३३)

आत्मघातिनामपि न दाहः । तदुक्तं मद्ने—

आत्मनस्स्याग्निनां नास्ति पतितानां तथा क्रिया ।

तेषामपि तथा गंगातोये संस्थापनं स्मृतम् ॥ (मि० २९८)

do the
under text
to be revised

nature
acc. to

con-
text
in
mats
in
vidya

आपस्तम्बोऽपि—

व्यापादयेदिहात्मानं स्वयं योऽन्युदकादिभिः ।

विहितं तस्य नाशौचं नाग्निर्नाप्युदकक्रिया ॥

मनुरपि—

वृथासङ्करजातानां मृतज्यासु च तिष्ठताम् ।

आत्मनस्त्यागिनां चैव निवर्तेतोदकक्रिया ॥ (५-८९)

विषोद्धन्धनशस्त्राद्यैरात्मानं यस्तु घातयेत् ।

मृतोऽमेध्येन लेप्यो नाऽन्यं संस्कारमर्हति ॥ (शु० च० १,०६)

इति पशुशरस्मरणं च । अमेध्येन मूत्रादिनोऽतिप्रसङ्गनि-
वृत्तये राज्ञा लेपनीय इत्याहुः । तदेतत्प्रायश्चित्ताकरणे । प्राय-
श्चित्तकरणे तु पतितात्मघातिनोरपि सम्बत्सरानन्तरं दाहादिकं
कर्तव्यमिति वक्ष्यते । तथाऽन्येषामपि—

याज्ञवल्क्यः—

पाखण्ड्यनाश्रिताः स्तेना भर्तृघ्न्यः कामगादिकाः ।

सुराप्य आत्मत्यागिन्यो नाशौचोदकभाजनाः ॥ (३६)

वेदबाह्यलिङ्गधारणं पाखण्डम् । अनाश्रिताः सत्यधिकारे
आश्रमरहिताः । स्तेना ब्राह्मणस्वर्णघ्यतिरिक्तस्य । सुराप्य
इत्यादिषु लिङ्गमविवाक्षितमुद्देश्यगतत्वादिति मिताक्षराख्याया ।
लाहरव्याख्या तु पाखण्डानाश्रिताः पाखण्डान् बौद्धादीनांश्रि-
तास्तदीक्षायां प्रविष्टा इति । तथा शास्त्रविहितमार्गेणोच्छ्रापूर्वकं
मृतानामपि न दाहः ।

तदुक्तमङ्गिरसा—

चण्डालादुदकात्सर्पाद्वैद्युताद् ब्राह्मणादपि ।

दंष्ट्रिभ्यश्च पशुभ्यश्च मरणं पापकर्मिणाम् ॥

उदकं पिण्डदानं च प्रेतेभ्यो यत्प्रदीयते ।

नोपतिष्ठति तत्सुवर्णान्तरिक्षे विनश्यति ॥

तथा लाहरेऽपि—

नाशौचं नोदकं नाशु न दाहाद्यन्त्यकर्म च ।

ब्रह्मदण्डहतानां च न कुर्यात्कटकधारणम् ॥

ब्रह्मदण्डो ब्रह्मशापः, कटकः शबरद्वया । विष्णुद्वालम्ब्यसंवादेऽपि-

ललाग्निमहिषीभिस्तु मृताश्चाम्बुचतुष्पदैः ।

पाषाणैः करभैः सिंहैः कुञ्जरैश्चित्रकैः श्वभिः ॥

विस्फोटैर्वृश्चिकैः सर्पैः कीटकैश्च मृताश्च ये ।

हत्यायुक्ता मृता ये च व्याघ्रैस्तु निहतास्तथा ॥

कण्ठपाशैर्मृता ये च ये च म्लेच्छैर्निपातिताः ।

आत्तघातकरा ये च कृमिभिस्तु मृता नराः ॥

चौरैस्तु निहता ये च विद्युत्पातेन ये मृताः ।

शृङ्गिभिर्निहता ये च ये च कारागृहे मृताः ॥

उत्पातेषु मृता ये च पञ्चकेषु मृताश्च ये ।

गर्भस्थानान्मृता ये च सर्वधर्मवहिष्कृताः ॥

नद्यां च पतिता ये च वाप्यां कूपतडागयोः ।

मलाशयेषु चाम्बेषु दुर्गाश्च पतिताश्च ये ॥

आश्रमात्पतिता ये च चण्डालाद्यैर्हताश्च ये ।

• शय्यायां च मृता ये च शूद्रसंसर्ग एव च ॥

भाषवीये ब्रह्मपुराणे—

चागानां विभियं कुर्वन् दग्धश्चाप्यथ विद्युता ।

निगृहीतः स्वयं राज्ञा चौर्यदोषेण कुत्रचित् ॥

परदारानुमन्तुश्च दोषात्पतिभिर्हताः ।

असमानैश्च सङ्कीर्णैश्चण्डालाद्यैश्च विग्रहम् ॥

कुत्वा तैर्निहतास्तांश्च चण्डालादीन् सपाश्रिताः ।

शस्त्राग्निगरदाश्चैव पाश्रण्डाः क्रूरबुद्धयः ॥

क्रोधात्पापं विषं वह्निं शस्त्रमुद्घबन्धनम् ।

गिरिवृक्षमपातं च ये कुर्वन्ति नसधमाः ॥

कुशिल्पजीविनो ये च सूनालङ्कारधारिणः ।

मुखेभगास्तु ये जीवाः क्लीबप्राया नपुंसकाः ॥

ब्रह्मदण्डहृता ये च येऽध्वा ब्राह्मणर्हताः ।

महापातकिनो ये च पतितास्ते प्रकीर्तिताः ॥

पराशरोऽपि—

ब्रह्मदण्डाभियुक्तानां तेषां स्यान्नाग्निसंस्क्रिया ।

•श्राद्धादिसत्क्रियाभाजो न भवन्वीह ते क्वचित् ॥

शङ्कोऽपि—

भृग्वग्न्यानाशकाभोभिर्मृतानामात्मघालिभाम् ।

न पिण्डं तस्य नाशाचं शस्त्रविशुद्धताश्च ये ॥

आहिताग्नेरप्येवाविधमरणेऽग्न्यादीनां प्रतिपत्तिः

स्मृत्यन्तरे—

वैतानं प्राक्षिपेदप्सु आवसथ्यं चतुष्पथे ।

पाशाणि तु दहेद्गमौ यजमाने वृथा मृते ॥

वृथामृतः अविहितमार्गेण मृतः । सचायं दाहादिक्रियानिषेधो
बुद्धिपूर्वकमरणे ।

तदाह गौतमः—

“गोब्राह्मणहतानामन्वक्षं राजक्रोधाच्चायुधिप्रायोनाशकशस्त्रा-
ग्निविषोदकोद्ग्रन्धनप्रपतनैश्चेच्छताम्” इति । प्रायो महाप्रस्थानम् ,
अनाशकम् अनशनम् , प्रपतनम् भृगुपतनम् , एतैश्च बु-
द्धिपूर्वं मृतानाम् । तथा दर्पादिना चण्डालादिनिग्रहं कुर्वन्-
स्तैर्हतस्तस्य, तथा दुष्टदंष्ट्र्यादीन्ग्रहीतुमाभिमुख्येन गच्छतो रा-
ज्ञश्च प्रतिकूलमाचरतो बाहुभ्यां नदीं तरतश्च मरणे । एवं सर्व-
श्रानुसन्धेयम् । एवं व्याख्यामूलं च प्रागुदाहृतब्रह्मपुराणव-
चनमेवेति । एषामौर्ध्वदेहिकादिकर्तुः प्रायश्चित्तं मदनपारिजाते—

कृत्वाऽग्निमुदकं स्नानं स्पर्शनं वाहनं कथाम् ।

रज्जुच्छेदाश्रुपातं च तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यति ॥

एतच्च बुद्धिपूर्वे । अबुद्धिपूर्वके तु संवर्तः—

एषामन्यतमं प्रेतं यो बहेरु दहेत वा ।

कटोदकाकियां कृत्वा कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ॥

तथा पतितौर्ध्वदेहिकेऽपि प्रायश्चित्तं ब्रह्मपुराणे—

एतामि पतितानां तु यः करोति विमोहितः ।

तप्तकृच्छ्रद्वयेनैव तस्य शुद्धिर्नचान्पया ॥ इति ।

एवमात्मघातिप्रभृतीनां दाहादौ निषिद्धे तदौर्ध्वदेहिकं कथं
कार्यमित्यपेक्षायां षट्त्रिंशन्मते—

गोब्राह्मणहतानां च पतितानां तथैव च ।

ऊर्ध्वं सम्बत्सरात् कुर्यात्सर्वमवौर्ध्वदेहिकम् ॥

अत्रापरे विशेषमाह पराशरः—

चण्डालेन श्वपाकेन गोभिर्विप्रैर्हतो यदि ।

आहिताग्निर्मृतो विप्रो विशेषेणारमघातकः ॥

दहेत्तं ब्राह्मणं विप्रो लोकाग्नौ मन्त्रवर्जितम् ।

दग्ध्वाऽस्थानि धुनर्गृह्य क्षीरेण क्षालयेत्ततः ॥

स्वेनाग्निना स्वमन्त्रेण पृथगेत्स्पुनर्दहेत् ।

तदेतन्मारायणबलिं कृत्वा कार्यमिति वृद्धयाज्ञवल्क्यज्जाग-
लेयावुचतुः—

नारायणबलिः कार्यो लोकगर्हाभयान्नरैः ।

तथा तेषां भवेच्छौचं नान्यथेत्पञ्चवीथयः ॥

तथा दिवोदासे—

पूर्णे सम्बत्सरे तेषामथ कार्या दयालुभिः ।

आषाढ्यैकादशीं शुक्रां नारायणबलिक्रिया ॥

आषाढ्यैकादशीं प्राप्येत्यर्थः ।

विष्णुदासभ्यसम्वादेऽपि पूर्वोक्तान् जलाग्नीत्याद्यपमृत्यून-
भिधायोक्तम्—

एतेषां पापमृत्यूनां कुर्यान्मारायणक्रियाम् ।

व्यासोऽपि—

नारायणं, समुद्दिश्य शिकं वा यत्प्रदीयते ।

तस्य शुद्धिकरं कर्म तद्भवेन्न तदन्यथा ॥

तदयं निर्गलितोऽर्थः—सर्वेषामेव दुर्मृतानामविशेषेण दाहादौ निषिद्धे लौकिकाग्निना येन केनेचिदाहयित्वाऽस्थीनि च क्षीरेण क्षालयित्वा क्वचित्पुण्यप्रदेशे निखाय सम्बत्सरानन्तरं श्राद्धे सम्प्रदानत्वं योग्यतार्थं नारायणवर्णिं कृत्वा वक्ष्यमाणं, प्रायाश्चित्तं च कृत्वा सर्वमौर्ध्वदेहिकं कार्यमिति ॥

तदाह त्रिकाण्डमण्डनः—

अस्थीनि यस्याविकृतानि म्रन्ति यावन्ति देहस्य परिस्फुटानि ।

मूर्द्धादिपादान्तशरीरवल्गुं तैरेव कुर्यात्पुनरग्निदाहे ॥

क्षीरेण संक्षाल्य तथोदकेन गङ्गादितीर्थस्य सहस्रकुम्भैः ।

पञ्चामृतैः पञ्चगव्यैश्च युक्तैः स्नानं च कुर्युः पुरुषादिसूक्तैः ॥

एवंविधं चेत्कृतमस्ति कर्म स याति यस्यास्थि पदं च विष्णोः ।

छिन्नानि भिन्नानि परिस्फुटानि भस्मानि चाऽस्थीनि पुनः प्रयोगे ॥

यो वै समाहृत्य परेतकर्म कुर्वन्विपश्चिद्विपदं प्रयाति ।

भस्मानि भक्ष्यभूतानि । पुनःप्रयोगे पुनः संस्कारे । विपदं नरकमिति यावत् ।

कथं हि दाहे करणीयमस्य समित्तु पाळाशतरुज्जवांसु ।

कृत्वा स्वशाखोक्तशरीरवल्गुं प्राणप्रतिष्ठां च विधाथ पश्चात् ॥

कुर्यात्परेतस्य शरीरशुद्धिं ततो विदध्यात्पुनरग्निदाहम् ।

यथा कथाञ्चिदस्थिनाशे पाळार्शां तनुं कुर्यादिसर्थः ॥

तदुक्तं ब्राह्म—

सम्बत्सरान्ते पाळाशपत्रवृन्तादिनिर्मितम् ।

तद्गात्रमग्नौ सन्दद्य शेषं कर्म समाचरेत् ॥ इति ।

तत्र दुर्मरणे प्रीयश्चित्तमाह विंशवादर्शः—

‘वण्डाकार्यैर्हतोवाऽप्ययुचिर्गमि मृतश्चान्द्रकृष्णातिष्ठत्येः

शुद्धः सप्तान्यजैर्वा' इति ।

अस्यार्थः—चाण्डालोदकसर्पवैद्युतब्राह्मणैः सप्तान्यजैर्वा
रजकचर्मकारनटबुरुडकैर्वत मेदामिलैर्हतः यश्च खट्वादी वा अ-
शुचिर्द्युतः सहि पुत्रादिकृतचान्द्रकृच्छ्रातिकृच्छ्रैः शुद्धो भवती-
त्यर्थः । धर्मप्रदीपेऽपि—चण्डालादुदकादित्युपक्रम्य नारायणवक्ति
कृत्स्वस्यभिधाय—

तेषां पापविशुद्ध्यर्थं कृच्छ्रान् पञ्चदशाचरेत् ।

इत्युक्तम् । आश्वलायनशृङ्गापरिशिष्टेऽपि चाण्डालादिहता-
नुपक्रम्य—

दग्ध्वा शरीरं प्रेतस्य संस्थाप्यास्थीनि यत्नतः।

प्रायश्चित्तं तु कर्तव्यं पुत्रैश्चान्द्रायणत्रयम् ॥

इत्युक्तम् । स्मृत्यन्तरेऽपि—

चाण्डालादिहते विप्रे त्वन्तरिक्षे मृतेऽपि वा ।

कृच्छ्रातिकृच्छ्रचान्द्रैस्तु शुद्धिस्तत्र प्रकीर्तिता ॥ इति ।

खट्वामरणे प्रायश्चित्तं धर्मप्रदीपे—

ऊर्ध्वोच्छिष्ट अधोच्छिष्टे खट्वादी मरणे तथा ।

कृच्छ्रत्रयं प्रकुर्वीत आशौचमरणेऽपि च ॥ इति ।

तथाऽन्तरिक्षमरणेऽपि प्रायश्चित्तं धर्मतन्त्रालोके—

ऊर्ध्वोच्छिष्टमधोच्छिष्टमन्तरिक्षे मृतिर्यदा ।

कृच्छ्रत्रयं प्रकुर्वीत आशौचमरणेऽपि च ॥ इति ।

आत्मघातप्रायश्चित्तन्तु तत्तद्गर्हननविहितमेव । सामान्य-
तस्तु चान्द्रायणद्वयं तप्तकृच्छ्रचतुष्कं च । अथवा त्रिशक्तृच्छ्रा-
णीति स्मृतिसारः ।

तदुक्तं विष्णुदालभ्यसम्वादे—

प्रायश्चित्तं ततः कुर्याद् दृष्टं चान्द्रायणं तु वा ।

सहान्ति चात्र दानानि धेन्वादीन्पष्टदापयेद् ॥

यस्मिन्पापे यत्प्रायश्चित्तमुक्तं तद् दृष्टम् । अनुक्तप्रायश्चित्तेषु चान्द्रायणमिति । एवं पतितानामपि मरणानन्तरं शरीरं गङ्गा-दिपुण्यनदीतोये सम्बत्सरं यावत्संस्थाप्य वर्षानन्तरं तत्तत्पापेषु विहितं सामान्यतोविहितं च प्रायश्चित्तं कृत्वा नारायणवक्तिं विधाय सर्वमौर्ध्वदेहिकं पुत्रादिः कुर्यादिति ।

*पतितशरीरं गङ्गादितोये संस्थाप्यमित्युक्तं—

मदने—

आत्ममस्त्यागिनां नास्ति पतितानां तथा क्रिया ।

तेषामपि तथा गङ्गातोये संस्थापनं स्मृतम् ॥ (मि०पृ०२९८)

गङ्गेति पुण्यनद्युपलक्षणम् । वर्षानन्तरं कार्यमित्युक्तं षट्त्रिंशत्समये—

गोब्राह्मणहतानां च पतितानां तथैव च ।

ऊर्ध्वं सम्बत्सरात्कुर्यात्सर्वमौर्ध्वदेहिकम् ॥ इति ।

‘नारायणवक्तिः कार्य’इत्युक्तं विष्णुदालभ्यसम्बन्धे । जलाग्नी-
त्याद्यपमृत्यूनपक्रम्य—

इत्यायुक्ता मृता ये च व्याघ्रैस्तु निहतास्तथा ।

इति मध्येऽभिधाय—

एतेषां पापमृत्यूनां कुर्यान्नारायणक्रियाम् ।

इत्युपमंहारात् । हत्येति पातित्यहेतूपलक्षणम् । साधारणं प्रायश्चित्तं कृत्वा कार्यमित्युक्तं दिवोदासे शातातप्रेन—

पतिते च मृते शुद्धौ प्राजापत्यानि षोडश ।

मृते चापत्यरहिते कृच्छ्राणां नवर्ति चरेत् ॥

• एवं कृते विधाने तु प्रकुर्यादौर्ध्वदेहिकम् ॥

इति । (नि.सि. पृ. १२२०)

एतदेव साधारणं प्रायश्चित्तं, पातित्यमात्रपुरस्कारेण प्रवृत्त-
त्वात् । असाधारणं तु तत्तत्पापेषु प्रतिपदोक्तमेव । तदत्रासाधार-
णेन साधारणं समुचीयत इति । तदेतत्सर्वमभिःसन्धाय व्यति-

रेकमुत्सेनाह स्मृत्यर्थसारः—“ब्राह्मणादिहतानां पतितानां च प्राय-
श्चित्तकरणे” इति । सपिण्डीकरणं नास्तीत्यग्रतेनैव सम्बन्धः ।

अत एव माघबीये ब्रह्मपुराणेऽपि—

क्रियते पतितानां तु गते सम्बत्सरे क्वचित् ।

देशधर्मप्रमाणत्वाद्गयाक्षूपेषु बन्धुभिः ॥

मातृशुभ्रपादमूले च श्राद्धे हरिहरं स्मरन् ।

इति वर्षानन्तरं गयाश्राद्धं विहितम् ।

अन्नेषु पतितानामपि श्राद्धादौ क्रियमाणे—

(२०) पतितानां न दाहःस्यान्नान्द्येष्टिर्नास्थिसञ्चयः ।

न चाश्रुपातः पिण्डश्च कार्यं श्राद्धादिकं क्वचित् ॥

एतानि पतितानां तु यः करोति विमोहितः ।

तप्तकुच्छुद्ध्यनेव तस्य शुद्धिर्नचान्यथा ॥

इति ब्रह्मपुराणवचनविरोधः स्यादिति चेत् ? मैवम् । त-
स्यान्वार्थपरत्वात् । तथाहि यस्त्वौद्धत्यादिना महापातकादिपत-
नीयप्रायश्चित्तान्यकुर्वन्—

दासीघटमपां पूर्णं पर्यस्येत्प्रेतवत्सदा ।

अहोरात्रमुपासीरन्नाशौचं बान्धवैः सह ॥

इत्यादिमनुयाहवल्कपोक्तविधिना पुत्रादिभिर्निरुदकीक-
रंस्तथा—“तस्य विद्यागुरुयोनिस्सम्बन्धाश्च सन्निपात्य सर्वाण्यु-
दकादिप्रेतकार्याणि कुर्युः” इत्यादिगौतमादिवाक्यविहितपुत्रा-
दिकृतप्रेतकार्येणैव तस्य मरणे दाहान्त्येष्टिसञ्चयनाश्रुपातपिण्डदा-
नश्राद्धानि पुत्रादिर्न कुर्यात् । यतो जीवमेव तस्मिन्मौद्धेदेहिकस्य
कृतत्वात्पुनः करणम युक्तम् । अत एव तथाविधसम्भाषणादौ प्राय-
श्चित्तविधानमपीति युक्तमेवेदं सर्वम् । यस्तु पुनः प्रमादादिना महा-
पातकादिपतनीयकर्माभिभूतस्तत्तत्पापेषु प्रायश्चित्तं चिकीर्षन्-
नुतिष्ठन्वा घृतस्तस्य सम्बत्सरानन्तरं तत्तत्पापानुसारेण नाराय-
णवक्रिपूर्वकं प्रायश्चित्तं कृत्वाऽस्थिपर्णशरयोर्व्यासम्भवं दाहं

विधाय सर्वमौर्ध्वदेहिकं पुत्रादिः कुर्यादिति । तदेतत्सर्वं दिवोदा-
सचन्द्रप्रकाशाभ्यां प्रमादात् म्लेच्छादित्वं गतस्य गयाकूपे पिण्डदाने-
न शुद्धिः स्यादिति माण्डव्यमतमुपन्यस्य तन्मते द्वादशाब्दिक-
प्रायश्चित्तपूर्वकं नारायणबलिना पर्णशरदाहं कृत्वौर्ध्वदेहिकं पुत्रा-
दिः कुर्यादिति विवेचितम् । तथाऽग्रेपि पुनर्महापाताकिनः प्राय-
श्चित्तमाचरतो मृतस्य दाहशौचादिकं सर्वं कर्तव्यम् ।

पतितोऽपि च यः कुर्वन्विशुद्धिं मरणान्तकम् ।

तस्याशौचादि कर्तव्यं प्रेतकार्यं यथाविधि ॥

इति स्मृतेरिति । मरणान्तिकं प्राप्त इत्यर्थे इति स्वयमेवाभिहि-
तम् । एवं प्रायश्चित्तार्थमरणोऽपि ।

तदाह गौतमः—“यस्य प्राणान्तिकं प्रायश्चित्तं स मृतः शु-
द्धोऽसर्वाण्येवैतस्मिन्नुदकादीनि प्रेतकार्याणि कुर्युः” इति । तथा
राज्ञा पापविशेषे ताहनरूपे दण्डे क्रियमाणे मृतस्यापि । तथाच
ब्रह्मपुराणम्—

राजिभिः कृतदण्डास्तु कृत्वा पापानि मानवाः ।

*Punishment
penitence*

निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा ॥

अथवा पतितानां संवत्सरादूर्ध्वमौर्ध्वदेहिकविधानादर्वागौ-
र्ध्वदेहिकनिषेधपरमिदं वचनजातमिति सिद्धं पतितस्यापि
श्राद्धादिकमिति ।

नन्वेवं—

ब्राह्मणादिहते ताते पतिते सङ्गवर्जिते ।

शुक्लमाद्य मृते देयं येभ्य एव ददात्यसौ ॥

तथा—

वृद्धौ तीर्थे च संन्यस्ते ताते च पतिते सति ।

येभ्य एव पिता दद्यात्तेभ्यो दद्यात्स्वयं सुतः ॥

इत्यादिवचनैः पतिते पितरि पितामहस्यैव श्राद्धं विहितं,
तथादिः पतितस्यापि और्ध्वदेहिकं क्रियेत तर्हि तत्रोपपद्यते ।

तमुत्सृज्य पितामहश्राद्धादिकरणे कारणाभावादिति चेत् ? सं-
स्यस्, तथादि यथाश्रुतेमेव गृह्यते तदाऽनेकवचनविरोधः स्यात् ।
तथाहि—ब्राह्मणादिहते० पतिते च पितरि पितामहस्यैव आहुं
कार्यं न पितुरित्युच्यमाने—

ब्राह्मणादिहतानां च पतितानां तथैव च ।

ऊर्ध्वं संवत्सरात्कुर्यात्सर्वमेवौर्ध्वदेहिकम् ॥

इति वाक्येनौर्ध्वदेहिकादिविधानं, नोपपद्येत । किञ्च पतिते
पितरि—

माता म्लेच्छत्वमापन्ना पिता वाऽपि कथञ्चन ।

इत्युपक्रम्य—

पितरं विष्णुमुच्चार्य तद्दुर्द्धं च पितामहम् ।

इत्यादिप्रथमस्तबकोदाहृतदेवत्ववचनेन तन्नामोच्चारणस्थाने
विष्णुनामोच्चारणमात्रविधानादस्त्वैव तस्यापि श्राद्धमिति यद्गम्यते
तदसङ्गतं स्यात् । तथा संन्यस्तेत्यप्यसङ्गतं स्यात् ।

संन्यासिनोऽप्याब्दिकादि पुत्रः कुर्याद्यथाविधि ।

इत्यादिवचनविरोधात् । तथैव व्युत्क्रममृतेत्यपि, “यस्य
पिता भ्रंतः स्यात्स पित्रे पिण्डं निधाय पितामूहात्परं द्वाभ्यां द-
द्यात्” इति विष्णुवचनविरोधात् । एतेन जीवति मृते चैतत्समा-
नमेवेति मूर्खप्रकृतपितमपास्तम् ।

तस्मादेतदेवं व्याख्येयम्—ब्राह्मणादिहते पितरि संवत्सरा-
नन्तरमौर्ध्वदेहिकविधानादन्तरा पितामहश्राद्धस्य तावत्कारणं लोप-
प्रसङ्गात्पौत्रेण तदधिकारप्राप्तं स्वयं कर्तव्यमेवेत्यनेनोपदिश्यते ।
अथवा • पूर्वोक्तानेकवचनविरोधः स्यात् । विकल्पस्य चाष्टदोषदुष्ट-
त्वात् । तथा पतिते संन्यस्ते च जीवति तदधिकारप्राप्तं कार्यं,
मृते तु तस्यापि । व्युत्क्रममृते इतिस्वेवं व्याख्येयम्—पितामहे जी-
वति पितरि च मृते प्रपितामहाय दद्यात् येष्य एव पिता दद्यात्

इतिवचनेन मृतस्य पितुर्जावत्पितृकत्वेन प्रपितामहस्यैव देवदत्त-
पितृकर्तृकश्राद्धे देवत्वात् । तेन न्येभ्य एवेत्यवैरूप्येण घटते न अन्ये
तु पितृशब्दः क्वचिस्त्वपितृपरः क्वचिच्च पितृपरइत्याहुः । तन्न,
वैरूप्यादेवेति । तदत्र—

व्युत्क्रमाच्च प्रमीतानां नैव कार्या सपिण्डता ।

इति वचनविहितसपिण्डीकरणपक्षमभिप्रेत्य प्रपितामह-
श्राद्धविधानमिति सर्वमनवद्यम् । एवं ब्राह्मणाद्विहितस्य संन्यस्तस्य
व्युत्क्रममृतस्य च श्राद्धाद्यङ्गीकुर्वतां पतितमात्रस्यैव श्राद्धं प्रद्विषतां
पूर्वोदाहृतवचननिचयविरोधश्चापहरतां कीदृशोऽयं धर्मशास्त्रज्ञाना-
भिमान इति न विवृम् । तस्मात्संवत्सरान्ते सर्वेषामौर्ध्वदेहिकं का-
र्यमिति सिद्धम् । स्मृतिसारे संवत्सरादर्वागपि तत्तत्पापानुसारेण
द्विगुणादिकं प्रायश्चित्तं विधाय नारायणकालं च कृत्वौर्ध्वदेहिकं
कार्यम्, आयुषः अनित्यत्वेन संवत्सरानन्तरमौर्ध्वदेहिकलोपप्र-
सङ्गादित्युक्तम् । अभ्युपगतञ्चैतन्मदनेनापि । संवत्सरादर्वाकरणपक्षे
विशेषश्च विष्णुदालभ्यसंवादे—

षष्ठे मासि द्विजातेश्च तृतीये क्षत्रियस्य च ।

मासान्ते चैव वैश्यस्य सद्यः स्त्रीशूद्रयोर्मता ॥

मासान्ते वाऽपि सर्वेषां कुर्यान्नारायणक्रियाम् । इति ।

अथ यः प्रमादात्पूर्वोक्तनिमित्तैर्विपद्यते विद्यत एव तस्य क्रि-
यादिकमित्याहाऽङ्गिराः—

अथ कश्चित्प्रमादेन म्रियेताऽप्युदकादिभिः ।

तस्याशौचं विधातव्यं कर्तव्या चोदकक्रिया ॥

सुमन्तुरपि—“भृग्बभ्रिजलसङ्गामदेशान्तरस्यसंन्यासानश्चन-
महाध्वनिकानामुदकक्रिया कार्या सद्यः शौचं भवति” इति । मा-
धवीये ब्रह्मपुराणेऽपि—

प्रमादादपि निःशङ्कस्त्वकस्माद्विधेचोदितः ।

शृङ्गिदंष्ट्रिनखिष्वालाविषविद्युज्जलादिभिः ॥

चण्डालैरथवा चौरैर्निहतो यत्र कुत्रचित् ।

तस्य दाहादिकं कार्यं यस्मान्न पतितस्तु सः ॥ इति ।

अथ ये विहितोपायेन मृतास्तेषां दाहाशौचाद्यभावो नारामण-
बलिर्कर्म नास्ति, किन्तु यद्योपादेष्टमेव । तथाचादिपुराणे—

दुष्चिकित्स्यैर्महारोगैः पीडितस्तु पुमानपि ।

प्रविशेच्छुक्लनं दीप्तं कुर्यादनशनं तथा ॥

अगाधतोर्यराशिं वा भृगोः पतनमेव च ।

गच्छेन्महापथं वाऽपि तुषारगिरिमादरात् ॥

प्रयागवटशाखायां देहत्यागं कर्तौति वा ।

स्वयं देहविनाशस्य प्राप्ते काले महामतिः ॥

उत्तमान् प्राप्नुवाल्लोकानात्मघाती भवेत्स्वचित् ।

महापापक्षयात्स्वर्गे दिव्यान्भोगानवाप्नुयात् ॥

एतेषामधिकारस्तु सर्वेषां सर्वजन्तुषु ।

नराणामथ नारीणां सर्वकालेषु सर्वदा ॥

ईदृशं मृतकं येषां जीवानां कुत्रचिद्भवेत् ।

आशौचं स्यात् उपहं तेषां वज्रानलहतेषु च ॥

वाराणस्यां त्रिप्रेथस्तु प्रत्याख्यातभिषाविक्रयः ।

काष्ठपाषाणमध्यस्थो जाह्नवीजलमध्यगः ॥

अविभुक्तोन्मुखस्तस्य कर्णमूलगतो हरः ।

प्रणवं तारकं व्रते नान्यथा कस्यचित्कचित् ॥

विषस्नानं—

सर्वेन्द्रियविमुक्तस्य स्वव्यापाराक्षमस्य च ।

प्रायश्चित्तमनुज्ञातमग्निपातो महापथः ॥

धर्मार्जनासमर्थस्य कर्तुः पापाङ्कितस्य च ।

ब्राह्मणस्याप्यनुज्ञातं तीर्थे प्राणविमोक्षणम् ।

इच्छन्ति जीवितं देवा धर्मार्थं तु द्विजातिषु ।

अधर्मजीविनस्तीर्थे देहभ्यागो विधीयते ॥

धर्मार्जनासमर्थस्य द्वादशवार्षिकादिभ्यश्चिन्तासमर्थइयेति मद्-
नः । ब्रह्मगर्भः—

योऽनुष्ठातुमशक्तोऽपि मोहाद्व्याध्युपपीडितः ।

सोऽग्निवारिमहायात्रां कुर्वन्नोऽमुत्र कुप्यति ॥

सर्वेन्द्रियविरक्तस्य वृद्धस्य मृतकर्मणः ।

व्याधितस्य स्मृतं तीर्थे मरणं तपसोऽधिकम् ॥

वृद्धगार्ग्यः—

महाप्रस्थानगमनं क्षुल्लनाम्बुप्रवेशनम् ।

भृगुप्रपतनं चैव वृथा नेच्छेत्तु जीवितम् ॥

एतल्लुप्तचेष्टानां गृहस्थावस्थायामपीति लाहरः ।

मनुशातातपो—

वृद्धः शौचस्मृतेर्लुप्तः प्रत्याख्यातभिषक्क्रियः ।

आत्मानं घातयेद्यस्तु भृगवग्न्यनशूनाम्बुभिः ॥

तस्य त्रिरात्रमाशौचं द्वितीये त्वस्थिसञ्चयः ।

तृतीये तृदकं कृत्वा चतुर्थे श्राद्धमाचरेत् ॥

बसिष्ठोऽपि फलमुत्तेनाह—

भृगुप्रपतनाद्राज्यं नाकपृष्ठमनाशकात् । इति ॥

व्यासोऽपि—

जले सप्त सहस्राणि चतुर्दश हुताशने ।

अनाशकस्य राजेन्द्र फले संख्या न विद्यते ॥

तथा ब्रह्मपुराणेऽपि—

अपराजितामास्थाय ब्रजेद्विशमजिह्वागः ।

आनिपाताञ्चरीरस्य युक्तो वार्यनिकाशनः ॥

आसां महर्षिचर्षाणां त्यक्त्वाऽन्यतमया तनुम् ।

वीतशोकर्षयो विप्रो ब्रह्मभूयान्न कल्पते ॥.

वशाभारते—

तथाः सहस्राणि च सप्त वै जले दशैकमशौ पतन्ते च षोडश ।

श्रावणे षष्टिरशीतिगोश्रे अनाशने भरत चाक्षया गतिः ॥

अनशनविधिना मरणं भरणं विमजनस्य च ।

• मुक्तेः करणं त्रिविधं स्मरणं हरिहरचरणयुगलस्य ॥

५

अथ विहितभरणप्रसङ्गादन्वारोहणं निरूप्यते ।

तत्र हारीतः—

मृते भर्तारिं या नारी समारोहेद् हुताशनम् ।

साऽरुन्धतीसमाचारा स्वर्गलोके महीयते ॥

मातृकं पैतृकं चाऽपि यत्र चैवं मदीयते ।

कुलत्रयं पुनात्येषा भर्तारं वाऽनुगच्छति ॥

शुक्लाक्षिरसावपि—

तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च यानि लोमानि मानुषे ।

तावत्कालं वसेत्स्वर्गे भर्तारं याऽनुगच्छति ॥

व्यालग्राही यथा व्यालं बिलादुद्धरते बलात् ।

तद्गुदुघृत्य सा नारी सह तेनैव मोदते ॥

तत्र सा भर्तृपरमा स्तूयमानाऽप्सरोगणैः ।

क्रीडते पतिना सार्द्धं यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥

तथा—

ब्रह्मघ्नो वा कुतघ्नो वा मित्रघ्नो वा भवेत्पतिः ।

पुनात्यविधवा नारी तमादाय मृता तु या ॥

तथा—

आर्ताऽऽर्ते मुदिते हृष्टा मोषिते मलिना कृशा ।

मृते श्रियेत या पत्यौ साऽस्त्री ज्ञेया पतिव्रता ॥

यावत्प्राग्भूतेऽप्यमौ स्त्रीसुखं तं यदाहमेतः ॥८

॥ वाक्यं कृतं नैः सुखं तं तदाहमेतः ॥९॥

व्रतोपमा कनिष्ठाः न मेऽहं न मेऽहं न मेऽहं ॥१०॥

स्मृत्यर्थसारेऽपि—तच्चान्वारोहणं गर्भिण्यानिषिद्धम् । ब्राह्म-
णगर्भिण्या ब्रह्महत्यासमम् , क्षत्रियादिगर्भिण्याः क्षत्रियादिवध-
एवेति । अथ कथंचिदिन्वारूढा ब्रह्मचर्येण वा तिष्ठेदित्युक्तं वि-
ष्णुना—भर्तरि प्रेते ब्रह्मचर्यं तदन्वारोहणं चेति । कामाकामाभ्यां
व्यवस्थितो विकल्प इत्यपराकैः । अन्वारोहणे तु महानभ्युदय
इति मीताक्षरा । अन्ये तु तपस एव मुख्यत्वं, विष्णुना प्रथमोप-
दानादित्याहुः । वस्तुतस्तु—

यावन्नाग्रे मृते पत्नी स्त्री नात्मानं प्रदाहयेत् । १०

तावन्न मुच्यते सा हि स्त्रीक्षरीरात्कथञ्चन ॥ ११

इत्यादिवचनादन्वारोहणस्यैव मुख्यत्वं प्रतिभाति ॥ १२

अथ रजस्वलाया अपि सहगमनविधिः । १३

तत्र स्मृतिरहस्यवाक्यानि— १४

यदा स्त्रियामुदक्यायां पतिः प्राणान्परिस्पृजेत् ।

द्रोणमेकं तण्डुलानामवहन्पाद्विशुद्धये ॥

द्रोणप्रमाणं तु—

पलद्वयं तु प्रसृतिर्द्विगुणं कुडवं स्मृतम् । १५

चतुर्भिः कुडवैः प्रस्थः प्रस्थाश्चत्वार आढकः ॥ १६

चतुर्भिराढकैर्द्रोण एतद्द्रोणस्य लक्षणम् । १७

मुसलाभिघातैस्तदसृक् स्रवते योनिमण्डलात् ॥

विरजस्का मन्यमाना स्वे चित्ते तदसृक्क्षयम् । १८

दृष्ट्वाशावं प्रकुर्वीत पञ्चमृचिकया पृथक् ॥

त्रिंशद्विंशद्विंशपञ्च गवां दत्त्वा स्वहःक्रमात् ।

विप्राणां वचनं लब्ध्वा समारोहेवृधुताशनम् ॥ १९

नारीणां सरजस्कानामियं शुद्धिरुदाहृता ॥ इति ।

रजस्वलाऽप्येतदुक्तप्रार्थयित्वा सती तदैव समारो-
हणं कुर्यात् । स्वर्गसोपानपद्धतौ तु विशेषः प्रथमकूपेणभिहितः ।

रोहणं कार्यम् । तदेतत्स्पष्टमाचष्ट स्मृत्यर्थसारः—ब्राह्मण्या एक-
चिन्नाहोहणमेव न पृथक्चित्यारोहणं कार्यम् । सवर्णायाः पत्या
सहैकचित्यारोहणमसवर्णायाः पृथक् चित्यारोहणमेव इति । अतः
सत्रियादिस्त्रीणां पृथगपृथग्वेत्यनियतमिति मिताक्षरास्वरसः ॥

अथ सहगमनेति कर्तव्यता स्मृत्यर्थसारे—अन्वारोह-
णं करिष्यामीतिसङ्कल्प्य पतिंश्रमस्कृत्य चितिमारुह्य सर्वप्रयोगं
कारयेत् । यद्वा सङ्कल्प्य प्रयोगे कृते दहमाने भर्तारं तं नत्वाऽग्निं
प्रविशेदिति ।

अथ देशान्तरमृते पत्यौ तच्छरीराळाभे तदस्थिभिः
पर्णशरेण वा सहगमनमस्तीत्युक्तं दिवोदासे भरद्वाजेन—

पृथक्चित्तिं मृते पत्यौ न विप्रा गन्तुमर्हति ।

साऽप्यनुम्रियते पर्णशरदाहे तथाऽस्थिभिः ॥ इति ।

भर्तृशरीराळाभे तदस्थिभिः सह तत्संस्कारार्थं क्रियमाणेन
कुशपुत्रकेण वा सहाग्निं कालान्तरेऽपि ब्राह्मणीं प्रविशेद्यदि भर्तृ-
शरीरं पृथक्चित्तिसंस्कृतं न स्यादिति । अभ्युपगतं चैतत्पारि-
जातेनापि—देशान्तरमृते पत्यौ ब्राह्मण्यास्तदस्थिभिस्सह गमनं भव-
त्येव'इति । तेनास्थिपर्णशराद्यभावे न विप्रा गन्तुमर्हति इति पूर्वा-
र्द्धार्थो युक्त एव । इतरासां तु अस्थ्याद्यभावेऽपि पादुकादिभर्तृचिह्ने-
नापि सह भवतीत्युक्तं पारिजातेन । तन्मूलं तु दिवोदासेन ब्रह्म-
पुराणमाविष्कृतम्—

देशान्तरमृते पत्यौ साध्वी तत्पादुकाद्वयम् ।

निधायोरसि संशुद्धा प्रविशेज्जातवेदसम् ॥ इति ।

एवञ्च स्नेहसम्बन्धिनीनां भृत्यानां च पृथक्चित्तिमृतिरेव,
जारेण सह या काचिदनुयाति'हुताशनम् ।

न साऽऽत्मानं न भर्तारं तारयेत्पापभाग्धि सा ॥

इति दिवोदासे स्मृत्यन्तरे निषेधात् । स चाऽयं 'स्त्रीणा-
मग्निनीनामवाळापत्यानामाचाण्डालं साधारणो धर्म' इति मिता-

सरा । तन्मूलं च दिवादासे स्मृत्यन्तरम्—

अथ संघातस्मृते विशेषः । *Sumu aban w
death's*

स्मृत्यर्थसारे—

स्त्रीपुरुषमेरेण एकस्मिन्दहनकाले प्राप्ते सवर्णानां समानधर्माणां पश्चा सह दहनं कृत्वा उदकापिण्डादिकं पतिपूर्वं कृत्वा पश्चात्सापिण्डं कार्यम् । असवर्णानां समानधर्माणां पत्नीनां सह दहनम्, उदकापिण्डादिकं च ज्येष्ठपूर्वं पृथगेव, पितापुत्रयोः समानधर्मयोः कपालाग्निना दाहयोर्दाहः सहैव कार्यः, उदकादिकं पितृपूर्वं पृथगेवेति । भ्रातृणामसनर्णानां समानधर्माणां कपालाग्निना दाहानां पृथक् सह वा दाहः, उदकादिकं ज्येष्ठपूर्वं पृथगेवेति ॥

अथ त्रिदण्डिसंस्कारः ।

तत्र बौधादनः—

कर्मनिष्ठे तु संन्यस्ते पितर्युपरते सुतः ।

दहनं तस्य कर्त्तव्यं यच्चान्यच्छेषसंज्ञितम् ॥

शुद्धिगूढे बौधायनः—

अथ परिव्राजकस्य संस्कारविधिं व्याख्यास्यामः—अनीहिताग्निवत्सर्वमस्य कुर्यात्संस्कारवैगुण्ये पुनः शरीरग्रहणं प्राप्नोत्यतः स्वस्थावस्थो भिक्षुः पूर्वं प्रतिपादयेच्छिष्येभ्योऽन्यस्मैवा, ते संस्कारं कुर्युः, शिरःप्रमाणं गते खनेत् । प्रणवेन प्रोक्षयेन्धनप्रक्षेपः कुशैः परिस्तरणं चतुष्कैः कुशोदकेन शवं स्नपयेत्, प्रणवेन शवं गते स्थापयेत् । मित्रस्य त्वा चक्षुषेति प्रतीक्ष्य शवं प्राक्शिरसंस्थापयेत् । विष्णोर्विक्रमणसीति गर्ताञ्चवनिःक्रमणं प्रणवेनेन्धनप्रक्षेपणं त्रीणि पदा विचक्रम इति पदत्रयं नीत्वा तद्विष्णोः परमं पदम् इति पश्येत् । विष्णोः स्थानमसीति संस्कारस्थानेनैव प्रणवेन गोपायेति त्रिदण्डं दक्षिणहस्ते प्रादयति वेत् ॥ देवैः प्रणवेन इति जलप्रतिक्रमणे पदस्य

पारेरेजस इति शिष्यं वामकरे सप्तम्याहृतिभिर्भिक्षाभाजनमुदरे
 इदं त्रिष्णुरित्यासनं कव्यामयेन्द्रनान्युरसि निक्षिप्य प्रणवेन
 प्रश्वाळयेत् । रसातले मृत्तिकां प्राक्षिप्य निखनेत् प्रणवेनापो
 गृहीत्वा वैश्वानरं प्रदाक्षिणीकृत्वापोऽग्नौ प्रणवेन क्षिपेत् । निः
 शेषं दग्ध्वा प्रणवेनाग्निमार्जनं कृत्वा त्र्यहेणैकाहेन वाऽस्थिमार्जनं
 चतुष्केण कृत्वा प्रणवेनोदके प्रवाहयेत् इति । चतुष्कं नाम
 प्रणवव्याहृतिगायत्रीशिरोमन्त्रसमूहः । एवं यथोक्तसंस्कारकरणे
 फलमुदाहरन्ति—

गवां शतसहस्रस्य सम्पक् दत्तस्य यत्फलम् ।

तत्फलं लभते चान्ते विष्णोश्च स्मरणं भवेत् ॥

अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च ।

ततोऽधिकं लभेद्विद्वान् यः करोति क्रियामिमाम् ॥इति ।

‘अत्र च व्यवस्थोक्ता’ चन्द्रप्रकाशे—

प्राक् साग्निकानां भिक्षुणां निदध्याद्वा जले क्षितौ ।

निरग्नीनां दहेद्विभः प्रमीतानां कलेवरम् ॥

अन्यदपि—

कुटीरकं सन्दहेत्तु पुरयेच्च बहूदकम् ।

हंसं जलेषु निक्षिप्य परमहंसं प्रपूरयेत् ॥

इति त्रिदण्डसंस्कारविधिः ।

अथ ब्रह्मचारिसंस्कारः ।

विधानमालायाम्—

येषां कुले ब्रह्मचारी निधनं प्राप्नुयाद्यदि ।

तत्कुलं क्षयमाप्नोति सोऽपि दुर्गतिमाप्नुयात् ॥

ग्रहत्वं प्राप्नुयाद्भोधिद्वेमेऽनवरतं वसेत् ।

तस्य तस्य च वंशस्य गतिभिच्छन्महीयसीम् ॥

विधानं च विधायाश्च और्द्धदेहिकमाचरेत् ।

मृतस्य त्रियमाणस्य षड्द्वयतमादिशेत् ॥

त्रिंशद्भ्यो ब्रह्मचारिभ्यो दद्यात्कौपीनिकाञ्चवान् ।
 हस्तमात्राः कर्णमात्रा दद्यात्कृष्णाजिनानि च ॥.,
 पादुकाञ्छत्रमारयानि गोपीचन्दनमेव च ।
 मणिप्रवालमालाश्च ब्रह्मसूत्राणि चार्पयेत् ॥
 मन्त्रैस्तत्तल्लिङ्गकैश्च ब्रह्मसायुज्यसिद्धये ।
 अभावे व्रतिनां पूज्या गृहस्थाः साधवः शुभाः ॥
 एवं कृते विधाने, च विघ्नस्तस्य न जायते ।

ब्रह्मचारिणोऽर्कादिविवाहं कृत्वा दाहादिके कर्षिर्मित्याह
 शौनकः—

ब्रह्मचारिमृतौ रीतिं कथयामि समासतः ।
 तत्रावकीर्णदोषस्य प्रायाश्चित्तं प्रशान्तये ॥
 द्वादशशब्दं षडब्दं वा ऽप्यब्दं क्षत्त्याऽयवा चरेत् ।
 स्नातको ब्रह्मचारी च निधनं प्राप्नुयाद्यद्भि ॥
 संयोज्य चार्कविधिना दग्धव्यौ तौ ततः परम् ।
 कृत्वाऽग्निस्थापनं तत्र आघारान्तं विधाय च ॥
 ततो व्याहृतिभिर्होमो ह्यग्निर्व्रतपतिस्तथा ।
 अग्नये व्रतानुष्ठानफलसम्पादनाय च ॥
 विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यस्ततः स्विष्टकृतादिकम् ।
 एवं व्रतं विसृज्याथ नस्त्वार्यसविधे पुनः ॥
 शाखां वाऽऽहृत्य रजनीचूर्णेन विनिलेपयेत् ।
 बल्लयुग्मेन संवेष्ट्य पीतवस्त्रादिभिस्तथा ॥
 पुनरग्निं प्रतिष्ठाप्य आघारान्तं विधाय च ।
 अग्निर्बृहस्पतिश्चैव विवाहविधियोजकः ॥
 यस्मै त्वमिति मन्त्रेण कामाय जुहुयात्ततः ।
 ततोऽन्ते च व्याहृत्यस्ततः स्विष्टकृतादिकम् ॥
 एतं विधाय तां शाखां कवेन सह दाहयेत् ॥ इति ।

अथ कुष्ठिसंस्कारः ।

तत्र घृतः—

मृतस्य कुष्ठिनोदेहं निखनेद्रोष्ठभूमिषु ।

वासरत्रितयं पश्चाद्दुग्धृत्यान्पत्र तद्देहत् ॥

न गङ्गाप्लवनं कार्यं न निक्षेपो विधीयते ।

पद्वन्द्वप्रतचर्षा च विधायान्त्यक्रतुं चरेत् ॥

ततः सञ्चयनं तस्य गङ्गायां प्रक्षिपेत्सुधीः ।

मासि मासि ततः कुर्यान्मासिश्राद्धानि पार्वणात् ॥

सङ्कल्पविधिना केचित्प्रवदन्ति मनीषिणः ।

इत्येतत्कुष्ठिनामन्त्यं कथितं कर्मकोविदैः ॥

स्मृतिविद्भिर्नूचानैर्यमाद्यैः पूतविग्रहैः ।

अथ गर्भिणीसंस्कारः ।

तत्र बौधायनः—“अथ गर्भिणीं प्रियेतात ऊर्द्धं क्रियां विद-
धीत इमशानं नीत्वा जलवत्तदेत्योद्यं पश्चात्तिष्ठन् प्रेतायाः सव्य-
पार्श्वे “हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे” इति सुवर्णमन्तर्धाय बाळिखेत्
कुशारं दृष्टमनुमन्त्रयीत जीव मम पुत्र इति इमं बाळं स्थापयेत्प्रे-
तोदरे हिरण्यमन्तर्धाय ‘यस्ते स्तनः शश इति’ बाळस्यानुमुखं
स्तनं निधाय इमशानमागत्य प्रेतहृदयं पञ्चभिर्होमः कार्यः ।

तत्र मन्त्राः—

प्रदाय स्वाहा सर्वप्राणापानव्यानोदानसमानं चक्षुः श्रोत्रं
मनः सरस्वतीत्येतैश्चतुर्थ्यन्तैर्मृतं शिशुमुदरे निक्षिप्यान्नणमुदरं
कृत्वा प्रेतं चितामारोप्य यथोक्तेन दहेत् । तद्विषसे भूष्यादि
दद्यादिति । प्रयोगसारे—

गर्भिण्यां तु मृतायां वै गर्भजीवनशङ्कया ।

विमोक्ष्य गर्भं दग्धव्या ह्येवं धर्मो न हीयते ॥

गर्भिण्योदक्यसंस्कारं शिशुसंस्कारमेव च ।

गर्भिण्या मरणे प्राप्ते पञ्चगव्यैर्जलैः सह ॥
 आपोहिष्ठादिभिर्लिङ्गैः प्रोक्ष्य कर्ता समाहितः । ..
 प्रेतं श्मशाने नीत्वाऽथ उल्लिखेत्सव्यभागकम् ॥
 पुत्रमादाय जीवंश्चेत्स्तनं दत्त्वाऽन्यथा ततः ।
 यस्ते स्तन इत्यनया व्याहृत्या गृह्यमानयेत् ॥
 उदरं चाव्रणं कृत्वा पृषदाज्येन पूरयेत् ।
 मृद्भस्मकुशगोमूत्रैरापोहिष्ठादिभिस्त्रिभिः ॥
 स्नात्वाऽऽच्छायान्यवस्त्रेण पितृमेधेन दाहयेत् ।
 संस्थिते सति पुत्रेण व्याहृत्या चानयेत् गृहम् ॥
 शिशोस्तु मरणे प्राप्ते तत्रैव निखनेद् भुवि ॥ इति ।

स्वर्गसोपानपद्धतौ—

यदा गर्भवती नारी सशल्या संस्थिता भवेत् ।
 कुक्षिं भित्त्वा तसः शल्यं निर्हरेद्यदि जीवति ॥
 प्रमीतं निक्षिपेत्तं तु मायाश्चित्तं ततः परम् ।
 सा त्रयस्त्रिंशता कृच्छ्रैः शुद्ध्यते शल्यदोषतः ॥
 सगर्भदहने तस्या वर्णजं वधपातकम् ।
 प्रायश्चित्तं चरित्वा तु शुद्ध्यन्ते पापकारिणः ॥
 दग्ध्वा तु गर्भसंयुक्तां त्रिरब्दं कृच्छ्रमाचरेत् । इति ॥

दिबोदासप्रकाशेऽपि—

गर्भिण्यो तु मृतायां वै गर्भजीवनशङ्कया ।
 विमोक्ष्य गर्भं दग्धव्या ह्येवं धर्मो न हीयते ॥

अथ सूक्तिकासंस्कारः ।

तत्र तद्गृहकारः—

सूक्तिकायां मृतायां तु कथं कुर्वन्ति याज्ञिकाः ।
 कुम्भे सलिलमदाय पञ्चगव्यं तथैव च ॥
 पुण्यगिभिरभिमन्त्र्यापो वाचा शुद्धिं लभेत्ततः ।

तेनैव स्नापयित्वा तु दाहं कुर्याद्यथाविधि ॥

मेतमल्लर्षामपि—

सूतिकामरणे प्राप्ते सर्वौषध्यनुलेपनम् ।

असूतकी तु संस्पृष्टः शूर्पाणां तु शतं क्षिपेत् ॥

षर्ममदीपेऽपि—

सूतिका स्त्री मृता यत्र प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ।

पञ्चगव्यं न्यसेत्तस्य शुद्धोदककणेश्वपि ॥

कारथेयुः स्त्रियः स्नानमुदकयायास्तथैव च ।

तस्याः पापविशुद्ध्यर्थं कृच्छ्राणां षड्दशाचरेत् ॥

अथ सूतिकामरणे दिनविशेषेण प्रायश्चित्तविशेषः ।

स्मृतिसङ्ग्रहे तत्रादौ प्रथमऽध्याये—

सूतिका तु यदा साध्वी विस्ताना मरणं गता ।

त्रिवर्षपूर्णपर्यन्तं शुद्ध्येत्कृच्छ्रेण सर्वदा ॥

अथ द्वितीयऽध्याये—

सूतिका तु यदा नारी रजसा च परिप्लुता ।

त्रियते चेत्तदा सा तु द्विवर्षं कृच्छ्रमाचरेत् ॥

अथान्त्यश्रिके—

सूतिका तु यदा साध्वी विस्ताना मरणं गता ।

अम्बुकृच्छ्रेण शुद्ध्येत् व्यासस्य वचनं यथा ॥

अत्राशक्तस्य पक्षान्तरमाह स एव—

सूतिका तु यदा साध्वी विस्ताना मरणं गता ।

त्रिषण्णवदिनाद्वर्षाङ्केन विशुद्ध्यति ॥

दद्याद्दोषरक्षसाभ्यन्तरमरणे तु विशेषमाह स एव—

सूतिका तु यदा नारी प्राणांश्चैव परिसृजेत् ।

मासमेकावाधिर्षावाग्निभिः कृच्छ्रैर्विशुद्ध्यति ॥

अत्र च पुत्रादिर्यथोक्तं प्रायश्चित्तं गोदानादिं प्रत्याम्नायेन त-

त्कालमेव कृत्वा दाहादिकं कुर्यादिति सर्ववाक्यानापर्यः, शुद्ध्यर्थ-
त्वात्तस्य । तत्कालाकरणे च शुद्ध्यनुत्पादादिति भावः । ..

अथ रजस्वलासंस्कारैः ।

सङ्ग्रहे—

पञ्चभिः स्नापयित्वा तु गर्भैः प्रेतां रजस्वलाम् ।
बह्वान्तरवृतां कृत्वा दाहयेद्विधिपूर्वकम् ॥

प्रेतमञ्जर्यामपि—

उदक्या सूतिका वाऽपि मृतास्याद्यदि तां तदा ।
आशांचे त्वनतिक्रान्ते दाहयेदन्तरा यदि ॥
उद्धृतेन तु तोयेन स्नापयित्वा तु मन्त्रतः ।
आपोहिष्ठेति तिसृभिर्हिरण्यवर्णांश्चतसृभिः ॥
पवमानानुवाकेन यदन्तीति च सप्तभिः ।
ततो यज्ञपवित्रेण गोमूत्रेणायवा द्विजः ।
स्थापयित्वाऽन्यवसनेनाच्छाद्य शवधर्मतः ॥
दाहादिकं ततः कुर्यात्प्रजापतिवर्चा यथा ॥

‘पवमानः सुवर्चनः’ इति पवमानानुवाकः । ‘यदन्ति यश्च दूरं-
कम्’ इति सप्त ऋचाः । यज्ञपवित्रम् ‘आपो अस्मान्’ इति । इत्या-
दिमन्त्रैः पूर्वोक्तद्रव्यैश्च प्रेतां रजस्वलां संस्नाप्य त्रिरात्रमध्येऽपि
दाहः कार्यः । अत्र च प्रायश्चित्तमुक्तं बोधायनेन—

अन्तरिक्षे मृता ये च बन्धौ वाऽथ जलेऽपि वा ।
उदक्या सूतिका चैव चरेच्चान्द्रायणत्रयम् ॥ इति ।

अत्र च उदक्या चरेदित्यस्योदक्यापुत्रादिर्यथोक्तं प्रायश्चि-
त्तं गवादिप्रत्यार्म्नायेन कृत्वौर्ध्वदेहिकं कुर्यादित्यर्थः ।

धर्मप्रदीपेऽपि सूतिकाद्यद्विधिमभिधायोक्तम्—

कार्यैशुः स्त्रियां स्नानमुदक्यायास्तथैव च ।
तस्याः पापविशुद्धयर्थं कृच्छ्रान्पञ्चदशाचरेत् ॥ इति ।

प्रयोगसारेऽपि—

०० उदकयामरणे प्राप्ते पञ्चगव्येन यत्नतः ।

संस्नाप्य ब्राह्मणैर्दधैरापोहिष्ठादिभिस्त्रिभिः ॥

चतुर्दशातिकृच्छ्राणि चरित्वा श्यद्धिमाप्नुयात् । इति ॥

इदं स्नापद्विषयम् । वस्तुतस्तु त्रिरात्रानन्तरमेव संस्कारमाह

दृढज्ञातातपः—

रजस्वलायाः प्रेतायाः संस्कारादीनि नाचरेत् ।

ऊर्ध्वं त्रिरात्रात्सनातायाः शवधर्मेण दाहयेत् ॥ इति ।

तथा प्रेत मञ्जर्यामपि—

रजस्वलायां प्रेतायां न संस्कारोदकक्रियाः ।

स्थापयित्वा त्रिरात्रं तु शवधर्मेण दाहयेत् ॥

यावता त्रिरात्रपूर्तिर्भवतीत्यर्थः ।

अथ पञ्चकर्मृतसंस्कारः ।

दिवोदासे गरुडपुराणे—

आदौ कृत्वा धनिष्ठार्धमेतन्नसत्रपञ्चकम् ।

रेवत्यन्तं सदा दृष्यमशुभं सर्वदा भवेत् ॥

दाहस्तत्र न कर्तव्यो विषादः सर्वजातिषु ।

न जलं दीयते तस्य ह्यशुभं सर्वदा भवेत् ॥

पञ्चकानन्तरं कार्यं कर्तव्यं सर्वमन्यथा ।

पुत्राणां गोत्रिणां तस्य संतापो ह्युपजायते ॥

गृहे हानिर्भवेत्पृष्ठे ऋक्षेष्वेषु मृतस्तु यः ।

ऋक्षानामथ नो मध्ये दाहस्तु विधिपूर्वकः ॥

क्रियते मानुषाणां तु सद्यःआहुतिकारणात् ।

विप्रैर्नियमतः कार्यो मन्त्रैस्तु विधिपूर्वकः ॥

शवस्य तु समीपे तु क्षेप्तव्याः पुच्छकास्ततः ।

दर्भमयाश्चत्वारः ऋक्षमन्त्राभिमन्त्रिताः ॥

ततो दाहः प्रकृतव्यस्तैश्च पुत्तलकैः सह ।
 मृतकान्ते मृतैः कार्यं क्षान्तकपौष्टिकम् । ..
 एवं कृते विधौ तस्य स प्रेतो लभते गतिम् । .
 बालवृद्धस्य यूनश्च पञ्चकेषु मृतस्य च ॥
 विधानं यो न कुर्वीत विघ्नस्तस्य प्रजायते । .

ब्रह्मपुराणेऽपि—

कुम्भमीनस्थिते चन्द्रे धरणं यस्य जायते ।
 न तस्योर्ध्वगतिर्दृश्या सन्ततौ न शुभं भवेत् ॥
 न तस्य दाहः कर्तव्यो विनाशः स्वेषु जातिषु ।
 पञ्चकानन्तरं कार्यं कार्यं दाहादिकं खलु ॥
 अथवा तद्दिने कार्यो दाहस्तु विधिपूर्वकम् ।
 क्रियते मानुषाणां तु सद्यः सन्ततिकारणात् ॥
 विप्रस्य नियतः कार्यो दाहस्तु विधिपूर्वकम् ।
 धनिष्ठा पञ्चके जीवो मृतो यदि कथञ्चन ॥
 त्रिपुष्करे याम्यमे च कुलजान्मारयेद् ध्रुवम् ।
 तत्रानिष्टविनाशार्थं विधानं समुदीर्यते ॥
 दाहदेशं शवं नीत्वा स्नापयेच्च प्रयत्नतः ।
 दर्भाणां प्रतिमाः कार्याः पञ्चोर्णासूत्रवेष्टिताः ॥
 यद्यपिष्टेनानुलिप्तास्ताभिः सह शवं दहेत् ।
 प्रेतवाहः प्रेतसखः प्रेतपः प्रेतमूमिपः ॥
 प्रेतहर्ता पञ्चमश्च नामान्येतान्यनुक्रमात् ।
 प्रथमां शिरसि न्यस्य द्वितीयां नेत्रयोर्न्यसेत् ॥
 तृतीयां वामकुक्षौ तु चतुर्थीं नाभिमण्डले ।
 पञ्चमीं पादयोर्न्यस्य तत्र पञ्चाहुतीर्हुनेत् ॥
 दश्यां चोदकघातां तु निर्देहेच्च ततः शवम् ।
 मृतकान्ते ततः पुत्रः कुर्याच्चन्द्रिकपौष्टिकम् ॥

कांस्थपात्रस्थितं तैलं वक्षिष्य दद्याद् द्विजन्मने ।

•• ब्रह्मविष्णुमहेशेन्द्रवरुणप्रीतये ततः ॥

• माषमुद्गरयवव्रीहिमियङ्गनादि प्रयच्छति ।

• स्वर्णदानं रुद्रजाप्यं लक्षहोमो द्विजार्चनम् ॥

• गोभूदानं षडंशेन कुर्याद्दोषोपशान्तये ।

पुशांः

ये पञ्चके मृता विमास्तेषां शान्तिं विधानतः ।

अतीते सूतके कुर्यात्केचिच्चदृश्ययोगतः ॥

स्वशृङ्खोक्तविधानेन कृत्वाऽग्नेः स्थापनं ततः ।

यमादिभ्यो निरुप्याथ अर्पयित्वा पृथक् पृथक् ॥

यमाय धर्मराजाय सूत्यवे चान्तकाय च ।

वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च ॥

औदुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने ।

वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय वै क्रमात् ॥

एकैकामाहुतिं हुत्वा चान्ते स्विष्टकृदादिकम् ।

कृष्णाङ्गां कृष्णवस्त्रां च हेमनिष्कसमन्विताम् ॥

दद्याद्विप्राय शान्ताय प्रीतो भवतु मे यमः ।

अत्र च मूलादर्शनादन्यथैव विभावितो विधिः केनचित् ।

स्मृत्यन्तरेऽपि—

घनिष्ठापञ्चकमृते पञ्चरत्नानि तन्मुखे ।

न्यस्याहुतित्रयं दद्यात्कर्ता बह्ववपामिति ॥

ततो निर्हरणं कुर्यादेव साप्तेर्विधिः स्मृतः ।

इतरं निखनेदेव जले वा प्रतिपादयेत् ॥

द्विपादर्शमुखे तद्दक्षिरण्यशकलं मुखे ॥ इति ।

अथ अिपादर्शमूलसंस्कारः ।

स च यद्यपि पृथक् न श्रूयते तथाऽपि पञ्चकविधिना त्रिपु-

स्करविधिना वाऽत्र संस्कारः कर्तव्यः । शान्तिकं च तथैव कार्थम् । परन्तु कर्तव्यप्रतिपादौ त्रित्वसंरूपा कार्पा ।

पञ्चकस्य विधानेन त्रिपादर्क्षमृतं नरम् ॥

संस्कुर्याच्छान्तिकं चान्ते तद्वत्कुर्वति पुत्रकान् ॥

इतिस्वर्गसोपानपद्धतौ स्मृत्यन्तरवचनात् ।

अथ देशान्तरमृताहिताग्निसंस्कारः ।

तत्र दिवोदासप्रकाशे ब्रह्मपुराणम्—

आहिताग्नौ विदेशस्थे मृते सति कलेवरम् ।

निधेयं नाग्निभिर्यावत्तदीयैरपि दहते ॥

तावच्च दक्षिणाग्नौ च कुशैरास्तीर्य वेदिकाम् ।

अधोमुखीं तु समिधं कारयित्वा विधानवत् ॥

परकीयेन वस्त्रेण दुग्ध्वा तां गां च तद्गृहे ।

गोक्षीरेणाय तेनैव जुहुयादग्निहोत्रकम् ॥

पश्चादग्निं समारोप्य यज्ञभाण्डानि तान्यपि ।

उपयञ्चेत् विप्राय ततो हृषदमेव ऋहे ॥

मथित्वाऽग्निप्रणयनं कृत्वा तत्कुणपं दहेत् ।

देशान्तरमृतस्य कृतलौकिकाग्निदाहस्यापि तदस्थनामपि यज्ञ-

पात्रैर्दाहः कार्यः ।

तदुक्तं छन्दोगपरिशिष्टे—

विदेशमरणेऽस्थानि आहृत्याभ्यज्य सर्पिषा ।

दाहयेदूर्णमाच्छाद्य पात्रन्यासादि पूर्ववत् ॥

अस्थनामलाभे पर्णानि शकलान्युक्तयाऽऽहृता ।

दाहयेदुक्तसंख्यानि ततः प्रभृति सूतकम् ॥

अथ प्रोषितस्य जीवह्यार्तानाकर्णने संस्काराः ।

जातुकर्ण्यः—

पितरि प्रोषिते यस्य न वार्ता नैव चागमः ।

ऊर्ध्वं पञ्चदशोद्दृष्या

कुर्यात्तस्य च संस्कारं यथोक्तविधिना ततः ।
...तदानीमेव सर्वाणि प्रेतश्राद्धानि सञ्चरेत् ॥ इति ।

तथा दिवोदासे—

देशान्तरं गतः कश्चित्पुनर्वाहस्य नागतः ।
पुत्रस्तस्य न जानाति जीवन्तं च तथा मृतम् ॥
हृद्धस्य दशवर्षाणि यूयः पञ्चदशैव तु ।
प्रमादाद्द्वर्षमेकं तु ततो नारायणो बलिः ॥ इति ।

जटमल्लविलासेऽपि—

अनाकर्णितवार्त्तस्य प्रोषितस्य पितुः सुतः ।
ऊर्द्धं पञ्चदशाद्द्वर्षादीर्द्धदेहिकमात्ररेत् ॥

पितृभ्यतिरिक्तविषये बृहस्पतिः—

यस्य न श्रूयते वार्ता यावद् द्वादशवत्सरम् ।
कुशपुत्रकदाहेन तस्य स्यादवधारणम् ॥

कालादर्शेऽपि—

अन्येषां द्वादशादब्दात्पूर्वमुक्तैव तत्तथिः ॥ इति ।

अत्र व्यवस्थामाह प्रयोगसारः—“पूर्ववयस्के प्रोषिते एकविंश-
रयब्दाद्दूर्द्धं, मध्यमवयस्के पञ्चदशाब्दाद्दूर्द्धं, अन्तवयस्के द्वादशाद्दूर्द्धं
चान्द्रायणप्रथं त्रिंशत्कुच्छ्राणि चरित्वा पश्चात्संस्कारं कुर्यात्” इति ।

अस्य च पैतृमेधिकारम्भकाल उक्तो जाबालिना—

यन्मासे यत्र दिवसे यो गतस्तस्य तद्दिनम् ।

कुर्यात्प्रतिकृतेर्दाहं दिनाज्ञानेऽपि तत्कुहः ॥

अथ कृतोर्द्धदेहिकस्यापि प्रत्यागतस्य संस्कारः ।

तत्र बृद्धमनुः—

जीवन् त्यादि समागच्छेद् घृतकुम्भे निमज्ज्य तम् ॥

उद्घृत्य स्नापयित्वाऽस्य जातकर्मादि कारयेत् ॥

द्वादशाहं व्रतं कुर्यात्त्रिरात्रमथवाऽस्य तु । ६

स्नात्वोद्गृहेततां भार्यामन्यां वा तदलाभतः ॥

अग्नीनाशाय विधिवद्ब्राह्म्यस्तोमेन वा यजेत् ॥ ..

अथेन्द्राग्नेन पशुना गिरिं गत्वा च तत्र तु ॥ .

इष्टिमायुष्मन्तीं कुर्यादिप्सितांश्च क्रतुस्ततः ॥ इति ।

आहिताग्नेर्यत्र पुरोडाशस्तत्रानीहिताग्नेश्चरुः ।

तथाच युष्मत्प्रायश्चित्ते—

“य एवाहिताग्नेः पुरोडाशास्त एवानाहिताग्नेश्चरुः” इति ॥

कालादर्शेऽपि—

यद्यागच्छेत्पुमान्जीवनैतृमेधिकसंस्कृतः ।

घृतमध्ये स्थापयित्वा तमुत्थाप्य शुभे क्षणे ॥

संस्कृतं जातकर्माद्यैरुपनीतं विधानतः ।

द्वादशाहं त्रिरात्रं वा विहितोपोषणव्रतम् ॥

गिरावागत्य पूर्वां वा तदभावे परां स्त्रियम् ।

ऊढवन्तं च संस्कुर्याच्चरुणाऽऽयुष्मतेन च ॥

अत्र प्रोषिते जीवत्येव तद्दार्तानाकर्णने मिथ्यैव मरणाकर्णने वा तत्संस्कारे क्रियमाणे पत्न्यपि यदि सहगमनं करोति, तदा तस्यास्तद्वैधं सहगमनं भवत्येव, भर्तृमरणज्ञानस्यैव सहगमननिमित्तत्वात् । तत्पमात्वस्य तु गौरवेणोपादानसम्भवात् प्रतीक्षाकालविधायकशास्त्रवाधाच्च ।

अत एव मार्कण्डेयपुराणे—कुवलयाम्बुचरिते पातालकेतुना मिथ्यैव कुवलयाम्बुमरणे उक्ते मदालसायाः प्राणत्यागः संस्कारश्च क्लिष्टं दृश्यते । पुत्रावूचतुः—

• ततस्स राजा संस्कारं पुत्रपत्नीमलंभवत् ।

• निर्गम्य च बहिस्तातो ददौ पुत्राय चोदकम् ॥ इति ।

तेन यथा मरणज्ञानं तत्संस्कारे निमित्तं तथा सहगमनस्यापि निमित्तमिति । अत एव वांशमरणे स्त्रियाः श्राद्धादावपि—

अग्रभैः पृष्ठतो वाऽपि तज्जस्यत्प्रियते तु या ॥

अत्र च यथासम्भवं विकल्पः ॥

शङ्कोऽपि 'भूमौमालयं पिण्डं पानीयमुपले वा दद्युः' ।

अथ पिण्डद्रव्याणि ।

तत्र युनःपुच्छः—

कलमूलैश्च पयसा शाकेन च गुडेन च ।

दिल्लमिश्रं तु दर्भेषु पिण्डं दक्षिणतो हरेत् ॥

शालिना सक्तुभिर्वाऽपि शाकैर्वाऽप्यथ निर्वपेत् ॥

द्रव्यनियमभ्यात् स एव—

प्रथमेऽहनि यद् द्रव्यं तदेव स्याद्दशाहिकम् ।

कर्तृनियमोऽपि परिशिष्टे—

असगोत्रः सगोत्रो वा यदि स्त्री यदि वा पुमान् ।

प्रथमेऽहनि यो दद्यात्स दशाहं समापयेत् ॥

ब्राह्मोऽपि—

प्रथमेऽहनि यी दद्यात्प्रेतायाश्चं समाहितः ।

यस्नेनाहःसु शेषेषु स एव प्रददात्यपि ॥

देशनियमोऽपि परिशिष्टे—

यत्रैको दीयते पिण्डस्तत्र पिण्डान् समापयेत् ।

कर्तृदेशविषये विशेषो मैत्रायणीयगृहपरिशिष्टे—

स्वगृहे विद्यते पुत्रः पिता ग्रामान्तरे मृतः ।

केनापि तत्र चारब्धमग्निपिण्डोदकादिकम् ॥

पुत्रः सञ्चयनात्पाक्चेद्द्रव्येदूर्ध्वं स आचरेत् ।

स्वगृहे तत्र वा सर्वं प्रेतकार्यं सपिण्डनम् ॥

तथा—

भयस्थानेऽथवा मार्गे मृतस्तत्र च संस्कृतः ।

न तिष्ठति जनः पिण्डं तत्र तत्र च वर्त्तयेत् ॥

मन्त्रैर्दाहोऽस्यसञ्चयनं च संस्कारस्तस्मिन्कृते तत्र च भया-
दिना स्थातुमशक्तौ यत्र यत्र प्रेतकार्यं कृत्स्नं तत्रैव पिण्डोदका-
नादि सपिण्डनान्तं समापयेदित्यर्थः ।

इतिश्राद्धकल्पः ॥

तदेवं विरोधे यथाचारमोपदनापदादिभेदेन वा व्यवस्थाऽभ-
वणीया । अन्ये त्वस्य पूर्वापवादत्वमेवाहुः ।

सहगमनेऽपि द्रव्याद्येकत्वनियमो धर्मद्वयौ—

प्राणांस्त्यजति वा नारी भर्तारमनु वै मृता ।

तस्या अपि यथा कुर्यात्पितृसंस्कारसात्क्रियाम् ॥

अग्निश्चरुस्तथा होमो ह्युपस्थानं तथैव च ।

सकृदेवं हि कर्तव्यो विनां पिण्डं तिलोदकम् ॥

उत्तरीयं शिलापात्रमग्निश्चैव तथा चरुः ।

एकमेव भवेत्कर्ता दम्पत्योः सहवायिनोः ॥

नवश्चाद्धं सपिण्डान्त्रं श्राद्धं षोडशकं तथा ।

एक एक सुतः कुर्याद्दम्पत्योस्तु पृथक् पृथक् ॥ इति ।

पिण्डानां च गात्रपूरकत्वमुक्तं पाद्ये—

शिरस्त्वाद्येन पिण्डेन प्रेतस्य क्रियते सदा ।

द्वितीयेन तु कर्णाक्षिन्नासिकाश्च समासतः ॥

गळासभुजवक्षांसि तृतीयेन यथाक्रमम् ।

चतुर्थेन तु पिण्डेन नाभिलिङ्गगुदानि च ॥

जानुजङ्घे तथा पादौ पञ्चमेन तु सर्वदा ।

सर्वमर्माणि षष्ठेन सप्तमेन तु नाडयः ॥

दन्तलोमान्वष्टमेन वीर्यं तु नवमेन च ।

दशमेन तु पूर्णत्वं तृप्तता क्षुद्रिपर्ययः ॥ इति ।

एवं दशप्रपिण्डस्य दशमदिनकर्तव्यतामाप्तौ वर्षविशेषेणो-
त्कर्षमाह—

देयस्तु दशमः पिण्डो राज्ञां वै द्वादशेऽहनि ।

वैश्वानां पञ्चदशमे देयस्तु दशमस्तथा ॥

शूद्राणां दशमः पिण्डो मासे पूर्णे विधीयते ॥ इति ।

अत्रापरो विशेषो विष्णुनांऽभिहितः—‘यावदाक्षां च प्रेतस्यो-
दकं पिण्डमेकं च दद्यात्’ इति । ब्राह्मणस्य दश, क्षत्रियस्य द्वादश,

वैश्यस्य पञ्चदश, शूद्रस्य त्रिंशदित्यर्थे इति मिताक्षरा ।

तदुक्तं लाहरे पारस्करेण—

ब्राह्मणे दश पिण्डाः स्युः क्षत्रिये द्वादश स्मृताः ।

त्रैश्वये पञ्चदश प्रोक्ताः शूद्रे त्रिंशत्प्रकीर्तिताः ॥

उक्तसंख्यायामसमर्थान्प्रति संख्यान्तरमाह स एव—

प्रेतेभ्यः सर्ववर्णेभ्यः पिण्डान्दद्युर्दशैव तु ।

श्राद्धकर्मणि संप्राप्ते पिण्ड एको विधीयते ॥

याज्ञवल्क्येन तु पिण्डत्रयमेवाभिहितम्—

पिण्डयज्ञावृता देयं प्रेतायासं दिनत्रयम् ॥ इति ।

पिण्डपितृयज्ञप्रक्रियया मन्त्रवर्जितया प्राचीनावीतित्वादिरूपया प्रेतायासम् अन्नमयः पिण्डो दिनत्रयं देयम् । इति लाहरमिताक्षरयोरर्थः ।

अत्रेयं व्यवस्था चतुर्णामपि वर्णानां यावदाशौचं विष्णुपारस्कराभ्यां प्रतिपादितं पिण्डदानं मुख्यः कल्पः । तत्राशक्तौ—

देयस्तु दशमः पिण्डो राज्ञां वै द्वादशेऽहनि ।

इत्यादिब्रह्मपुराणोक्तो दशमपिण्डोत्कर्षा एव मध्यमः कल्पः । तत्राप्यशक्तौ दशदिनेष्वेव दशपिण्डदानमिति, जर्घन्यः कल्पः । पिण्डालपस्वबहुत्वाभ्यां प्रेतस्योपकारतारतम्यमिति विज्ञानेश्वरः । वस्तुतस्तु योगिवाक्यमनुपनीताविषयमित्यनुपदमेव वक्ष्यामः । इहापरं वक्तव्यमेकादशाहश्राद्धविचार एव वक्ष्यते । अत्राशक्तं प्रति, पक्षान्तरमप्युक्तं धर्मप्रदीपे—

प्रथमेऽन्दि तृतीये वा पञ्चमे सप्तमेऽपि वा ।

द्वौ द्वौ पिण्डौ प्रदातव्यौ शेषास्तु दशमेऽहनि ॥ इति ।

अथ व्यवहाराशौचे पिण्डाविधिः ।

तत्र शातातपः—

आशौचस्य च हासेऽपि पिण्डान्दद्याद्दशैव तु ।

पारस्करः—

प्रथमे दिवसे देयान्नयः पिण्डाः समाहितैः ।

द्वितीये चतुरो दद्यादस्थिसञ्चयनं तथा ॥

त्रीस्तु दद्यात्तृतीयेऽन्हि वस्त्रादि क्षालयेत्तथा ॥ इति ।

दक्षस्त्वन्यथाऽऽह—

प्रथमेऽहनि तं पिण्डं द्वितीये चतुरस्तथा ।

तृतीये-पञ्च वै दद्याद्दशपिण्डाविधिः स्मृतः ॥

ब्रह्मपुराणेऽपि—

उग्रहाशौचे प्रदातव्याः प्रथमे त्वेक एव तु ।

द्वितीये त्वन्हि चत्वारस्तृतीये पञ्च चैव हि ॥ इति ।

अनयोः पक्षयोस्त्वग्रहाशौचे यादृच्छिको विकल्प इति चिन्ता-
मणिः ॥

अथ युद्धहतस्य पिण्डाविधिः ।

मनुः—

उग्रतैराहवे शस्त्रः क्षत्रघर्महतस्य च ।

सद्यः सन्तिष्ठते यज्ञस्तथाऽऽशौचमिति स्थितिः ॥ इति ॥ (म. ५. १९८।)

यज्ञः पिण्डदानादिरूपः, सन्तिष्ठते समाप्तो भवतीत्यर्थः ।

ब्रह्मपुराणेऽपि—

सद्यःशौचे प्रदातव्याः सर्वेऽपि युगपत्तथा ॥ इति ।

अत्र पक्षद्वयेऽप्येकादशाहादिकमेकादशाह एवेति वक्ष्यते ॥

अथानुपनीतैःपिण्डाविधिः ।

तत्र प्रचेताः—“असंस्कृतानां भूमौ पिण्डं दद्यात्संस्कृतानां
कुशेषु” इति ।

महीचिरापि—

प्रेतापिण्डं वह्निर्दद्याद्भूमन्त्रविवर्जितम् ।

प्रागुद्धीर्यां चरुं कृत्वा स्नातः प्रयत्मानसः ॥ इति ।

एतदप्यनुपनीतविषयमिति मिताक्षरा, पूर्ववाक्यानुसारात् ।

अत्रानुपनीतस्य त्रिवर्षस्य कृतचौलस्य च त्रिरात्रमाशौचं, दाहोदक-
दाने त्वनित्ये,

“तूष्णीमेवोदकं कुर्यात् तूष्णीं संस्कारमेव च ।

सर्वेषां कृतचूडानां नाम्नि वाऽपि कृते सति ॥ (म.५।७०।)

इति सौगाक्षिवचनात् ,

नात्रिवर्षस्य कर्तव्या बान्धवैरुदकक्रिया ।

जातदन्तस्य वा कुर्यान्नाग्निं वापि कृते सति ॥

इति मनुवचनाच्च । तथा पिण्डोऽपि विहितः प्रचेतसा—‘अ-
संस्कृतानां भूमौ पिण्डं दद्यात्’ इति । तस्य च त्रिरात्रव्याप्ति-
त्वम्, ‘यावदाशौचं भेतस्योदकं पिण्डमेकं च दद्युः’ इति विष्णुव-
चनात् । तथाचानुपनीतस्यापि पिण्डत्रयदानमित्यागतम् । तदेव च
स्पष्टीकृतं याज्ञवल्क्येन—

“ (१) पिण्डयज्ञावृता देयं भेतायाश्च दिनत्रयम् ॥ इति ।

एवं तावत्प्रेतोपकारतारतम्यं दशपिण्डविधिना विकल्पो वाऽस्य
न दोषः, प्रत्युतानेकप्रचेतोविष्ण्वादि वाक्यैकमूलत्वकल्पनाला-
घवमेव गुणः । किञ्च प्रचेतोवाक्यविहितपिण्डमात्रस्यावच्छेदकमं-
ख्याकाङ्क्षायां ‘भेतायाश्च दिनत्रयम्’ इत्यपेक्षितसंख्याविधानमपि
स्यात् । न च विष्णुवाक्यानुरोधात्त्रिरात्रव्यापित्वेनास्य त्रित्वसं-
ख्या छन्दैवेति क्षिपनेनेति वाच्यम् । अर्थप्राप्तायास्तस्याः स्पष्ट-
विधानेनाकाङ्क्षापूरणमित्युक्तमेवेति ।

दिवोदासेऽपि—

अत्रते निधनं प्राप्ते विमादौ शूद्रजातिवत् ।

क्रियाः सर्वाः समुद्दिष्टाः सपिण्डीकरणं विना ॥

उदकं पिण्डदानं च कृतचूडे विधीयते ॥ इति ।

शूद्रवदित्यनेनामन्त्रकत्वमुक्तम् । उपनयनोत्तरं सर्वेषां स्वजा-

(१) ‘पिण्डपितृयज्ञप्रक्रियया प्राचीनावीतित्वादिरूपया’ ।

त्युक्तमेव । शूद्रस्य तूपनयनांभावात्कृतः प्रभृति जात्याशौचादिपा-
शिरिरूपेक्षायामाह कल्पतरौ ब्रह्मपुराणम्—

अनुपनीतो विप्रस्तु राजा चैवाधेनुर्ग्रहः ।

अग्रहीतमतोदस्तु वैश्यः शूद्रस्त्ववस्त्रयुक् ॥

अनियते यत्र तत्र स्यादाशौचं त्र्यहमेव तु ।

• द्विजन्मनामयं कालस्त्रयाणां तु षडाब्दिकम् ॥

पञ्चाब्दिकस्तु शूद्राणां स्वजात्युक्तमतः परम् ॥ इति ।

द्विजन्मनामुपनयनधनुर्ग्रहणमतोदग्रहणकालः षडाब्दिकः,
शूद्राणां तु वस्त्रग्रहणकालः पञ्चाब्दिकस्तेन शूद्रस्य कृतचौलस्या-
ऽऽवस्त्रग्रहणकालादापञ्चमवृषात् त्रिरात्राशौचमुक्तं पिण्डदानं च अ-
तऊर्ध्वं स्वजात्युक्तमित्यर्थः ।

अथ कुमारीणां पिण्डविधिः ।

दिवोदासे मरीचिः—

स्त्रीणाममन्त्रकं कार्यं तथाऽव्रतसुतस्य च ।

प्राम् द्विजोत्तरेत्रतादेशात्ताश्च कुर्यात्तथैव तत् ॥

ताः क्रियाः तदोद्धेदेहिकम् । आपस्तम्बोऽपि—

मित्रबन्धुसपिण्डेभ्यः कुमारीस्त्रीभ्य एव च ।

नियमान्मांसिकं कार्यं सम्बत्सरमतोऽन्यथा ॥

अतोऽन्ययेति नियमं विना, साम्बत्सरिकश्राद्धमिच्छया कुर्या-
न्नवेत्यर्थः । कृतचूडाया अनूढायाः पूर्वं क्रियावात्रं पित्रा कार्यमिति
श्रीदत्तः । अन्ये तु कृतवाग्दानाया अपि सपिण्डनवर्जं क्रियामाहुः ॥

अथ पाथेयश्राद्धम् ।

तत्र शातातपः—

भूलोकैस्त्वैतलोकं तु गन्तुं श्राद्धं समाचरेत् ।

तत्पाथेयं हि भवति सुतस्य मनुजस्य हि ॥

ब्रह्माण्डपुराणे—

श्राद्धं कुर्यात्प्रयत्नेन पुत्रः पाथेयसंज्ञकम् ।

तत्पाथेयं समुद्दिष्टं यातुः प्रेतपुरं प्रति ॥

सर्वेषां तत्समुद्दिष्टमेकोद्दिष्टं नवादिवत् ॥ इति ।

नवादिवत् नवश्राद्धदित्यर्थः ।

अथास्थिसञ्चयनम् ।

तत्र सम्बर्तः—

प्रथमेऽह्नि तृतीये वा सप्तमे नवमे तथा ।

अस्थिसञ्चयनं कार्यं दिने तद्गोत्रजैः सह ॥ इति ।

विष्णुः—चतुर्थे दिवसेऽस्थिसञ्चयनं कुर्यात्तेषां गङ्गाभसि
प्रक्षेपः' इति ।

पैठनिसिः—

गत्वाऽरण्ये चतुर्थेऽह्नि पूर्वाह्ने त्वस्थिसञ्चयः ।

कात्यायनोऽपि—

अपरिघुस्तृतीये वा अस्थनां सञ्चयनं भवेत् ।

एवं कालनानास्वे वर्षविशेषेण व्यवस्थोक्ता दिवोदासनिवम्भे
ब्रह्मपुराणेन—

चतुर्थेऽह्नि विप्रस्य चतुर्थे क्षत्रियस्य च ।

पञ्चमे वैश्यजातेस्तु शूद्रस्य दशमेऽहनि ॥

अस्थनां तु सञ्चयः प्रेते क्रियते देशगौरवात् ।

श्रुहाद्याशौचेऽपि विशेष उक्तस्तत्रैव—

श्रुहाद्याशौचे द्वितीयेऽह्नि कर्तव्यस्त्वास्थिसञ्चयः ।

सद्यःशौचे तस्क्षणं तु कर्तव्य इति निश्चयः ॥

अस्थ्यादिदाहे विशेषमाह शौनकः—

पाळाशेष्वस्थिदाहे च सद्यः सञ्चयनं भवेत् ।

भृगुवादिमरणे तु द्वितीयदिने—

तस्य त्रिरात्रमाशौचं द्वितीये त्वस्थिसञ्चयः ।

इति मनुस्मरणात् । यत्तु सर्वपक्षाणां सर्वविषयत्वेनोपन्यसनं,
तत्र व्यवस्थापकवाक्यादर्शनमूलकमिति न श्रद्धेयम् । न च व्यव-
स्थापके सप्तमनवमदिनपक्षयोर्निर्विषयतास्यादिति बाधश्च ?

श्राद्धचिन्तामणिना-

सप्तमे वैश्यजातेस्तु नवमे शुद्रजन्मनः ।

इत्यस्यैव पाठस्यादरणात् । अत्र वारनक्षत्रनिषेधोऽपि
यमेनोक्तः—

भौमार्कमन्दवारेषु तिथियुगेषु वर्जयेत् ।

-वर्जयेदेकपादर्शे द्विपादर्शेऽस्थिसञ्चयम् ॥

प्रदातृजन्मनक्षत्रे त्रिपादर्शे विशेषतः ॥ इति ।

तदेतद्वाहादिनादेव यथोक्तादिने कार्यमिसाहाङ्गिराः-

अनाभिमत उत्क्रान्तेः साप्तेः संस्कारकर्मणः ।

शुद्धिः सञ्चयनं दाहान्मृताहस्तु यथाविधि ॥ इति ।

सायिकानभिकयोः सूतकं संस्कारोत्क्रान्तिदिनादेव, सञ्च-
यनं तृभयोरपि संस्कारद्विसादेवेति काहरः ॥

अथेतिकर्तव्यता ।

ब्रह्मपुराणे—

स्नात्वा त्रिरात्रं कुर्वन्ति प्रेतायोदकतर्पणम् ।

श्मशाने देवतायोगं चतुर्थे दिवसे ततः ॥

भवन्ति पूजिता यस्मात्तत्रस्थाः शङ्करादयः ।

नमः क्रव्यदमुख्येभ्यो देवेभ्य इति सर्वदा ॥

येऽस्मिन्श्मशाने देवाः स्युर्भगवन्तः सनातनम् ।

तेऽस्मत्सकाशाद् गृह्णन्तु बलिमष्टाङ्गमुत्तमम् ॥ •

एवं कृत्वा बलीन् सर्वान्क्षीरेणाभ्युक्ष्य वाग्यतः ।

ततो यज्ञियवृक्षोत्थां शाखामादाय वाग्यतः ॥

अपसव्यं क्रमादृच्छं कृत्वा कश्चित्सगोत्रजः ।

प्रेतस्यांस्थीन् गृह्णाति प्रधानाङ्गोद्भवानि च ॥

पञ्चगव्येन सुंस्नाप्य क्षौमवस्त्रेण वेष्टय च ।

प्रक्षिप्य मृन्मये ऋण्डे नवे साञ्छादने शुभे ॥

अरण्ये वृक्षमूले वा शुद्धे संस्थाप्य तान्यथ ।

तत्स्थानाच्छनकैर्नीत्वा कदाचिज्जाह्ववीजले ॥

काश्चित्क्षिपति सत्पुत्रो दौहित्रो वा समाहितः ।

गृह्णित्वाऽस्थीनि तद्भस्म नीत्वा तोये विनिक्षिपेत् ॥ इति ।

इतोऽपि विशेषोऽन्यतोऽवगन्तव्यः । अत्र विशेषमाह शौनकः—

अजिनं कम्बला दर्भां गोकेशाः शाणमेव च ।

भूर्जपत्रं तादपत्रं समथ वेष्टनं स्मृतम् ॥

हैमं च मौक्तिकं रौप्यं प्रवालं नीलकं तथा ।

निक्षिपेदस्थिमध्ये तु शुद्धैर्भवति नान्यथा ॥

ततो ह्योमं प्रकुर्वन्ति तिलाज्येन विचक्षणः ।

उदीरतेति सूक्तेन हुनेदष्टोत्तरं शतम् ॥

ततो गत्वा क्षिपेत्तीर्थे स्पर्षदोषो न विद्यते ।

मूत्रं पुरीषाचमनं कुर्वन्नास्थीनि धारयेत् ॥

हेमश्राद्धं ततः कुर्यात्पितृनुद्दिश्य यत्नतः ।

पिण्डदानं प्रकुर्वीत ततश्च तिलतर्पणम् ॥ इति ।

अथासम्बन्धस्थित्यहने प्रायश्चित्तं ब्रह्मपुराणे—

मातुः कुलं पितृकुलं वर्जयित्वा नराधमः ।

अस्थीन्यन्यकुलोत्थानि नीत्वा चान्द्रायणं चरन् ॥

अस्थीनि मातापितृपूर्वजानां नयन्ति गङ्गामपि ये तु केचित् ।

सद्भावकस्यापि दयाभिभूतास्तेषां तु तीर्थानि फलप्रदानि ॥

कुलद्वयं चाप्यथ वर्जयित्वा मातापित्रोर्जन्मभूम्याश्रितं च ।

अस्थीनि चान्यस्य बहस्यन् वा भाग्यक्षयं लभते दुष्कृतं च ॥

अथ नवश्राद्धानि ।

तत्राङ्गिराः—

प्रथमेऽह्नि तृतीयेऽह्नि पञ्चमे सप्तमे तथा ।

नवमैकादशे चैव नवश्राद्धं प्रकीर्तितम् ॥

वशिष्ठोऽपि—

सप्तमेऽह्नि तृतीये च प्रथमे नवमे तथा ।

एकादशी दिनेऽपि स्युर्नवश्राद्धानि षट् तथा ॥

एतेषां वर्णविशेषे व्यवस्थोक्तः भविष्यत्पुराणे—

नव सप्त विशां राक्षां नवश्राद्धान्यनुक्रमात् ।

आद्यन्तयोर्बर्णयोस्तु षडित्याहुर्महर्षयः ॥

अत्र च 'आद्यन्तयोर्बर्णयोस्तु षट्' इति वचनेन सर्वशास्त्रीयब्राह्मणानां षडेवेति प्राप्तौ शाखाविशेषेण व्यवस्थाप्याह शिवस्वामी—
नवश्राद्धानि पञ्चाहुराश्वलायनशास्त्रिनः ।

आपस्तम्बाः षडित्याहुर्विभाषा तैत्तिरीयिणम् ॥ इति ।

सचायं व्यवस्थापक्षोऽत्र पक्षद्वयस्य व्यवस्था शिवस्वामिना दक्षितेत्यनेन माघवाचायैरप्यङ्गीकृतः । यत् केनचिदाश्वलायना-
नामपि षडेव नवश्राद्धानि प्रयोगे प्रतिपाद्यान्तिमाभिषानानन्तरं शि-
वस्वामिमते नैतत्तन्मते पञ्चैव नवश्राद्धानिपूर्वोक्तानित्यभिहितं, तच्छि-
वस्वामिवचनस्य व्यवस्थापकत्वेन विशेषत्वमनभिसन्धायाङ्गिरो-
वचनेन तुल्याविषयतामवगत्याष्टदोषदुष्टाविकल्पाश्रयणेन स्वस्य धी-
मांसाभिनिवेशख्यापनमेव कृतमिति मन्यामहे । किञ्च—

यत्राश्वलायनेनोक्तोविशेषः कोऽपि न स्वयम् ।

तत्र बौधायनं ग्राह्यं बह्वचादिभिरादरात् ॥

इत्यादिवाक्येनाश्वलायनाभ्यर्हिततरेण बौधायनेनापि पञ्चैव
नवश्राद्धानि प्रतिपादितानि । यथा—“मरणाद्विषमदिनेष्वेकैकनव-
श्राद्धं कुर्यादानवमाद्यन्नवमं विच्छिद्येत्तैकादशेऽह्नि कुर्यात्” इति ।
व्याकृतं चैतन्मदनपालेन—‘आनवमादित्यशास्त्रविधिषौ नव-
मभिष्ठाप्य नवश्राद्धं कुर्यात् । नवमदिनकर्तव्यं नवश्राद्धं
कुर्यात् । नवमदिनकर्तव्यं नवश्राद्धं यद्यन्तरितं तर्हि तदेव
तदेकादशेऽह्नि कुर्यादिति ।

केचित्पञ्चैव नवमं श्वेदन्तरितं यदि ।

एकदशेऽह्नि तत्कुर्यादिति स्मृतिः कृतो विदुः ॥

इति वसिष्ठस्मरणात् तेनापि पञ्चैव नवश्राद्धान्याश्रयाय-
नानां प्रतीयन्ते । अपि च एकादशदिनकर्तव्यं नवश्राद्धमभि-
धाय शिवस्वामिमते नैतदिति वदता एकादशदिनकर्तव्यमेव शिव
स्वामिनोऽनभिमतमिति कथमवधारितम् । तद्वाक्यविहितपञ्चसं-
ख्यायाः प्रथमदिनकर्तव्यहानेभाष्युपपत्तेः । तथासति च 'परण-
दिनाद्विषमदिनेषु' इति बौधायनीश्रवाक्येनापि एकमूलकता स्या-
दित्यलम् ।

अथ यस्यकस्यापि नवश्राद्धस्थान्तराये निर्णयमाह
कण्वः—

नवश्राद्धं मासिकं च यद्यदन्तरितं भवेत् ।

तत्तदुत्तरमातन्त्यादनुष्ठेयं प्रचक्षते ॥

सातन्त्र्यं समानतन्त्रत्वम्, उत्तरनवश्राद्धदिनमिति यावत् ।

धर्मप्रदीपेऽपि—

देवाद्यादि नवश्राद्धमतीतं प्रथमेऽहनि ।

तृतीयेऽहनि कर्तव्यं विषमे वाऽप्यसम्भवात् ॥

अन्योऽपि विशेषस्तत्रैव—

नन्दायां भार्गवदिने चतुर्दश्यां त्रिपुष्करे ।

नवश्राद्धं न कुर्वति त्रिपादे पञ्चके तथा ॥

नवश्राद्धे द्रव्यमाह ऋष्यशृङ्गः—

नवश्राद्धं सपिण्डत्वं पक्षात्नेन समाचरेत् ।

एकोद्दिष्टादिकं चान्यद्यथाशक्ति न हापयेत् ॥

अथोदकदानम् ।

ब्रह्मपुराणे—

एकस्तोयाञ्जलिस्त्वेवं पात्रमेकं च दीयते ।

द्वितीये द्वौ तृतीये त्रींश्चतुर्थे चतुरस्तथा ॥

पञ्चमे पञ्च षट् षष्ठे सप्तमे सप्तं चैव हि ।

अष्टमेऽष्टौ च नवमे नवव दशमे दशे ॥

येन स्युः पञ्चपञ्चाशत्तोयस्याञ्जलयः क्रमात् ।
 तोयपात्राणि तावन्ति संयुक्तानि तिलादिभिः ॥ ..
 जात्युक्ताशौचतुल्यास्तु वर्णानां रुचिदेव तु ।
 देशधर्मान्पुरस्कृत्य प्रेतपिण्डान्वपत्यपि ॥

वृद्धप्रचेताः—

दिने दिनेऽञ्जलीन्पूर्णांन्प्राक्षिपेत्प्रेतकारणात् ।
 तावद्वृद्धिश्च कर्तव्या यावत्पिण्डः समाप्नोते ॥

प्रचेताः—

नदीकूलं ततो गत्वा शौचं कृत्वा यथार्थवत् ।
 वस्त्रं संशोधयेदादौ ततः स्नानं समाचरेत् ॥
 सचैलस्तु ततः स्नात्वा शुचिः प्रयतमानसः ।
 पाषाणं तत आदाय विप्रे दद्याद्दशञ्जलीन् ॥
 द्वादश क्षत्रिये दद्याद्दशैव पञ्चदश स्मृताः ।
 त्रिंशच्छूद्राय दातव्यास्ततः सम्प्रविशेद् गृहम् ॥
 ततः स्नानं पुनः कार्यं गृहशौचं च कारयेत् ॥

लाहरे आदित्यपुराणे—

आदौ तु वस्त्रं प्रक्षाल्य तेनैवाञ्छादितस्ततः ।
 कर्तव्यं तु सचैलं तु स्नानं सर्वमलापहम् ॥
 ततः पाषाणपृष्ठे तु सर्वैर्देयं तिलोदकम् ।
 एकेनैकेन देयास्तु विप्रायाञ्जलयो दश ॥
 राज्ञे द्वादश देयास्तु वैश्याय दश पञ्च च ।
 त्रिंशच्छूद्राय देयास्तु प्रेतभूमिगताय च ॥
 अपसव्यं ततः कृत्वा वस्त्रयज्ञोपवीतके ।
 दक्षिणाभिमुखैर्विप्रेर्देयं तोयाञ्जलित्रयम् ॥
 वामान्शुभ्रप्रवाहेण भूपीवेवाथवा क्वचित् ।
 असत्रमुकगोत्रस्तु प्रेतस्तृप्यत्विदं पठन् ॥

अत्र च विषादिभ्यो दशादिसंख्या-तज्जलाज्जलिदानमेकं कर्म, अञ्जलित्रयदानं तु कर्मान्तरम् । यद्वा प्रत्यहं देयस्याञ्जलेः संकलनेषेति लाहरः ।

कात्यायनोऽपि—

अथानपेक्षमेत्यापः सर्व एव शवस्पृशः ।

स्नात्वा सचैलमाचम्य दद्युरस्योदकं स्थले ॥

विष्णुः—निर्हृत्य बान्धवाः प्रेतं संस्कृत्याप्रदक्षिणं चितिमभि-
गम्य सवाससो नमिज्जनं कुर्युः, प्रेतस्योदकनिर्वपणं कृत्वैकं
पिण्डं कुशेषु दद्युः । विशेषमाह गौतमः—‘प्रथमतृतीयपञ्चमसप्तम-
नवमेषूदकक्रिया’ इति ।

अत्र मन्त्रमाह याज्ञवल्क्यः—

सकृत्प्रसिञ्चन्त्युदकं नामगोत्रेण वाग्यताः । (३।१।५)

कात्यायनः—

गौत्रनामप्रदान्ते च तर्पयामीत्यहं वदेत् ।

दक्षिणाग्नान् कुशान् कृत्वा सालिलं तु पृथक् पृथक् ॥

वसिष्ठः—‘सव्योत्तराभ्यां पाणिभ्यामुदकक्रियां कुर्वीरन्
युग्मा दक्षिणामुखाः’ । वैजवापः—‘उदकं दत्त्वा सकृदुन्मज्ज्याभ्यु
सव्यपाणेः कनिष्ठयाऽवल्लिखति कनिष्ठं पाणिमितरस्मिन्नेकमुद-
काञ्जलिं प्रेताय दद्युरमुष्मै स्वधा’ इति । शुक्रः—‘अपसव्ये वा-
सोयज्ञोपवीते कृत्वाऽञ्जलिना वा शवैतत्ते उदकमित्युक्त्वा’ इति ।

ब्रह्मपवादमाह याज्ञवल्क्यः—

न ब्रह्मचारिणः कुर्युर्दकं पतिता न वा ॥ इति ।

मनुरपि—

आदिष्टी नोदकं कुर्यादाव्रतस्य समापनात् ।

समाप्ते तूदकं कृत्वा त्रिरात्रमग्नौचिर्मवेत् ॥ (म. ५।८८)

वृद्धमनुः—

क्षीवाया नोदकं कुर्युः स्तेना व्रात्या विकर्मिणः ।

गर्भभर्तृदुहश्चैव सुरोप्यश्चैव योषितः ॥ इति, ;
 अथोदकानर्हाः—तेषु फलखण्ड्यनाश्रितादयो दाहाग्रनर्हग-
 णनवेलायामेव प्रतिपादिताः ।

अथाशौचदिनकर्तव्यधर्माः ।

ऋष्यशृङ्गः—

न स्वधां च प्रयुञ्जीत प्रेतपिण्डे दशाहिके ।

भाषिते तच्च तेऽपिण्डयज्ञदत्तस्य पूरकम् ॥

यस्य न ज्ञायते गोत्रं नाम्ना तत्पिण्डमाहिरत्

धर्मप्रदीपेऽपि—

अष्टादश च वस्तूनि प्रेतश्राद्धे विवर्जयेत् ।

आशिषो द्विगुणा दर्भाः स्वस्त्यस्तु प्रणवस्तथा ॥

अग्नौकरणमुच्छेषश्राद्धं वा वैश्वदेविकम् ॥

विकिरं च स्वधाकारः पितृशब्दस्तथैव च ।

अनुशब्दं न कुर्वीत उल्लंखनमथाल्मुकम् ।

अपोनिषेवणं चैव आवाहनमनुव्रजम् ॥ इति ।

परीचिः—

मथमंऽन्दि तृतीयेऽन्दि सप्तमे नवमे तथा ।

ज्ञातिभिः सह भोक्तव्यमेतत्प्रेतेषु दुर्लभम् ।

ज्ञातिभिः सपिण्डैरित्यर्थः ।

तेनासपिण्डानां सूतकाश्रमभोजने दोषः ।

उभयत्र दशाहानि कुलस्याश्रमं न भुञ्जते ॥

इति यमस्मरणात् । उभयत्र जननपरणयोः ।

दशाहान्यस्याशौचकालोपलक्षणम् ।

कुलस्य सूतकयुक्तस्याश्रमसपिण्डैर्न भोक्तव्यमित्यर्थः ।

सपिण्डानां पुनर्भोजने न दोषः ।

सूतके तु कुलस्याश्रमदोषं मनुरब्रवीत् ॥

*Prescribed
 Interdicted
 7 days
 period*

इति तेनैवाभिधानात् । इहापरमपि वक्तव्यं विस्तरभयाशो-
ष्यते ।

अथ मरणाशौचे ताम्बूलमपि न भक्षणयिम् ।

तथा सङ्ग्रहे—

मातापित्रोः क्षयश्राद्धे तथैव क्षयसूतके ।

ताम्बूलं चर्बयेद्यस्तु पितृहा स निगद्यते ॥

आम्बुलायनः 'नैतस्यां रात्रावम्बं पचेयुस्त्रिरात्रमक्षाराळवणा-
शिनः स्युः । द्वादशरात्रं महागुरुषु । ये त्वक्षारमिति, ळवणा-
विशेषणमित्याहुस्ते ळवणरसज्ञानशून्या रसनेन्द्रियहीना लो-
कोक्तस्यैव निरस्ताः । किञ्च 'अक्षाराळवणाशिन' इत्यत्राळवणा-
शिन इति नञ्प्रत्ययपश्यन्तश्छुर्हीना एव स्फुटम् । न च ळवणा-
तिरिक्तं क्षारं नास्त्येवेति वाच्यम् ।

अग्निपुराणे—

क्षारं क्षौद्रं च ळवणं मधु मांसं तथैव च ।

तिलमुद्गाहते शैब्यं माषगोधूमकोद्रवाः ॥

चीनकं देवधान्यञ्च चणकं च तथैक्षवम् ।

स्विन्नधान्यं तथौषध्यमेष क्षारगणः स्मृतः ॥

अम्यन्नापि—

गोक्षीरं गोघृतं चैव धान्यं मुद्गास्तिला यवाः ।

अक्षाराः कथिता ह्येते क्षाराश्चान्ये प्रकीर्तिताः ॥ इति ।

कुष्माण्डं चणका राजमाषाश्चैव मसूरिकाः ।

ऐक्षवं चैव कुल्माषा माषधान्यं कपिस्थकम् ॥

मूलकं मधु माधुकं चिञ्चिणी राजिका निम्बा ।

द्रव्याणि दशचत्वारि क्षाराण्येतानि वर्जयेत् ॥

ब्रतोपवासदिवसे पारणासु च सर्वदा ।

पुण्येषु चैव मासेषु तथाऽऽश्वौषादिनेष्वपि ॥

इत्थं विवस्वांन्राजेन्द्रं मनुं समुपदिष्टवान् ।

इति पञ्चपुराणवचनात् ।

गौतमः—

“मत्स्यमांसादि न भक्षयेयुराप्रदानात्” ।

यावच्छ्राद्धे मांसं दीयते तावन्न भोज्यं नवश्राद्धेषु च तन्नि-
षेधात् ;

नवश्राद्धेषु सर्वत्र न मांसं दीयते बुधैः । इति ।

अधःशय्यासनादीनामुपभोगादिवर्जिताः ।

अक्षारालवणाग्नाः स्युर्लब्धक्रीताशनास्तथा ॥

अधःशय्यासना इति खट्वापीठादिनिवृत्तिः ।

अङ्गिराः—

ब्रह्मचर्यं क्षितौ स्वापस्त्राज्यं मीमांसनं च तैः ।

ब्रह्मचर्यं मैथुनाभावः ।

विष्णुपुराणे—

शय्यासनोपभोगश्च सपिण्डानामपीष्यते ।

अस्थिसञ्चयनादूर्ध्वं संयोगो न तु योषिताम् ॥

यथाऽस्थिसञ्चयान्नेष्यते तथाऽस्थिसञ्चयनादूर्ध्वमपि सपि-
ण्डानामिदं सर्वं नेष्यत इत्यर्थः ।

दिवा नक्तं च भोक्तव्यममांसं मनुजर्षभ ।

ब्राह्मे—

आशौचमध्ये यत्नेन भोजयेच्च स्वगोत्रजान् ।

मार्कण्डेयैः—

प्रथमेऽग्निह तृतीयेऽग्निह सप्तमे नवमेऽथ वा ।

वस्त्रागं बहिः स्नानं कृत्वा दद्यात्तिलोदकम् ॥

तैलाभ्यङ्गो बान्धवानामङ्गसम्वाहनं च यत् ।

तेन चाप्यायते जन्तुर्यथाश्नन्ति स्वबान्धवाः ॥

अथाशौचिनां विहितानि विद्वानि ।

तत्र कश्यपः—एषूहस्तु ब्राह्मणो नयजेन्न याजयेन्नाधीवीत
नाध्यापयेन्न प्रतिगृणीयात् ।

जाबालः—

सन्ध्यापञ्चमहायज्ञानैत्यकं स्मृतिकर्म च ।

तन्मध्ये हापयेत्तेषां दशाहान्ते पुनः क्रिया ॥

सन्ध्याया न स्वरूपतस्त्यागोऽपितु मन्त्रवत्याः । नैत्यकं
स्नानजपादि । स्मृतिकर्म श्राद्धादि ।

मनुः—

जननाद्दशरात्रं च शावे च समृपस्थिते ।

नाधीवीत द्विजो नित्यं न चैवाकालिकेषु च ॥

महागुरौ द्वादशाहं वेदस्याध्ययनं त्यजेत्(१) ॥ इति ।

सम्बर्तः—

हानिं तेषां प्रकुर्वीत तथा मरणजन्मनोः ।

तेषां पञ्चमहायज्ञानाम् ।

शङ्खः—

दानं प्रतिग्रहो होमः स्वाध्यायः पितृकर्म च ।

मेतपिण्डक्रियावर्जमाशौचे विनिवर्तते ॥

होमो वैश्वदेवहोमः ।

विभो दशाहमासीत वैश्वदेवविबर्जितः ।

इति सम्बर्तस्मरणात् । यदपि 'आशौचे होमदानप्रतिग्रहस्वा-
ध्याया निवर्तन्ते' इति विष्णुवचने होमपदं तदपि वैश्वदेवपरमेव ।
एवं सर्वत्रनिषेधवाक्ये होमपदं वैश्वदेवहोमपरं बोध्यम् । काम्य-
होमपरं वा, तस्य प्रतिप्रसवात् । पितृकर्म दर्शश्राद्धादि, मेलपिण्ड-
क्रियाविधानात् । त्यक्तोपादानकालशोक्तो हारीतेन—

ततस्त्वेकादशदिने यज्ञः स्वाह्ययनानि च ।

प्रवर्तन्ते क्रियाश्चैव उभ्येतन्मैत्रिरभवीत ॥

(१) अयं श्लोकः मनुस्मृतौ नोपलभ्यते ।

दशाहान्ते पुनः 'क्रिया' इति च । यमोऽपि—

एकादशेऽपि कुर्वति द्वात्रिंशत्तमं तपः ।

अत्र एकादशदिने इति 'दशाहान्ते' इति च स्वस्वाशौचान्त्य-
दिनानन्तरदिनोपलक्षणार्थम् ।

तदुक्तं मार्कण्डेयपुराणे—

दशाहं ब्राह्मणास्तिष्ठेद्दानहोमविवर्जितः ।

सत्रियो द्वादशाहं च वेद्यो मासार्द्धमेव च ॥

शूद्रश्च मासमासीत निजकर्मविवर्जितः ॥ इति ।

विष्णुपुराणे—

सर्वकालमुपासीत सन्ध्ययोः पार्थिवेष्यते ।

अन्यत्र भूतकाशौचविभ्रमातुरभीतितः ॥

सन्ध्याविषयेविशेषमाह पुलस्त्यः—

सन्ध्यामिष्टिं चण्ड्यामं यावज्जीवं समाचरेत् ।

न त्यजेत्सूतके वाऽपि त्यजन् गच्छेद्दधो द्विजः ॥ इति ।

तत्र सन्ध्यायां प्रकारविशेषमप्याह स एव—

सूतके सूतके चैव सन्ध्याकर्म समाचरेत् ।

मनसोच्चारयेन्मन्त्रान्प्राणायामसूते द्विजः ॥

अस्यार्थः—

प्राणायाममन्त्रव्यतिरिक्तमन्त्रान् मनसोच्चारयेत् प्राणायामम-
न्त्रांस्तु मनसाऽपि नोच्चारयेत् ; किन्तु अमन्त्रमेव प्राणायामं कुर्यात् ।

तदाह भरद्वाजः—

सूतके सूतके कुर्यात्प्राणायाममन्त्रकम् ।

तथा मार्जनमन्त्रास्तु मनसोच्चार्यं मार्जयेत् ॥

गायत्रीं सम्पुर्णोच्चार्यं सूर्याचार्यं निवेदयेत् ।

मार्जनं तु नवा कर्षणपस्थानं न चैव हि ॥ इति ।

मार्जनं वैकुण्ठिकमुपस्थानं तु नास्त्येव ।

अत एव च्यवनोऽपि—

अर्ह्यन्ता मनसी सन्ध्या कुणवारिविवर्जिता ॥ इति ।

एवं सर्वत्रामन्त्रकत्वे मासेऽर्ह्यदाने विशेषमाह स एव—

गायत्रीं सम्यगुच्चार्य सूर्यायार्घ्यं निवेदयेत् ।

पैठीनसिरपि—“मृतके सावित्र्या वाऽञ्जलिं प्रक्षिप्य प्रदक्षिणं कृत्वा सूर्यं ध्यापन्नमस्कुर्वीत्” इति । तदेवं सन्ध्याविधानेन नि-
वेद्यवाक्यानामविशेषेण प्रवृत्तानां विशेषेऽवस्थापनं क्रियते । मा-
णाग्निहोत्रमपि कार्यामित्युक्तं विद्याकरे—

मृतके कर्मणां त्यागः सन्ध्यादीनां विधीयते ।

अपोश्चानद्वयं त्यक्त्वा पञ्चप्राणाहुतीरपि ॥

अत्र सर्वत्र मृतकपदं मृतकस्याप्युपलक्षणमिति बहवः ।

अथ श्रौतस्मार्तहोमेति कर्तव्यतामाह ।

याज्ञवल्क्यः—

वैतानोपासनाः कार्याः क्रियाश्च श्रुतिचोदिताः । (३।१।१७)

वितानोऽग्नीनां गार्हपत्यादीनां समूहस्तत्र भवा अग्निहोत्रदर्शपूर्ण-
मासायाः । उपास्यते प्रत्यहमित्युपासनो गृह्याग्निस्तत्र भवाः सायंप्रा-
तर्होमरूपाश्च क्रियाः ‘यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहुयात्’ तथा ‘अहरहः
स्वाहा कुर्यात्’ इत्यादिश्रुतिविहितत्वात्कार्याः । यद्यपि ‘वैतानोपास-
नाः कार्याः’ इति सामान्येनोक्तं तथाऽपि अन्येनैव कारयितव्यम्
‘अन्य एतानि कुर्युः’ इति पैठीनसिस्मरणात् । यद्यपि साङ्गे कर्मण्य-
कर्तृत्वं, तथाऽपि स्वद्रव्यस्यागात्मकं प्रधानं स्वयं कुर्यादिति वि-
ज्ञानेस्वरूप्याख्या । लाहूरुप्याख्या त्वेकवन्नान्तं पाठमादाय वितान-
स्येवं वैतानी सा चासावुपासना च ‘हुत्वाग्निंस्तादुपास्य च’ इति
वचनविहिताऽशौचेऽपि कार्या । तथा वितानं सबन्धिन एव प्रस-
न्नश्रुतिविहिता अग्निहोत्रादिकाश्च क्रियाः कार्याः । अत्र च वितानेन
क्रियाणां विशेषितत्वात् । प्रत्यक्षश्रुतिविहिता अपि ब्रह्मयज्ञादि-

क्रिया न कार्याः, अवैतानिकृत्वात् । श्रुतिविहितत्वेनच विशेष-
णाद्वैश्वानर्यादयो न कार्याः, प्रत्यक्षश्रुतिविधानाभावादिति ।
मनुरपि—

न वर्द्धयेदघाहानि प्रत्यूहन्नाग्निषु क्रियाः ।

न च तत्कर्म कुर्वाणः सनाभ्योऽप्यशुचिर्भवेत् ॥ इति ।

अस्याऽऽद्यपदार्थमाह मेधातिथिः—‘यस्यैषा बुद्धिः—‘य उक्ता-
स्यहादयः कल्पास्ते तुल्यबद्धिकल्पन्ते इति एकम्हादिपक्षं परित्य-
ज्य निष्कर्मत्वसुखानुरोधेन दशाहपक्षमुपाश्रयामि’ इति, तं प्रत्युच्यते
न वर्द्धयेदघाहानि इति । नैते तुल्या अपि तु व्यवस्थिता एवेति’ ।
अन्ये त्वमुं पादमन्यथा व्योचक्षते—अतीतेष्वप्यहस्तु यावत्स्नाना-
दिक्रिया न कृतास्तावन्नैव श्रद्धिः, ‘विप्रः शुद्धयत्यपः स्पृष्ट्वा’
इत्यादिवचनात् । तत्राशुचित्वादननुष्ठाने न दुष्यामीति स्नानादिषु
शुद्धये न प्रवर्तते, तस्येदमुच्यते—‘न वर्द्धयेत्’ इति ! अतीतेष्वहः
सु बाह्यशौचे न विलम्बितकर्ममिति । नारायणसर्वज्ञस्तु मेधातिथि-
व्याख्यामेवानुमेने ।

अथ त्रिपाद्यर्थमाह मेधातिथिः—प्रत्यूहेदिति । अशुचित्वात्सर्व-
श्रौतस्मार्तानिवृत्तौ प्राप्तायामिदमुच्यते । आग्निषु क्रियाः सायंहोमा-
द्या न प्रत्यूहेन्न प्रत्यस्येत् । प्रत्यूहो निरासः, अननुष्ठानमिति यावत् ।
न च स्वयं कुर्याद्यत आह—न च तत्कर्म कुर्वाणः सनाभ्योऽपीति ।
सनाभ्योऽपि नाशुचिः स्यात्किं पुनरन्यः । तथाच गृह्यं—‘नित्यानि
निवर्तेरन्वैतानवर्ज, शालाशौ चैके’ इत्युक्त्वा आह ‘अन्य एतानि कु-
र्युः’ इति । नारायणसर्वज्ञस्तु त्रिपाद्यर्थमन्यथैवाह—न प्रत्यूहेदिति
न कुर्यादग्निषु श्रौतेषु होमादिक्रिया नित्याः । तच्छ्रौताग्निस्मन्धिकर्म
सनाभ्यः सपिण्डोऽन्वोपि यः साग्निः सोऽपि स्वतो होमासम्भवे
ऽस्याग्निषु होमं कुर्वन्नाशुचिः किमुत स्वयमित्यर्थ इति । अदीपस्तु
आत्विज्यपरत्रया व्याचष्टे—श्रौतस्मार्ताग्निषु या हविर्विज्ञपाकयज्ञा-

दिनित्याक्रिया उक्तास्ता आशौचेऽपि न त्यजेत् । तत्राऽशौचपर्यु-
दासात् । नचेति । तद्विविधज्ञादि कर्मास्त्रिंशत् कुर्वाणः सनाभ्योऽपि
यजमानस्य सपिण्डोऽपि नाशुचिः सुतरां यजमान इति । तदिद-
मसंमतं लाहरस्य । आशौचे सत्यपि ताः कुर्यात् । ननुचाशुचेः
क्रियस्वनधिकारात्तत्प्रत्युह एवोचित इत्यत आह नचेति । अत्र
कुर्वाण इत्यात्मनेपदाधिकारात्तत्कर्म कुर्वन्सनाभ्योऽपि जात-
मृतयोः प्रत्यासन्नोऽपि नाशुचिर्भवति, किन्तु शुचिरेवेति गम्यते ।
तेन सनाभ्यानामास्त्रिंशद्येऽपि भवत्येवाशौचमिति ॥

तदेवं व्याख्याविप्रतिपत्तौ देशकालानुरोधेन यथाचारं व्यव-
स्या ज्ञेया ।

पारस्करः—नित्यानि निवर्तेरन् इति निषेधः । तत्र प्रतिप्रसवः
वैतानवर्जमिति । तेन वैतानस्य नित्यैव कर्तव्यता ।

‘अत्र विशेषमाह हारीतः—

कर्म वैतानिकं कार्यं स्नानोपस्पर्शनात्स्वयम् ।

न तु सत्रस्य तिच्छेदं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥

त्रेताधर्मोपरोधार्थमुपस्पृश्य पिता शुचिः ॥ इति ।

आशौचे स्नात्वाऽऽचम्य वैतानिकं कर्माग्निहोत्रादिकं तत्तका-
ले स्वयं कुर्यात् । सत्रं नित्यानुष्ठेयमग्निहोत्रादि । त्रेतासाध्यस्य ध-
र्मस्योपरोधार्थमनुरोधार्थमनुष्ठानार्थमिति यावत् । उपस्पृश्याऽऽचम्य-
पिता यजमानो यतः शुचिः स्यादिति पूर्वत्रैव हेतुकथनमित्यर्थः ।

उक्तं च गोभिलेन—

अग्निहोत्रस्य होमार्थं शुचिस्तात्कालिकी भवेत् ।

पञ्चयज्ञान् कुर्वीत ह्यशुद्धः पुनरेव सः ॥ इति ।

वैद्याग्रपादोऽप्याह—

स्मार्तकर्मपरित्यागो राहोरन्यत्र मृतके ।

श्रौते कर्मणि तत्कालं स्नातः शुद्धिमवाप्नुयात् ॥ इति ।

आशौचादौ श्रौतस्मार्तहोमकर्तव्यतानिर्णयः । १९५

प्रयोगपारिजाते स्मृत्यन्तरमपि—

वर्जयेत्सूतके कर्म नित्यमैमिचिकादिकम् । ..

आहिताग्नेः सदा शुद्धिः सद्य एव विधीयते ॥ इति ।

जाबालोऽपि—

उभयत्र दशाहानि सपिण्डानामशौचकम् ।

स्नानोपस्पर्शनात्पश्चादग्निहोत्रार्थमर्हति ॥

आशौचे यांनि कर्माणि कर्तव्यानीति विशेषत्रिधिरस्ति तेषु तात्कालिकी कर्मसङ्कल्पपूर्वक्षणपारभ्य कर्मापवर्गक्षणपर्यन्तं तत्कर्मयोग्यत्वलक्षणा शुद्धिर्बेदितव्या, येषां पुनर्पश्चमहायज्ञादीनामाशौचे कर्तव्यताविधिर्नास्ति तेषु कर्मस्वयोग्यतैवेत्यर्थः । यदि तु स्वयमशक्तस्तदा सपिण्डेनाप्यग्निहोत्रादि कारयेत् ।

तदुक्तं मनुना—

‘प्रस्यूहृन्नाग्निषु क्लियाः’ ।

न च तत्कर्म कुर्वाणस्सनाभ्योऽप्यशुचिर्भवेत् ॥ इति ।

तच्छ्रौताग्निसाध्यं कर्म कुर्वन्सनाभ्यस्सपिण्डोऽपि नाशुचिः, किन्तु शुचिरेवेत्यर्थः । अस्यचान्ये व्याख्यापक्षाः पूर्वं प्रदर्शित्वा एव । तस्याप्यसम्भवेऽन्येन कारयितव्यम्, ‘अन्य एतानि कुर्युः’ इति पैठीनसिस्मरणादिति केचित् । अन्ये असपिण्डा इत्यर्थः । एवं यथाकथञ्चिदपि कर्तव्यमेव श्रौतं, न तु त्याज्यम् ।

तदाह जाबालः—

जन्महान्योर्वितान्यस्य कर्मत्यागो न विद्यते । इति ।

परीचिस्तु प्रत्यवापमेवाह—

दर्शं च पौर्णमासं च कर्मवैतानिकं च यत् ।

सूतकेऽपि त्यजन्मोहात्प्रायश्चित्तीयते द्विजः ॥

पुलस्त्योऽपि—

सन्ध्यामिष्टिं चर्चं हौमं यावज्जीवं समाचरेत् ।

न त्यजेत्सूतके वाऽपि त्यजन्गच्छेदधो द्विजः ॥ इति ।

सन्ध्या यथा सूतके उपादिष्टा, ईष्टिराहितमेर्दशपूर्णमासादिका, चरुराह्रिताग्नेः स्थालीपाकादिरूपः ।

अत्र प्रयोगपारिजातः—श्रौतानामप्याग्निहोत्रादीनां प्रथमारम्भात्प्रागा शौचे एव । प्रतिप्रसवविधीनां प्रथमारम्भोत्तरकालानुष्ठेयाग्निहोत्रादिविषयत्वादिति व्याचष्टे । यत्तु—

तो चापि सूतके शावे पर्वणीष्टिं महापदि ।

स्त्रीधर्मिण्यां च भार्यायां न कुर्यातां कदाचन ॥

इत्याश्वलायनवचनम्, तत्काम्येष्टिपरम्, “काम्या इष्टीश्च वर्जयेत्” इति वसिष्ठस्मरणात् । यद्वा विहितप्रतिषिद्धत्वादिष्टौ विकल्पः । ताविति प्रकरणात् श्रौतस्मार्तानुष्ठातारौ । यदपि च—

स्मार्ताग्निः सूतके शावे स्वयं न जुहुयाद्विजः ।

श्रौताग्निस्तु सकृद्धुत्वा समाप्ते वा स्वयं हुनेत् ॥

इत्याश्वलायनवचनं, तस्याप्ययमर्थः—श्रौताग्निस्तुतकसम्भावनायां प्रथममेवाऽग्रतनान् होमान्कृष्य सकृदेव जुहुयात् । समाप्ते वा सूतकेऽतिहोमान् प्रायश्चित्तपूर्वकान् । न च होमत्रयात्त्रिपाते पुनराधानमिति वाच्यम् । वचनेन दशरात्रं होमातिपातेऽपि होमस्यैवोक्तत्वात् । तदेवं स्वयं होमाशक्तौ सपिण्डस्यान्यस्य च अभावे आकृष्योत्कृष्य वा होमः कार्य इति पक्षान्तरमुपादिश्यते इति न विरोधः ॥

अथ स्मार्तहोमनिर्णयः ।

तत्र जावालः—

जन्महान्योर्वितानस्य कर्मत्यागो न विद्यते ।

शालाघ्नौ केवलो होमः कार्य एवान्नगोत्रजैः ॥

सूतके तु समुत्पन्ने स्मार्तं कर्म कथं भवेत् ।

पिण्डयज्ञं चरुं होमसगोत्रेण कारयेत् ॥

पिण्डयज्ञः पिण्डापितृयज्ञः । चरुः श्रवणाकर्माश्वयुज्यादिकः
स्यालीपाकर्हामश्च । होम औपासज्ञहोमः । असगोत्रोऽसपिण्डः । सपि-
ण्डनिषेधस्याशौचनिमित्तत्वादाशौचरहितेन ब्रह्मचारिणासपिण्डे-
नापि होतव्यमिति गम्यते । कारयेदिति । विधिवत्स्मार्तकर्मणि स्या-
गमात्रे एव यजमानस्य शुद्धिर्नतरत्र, तस्यानन्यनिष्पाद्यत्वात् ।
अत एव बृहस्पतिः—

सूतके सूतके चैव अशक्तौ श्राद्धभोजने ।

प्रवासादिनिमित्तेषु हावयेन्न तु हापयेत् ॥

यद्वृष्टाऽग्नौ हावयेदित्यनारभ्योक्तं तत्किंविषयमिति प्रश्नपूर्वकं
तद्विषयमाह कात्यायनः—

हावयेदिति किं तत्स्यादनारभ्य विधानतः ।

सूतके च प्रवक्षे च स्वाशक्तौ श्राद्धभोजने ॥

एत्रमादिनिमित्तेषु हावयेदिति योजयेत् ॥

पारस्करस्तु स्मार्तकर्मणः पाक्षिकमनुष्ठानमाह—‘शालाग्रौ
चैके’ इति । नित्यानि निवर्तयन्ति निषेधस्य शालाग्रौ चैक इति
पाक्षिकः प्रतिप्रसवः । तेन गृह्याग्निसाध्यवैकल्पिकमनुष्ठानम् । तत्रा-
नुष्ठानपक्षे विशेषमाह—‘अन्य एतानि कुर्युः’ इति । अन्येऽस-
पिण्डाः कुर्युः अन्यैः कारयेदित्यर्थः । तदेतत्स्पष्टमेवाभिहितं पूर्व-
वाच्यैः । तेन स्मार्ताग्नौ स्वयं होमो न कर्तव्य इति तत्त्वम् । तदे-
तत्स्पष्टमाहाश्वलायनः—

स्मार्ताग्निः सूतके शावे स्वयं न जुहुयाद्भिजः । इति ।

अन्याभावे विशेषमाह स एव—

स्मार्ताग्निनाऽत्मनोऽन्येषामभावे सूतकादिषु ।

समारोप्य तद्वन्ते तु विहृत्य जुहुयात्स्वयम् ॥ इति ।

आत्मनः सूतकादिषु तम्भावितेषु अन्येषां चाभावे सूतकात्प्रा-
गेव समारोप्य सूतकान्ते विहृत्य प्रायश्चित्तपूर्वकमतीतहोमं कुर्या-
दित्यर्थः ॥

अथ श्रौतहोमे द्रव्याणि ।

तत्र कात्यायनः—सूतक इत्युपक्रम्य—

होमः श्रौते तु कर्त्तव्यः शुष्काग्नेनापि वा फलेः ।

सम्बर्तोऽपि—

होमं तत्र प्रकुर्वीत शुष्काग्नेन फलेन वा ।

पञ्चयज्ञविधानं च न कुर्यान्मृत्युजन्मनोः ॥

तत्र—श्रौताग्नावित्यर्थः । शुष्काग्निं—व्रीहियवादि ।

अथ स्मार्तहोमद्रव्याणि ।

तत्र कात्यायनः—

अकृतं हविषेस्मार्ते तदभावे कृताकृतम् ।

व्रीह्यादि चाकृतं प्रोक्तमिति हव्यं त्रिधा बुधैः ॥

ब्रह्मचारिणं प्रत्याह कात्यायनः—

न त्यजेत्सूतके कर्म ब्रह्मचारी स्वयं ववचित् । इति ।

सन्निवृत्तिब्रह्मचारिदातृब्रह्मविदां तथा ।

इत्युपक्रम्य—“सद्यः शौचं विधीयते”

इति याज्ञवल्क्येनाशौचाभावबोधनात् ॥ (३।१.२९)

अथ काम्येऽपि प्रतिप्रसवः ।

तत्र पुलस्त्यः—सद्यः शौचमित्यनुवृत्तौ—

सन्निहित्यमुपस्पृश्य राहुग्रस्ते दिवाकरे ।

सत्रधर्मप्रवृत्तस्य दानकर्मफलैविणः ॥

अस्यार्थमाह पारिजातः—दानधर्मसाध्यफलकामस्यापि राहु-
ग्रस्ते दिवाकरे सति सन्निहिततीर्थविशेषे स्नात्वा दाने प्रवृत्तस्य
सद्यः शौचम् । तथा अन्नसत्रधर्मप्रवृत्तस्य तत्फलार्थिनोऽपि सद्यः
शौचमिति ।

अग्निराः—

राक्ष्यनावास्तु येन स्याद्विना राहः स्वमण्डले ।

प्रयास्यस्तत्र संज्ञामे होमे प्रास्थानिके सति ॥

मन्त्रादितर्पणे चाऽपि प्रजानां शान्तिकर्माणि ।

गोमण्डलादौ वैश्यानां कृषिकालात्ययेष्वपि ॥ ..

आशौचं न भवेत्लोके सर्वत्रान्यत्र विद्यते ॥

अथ नैमित्तिकेऽपि क्वचित्प्रसवमाह

बृहस्पतिः—

कन्याविवाहे संक्रान्तौ मृतकं न कदाचन । इति ।

विवाहे पूर्वसम्भृतसम्भारे,

यज्ञे सम्भृतसम्भारे विवाहे श्राद्धकर्मणि ।

इति स्मृत्यन्तरात् ।

विवाहात्सवयज्ञेषु त्वन्तरा मृतमृतके ।

शेषमन्नं परैर्देयं दान्मृत् भोक्तृंश्च न स्पृशेत् ॥

इति वचनाच्च । यज्ञेऽपि पूर्व [संभृत] संभार इत्येव पूर्ववाक्यानु-
रोधात् । विवाह इति चालाद्युपलक्षणार्थम् । यज्ञ इति प्रतिष्ठाद्युत्सव-
मात्रोपलक्षणम् ।

पैठीनासिरपि—

विवाहात्सवयज्ञेषु यात्रायां तीर्थकर्मणि ।

न तत्र मृतकं तद्दत्तकर्म यज्ञादि कारयेत् ॥ इति ।

विप्लवाभावेऽपि क्वचिद्देशविशेषेण शुद्धिरनेनोक्तेति वि-

ज्ञानेश्वरः ।

बृहद्वसिष्ठोऽपि—

चन्द्रसूर्यग्रहे स्नायात्सूतके मृतकेऽपि च ।

अस्नायी मृत्युमाप्नोति स्नायी मृत्युं न विन्दति ॥

तथा मदनेऽपि—

मृतके मृतके चैव न दोषो राहुदर्शने ।

तावदेष भवेच्छुद्धिर्यावन्मृत्किर्न दृश्यते ॥ इति ।

नित्यनैमित्तिककाम्येष्वनन्यगतिकेष्वपि क्वचित्प्रतिप्रसवमाह

जमदग्निः—

मृतके मृतके वाऽपि जाह्नव्या सखिलेति स्यः ।

नाभिमन्त्रे जले स्थित्वा कुर्याद् दानजपादिकम् ॥

..निसं नैमित्तिकं काम्यमप्यनन्यगतिकमिति शेषः ।

तथा पुण्ड्रस्त्योऽपि— •

अम्बुमध्ये गवां गोष्ठे तीर्थेष्वपि च पर्वसु ।

राशोर्दर्शनकाले च सूतकं नैव विद्यते ॥ इति ।

अम्बुमध्ये गवांगोष्ठे इति चावश्यकनित्यकाम्याभिप्रायेण,
इतरत्सर्वभावश्यकत्रैर्मित्तिकाभिप्रायेण । अथान्येष्वपि केषुचित्
केषांश्चित्प्रतिप्रसवः ।

तत्र याज्ञवल्क्यः—

महीपतीनां नाशौचं हतानां विद्युता तथा ।

गोब्राह्मणार्थे संग्रामे यस्य चेच्छति भूमिषः ॥ (४।१।२७)

महीपतीनां यदमाधारण्येन विहितं 'प्रजापालनादि तदुपयो-
गिषु दानमानादिषु नाशौचं, नत्वन्यत्र । विद्युद्धतस्य, गोब्राह्मण-
रक्षार्थं मृतस्य च गोत्रिणां तन्मरणनिमित्तं नाशौचम् । यस्य च पुरो-
हितमन्त्रादि शान्तिकादिमन्त्राद्यर्थं राजा इच्छति तस्य च
नाशौचम् ।

मनुः—

राज्ञो माहात्मिके स्थाने सद्यः शौचं विधीयते ।

प्रजानां परिरक्षार्थं तदेवात्रैव कारणम् (१) ॥ (५।९४)

गौतमोऽपि "राज्ञां च कार्याविधातार्थम्" इति । आशौचा-
भावं इति शेषः । अन्येषामप्याशौचाभावमाह प्रचेताः—

कारवः शिल्पिनो वैद्या दासीदासास्तथैव च ।

राजानो राजभृत्याश्च सद्यःशौचाः प्रकीर्तिताः ॥

श्रुतातपः—

मूल्यकर्मकराः शूद्रा दासीदासास्तथैव च ।

स्नाने क्षरीरसंस्कारे गृहकर्मण्यद्वेषिताः ॥

स्मृत्यन्तरे—

सद्यःस्पृशो गर्भदासो भक्तदासस्यहास्तुचिः ।

तथा—

चिकित्सको यत्कुरुते तदन्येन न शक्यते ।

तस्माच्चिकित्सकः स्पर्शो शुद्धो भवति नित्यश्वः ॥

याज्ञवल्क्यः—

ऋत्विजा दीक्षितानां च यज्ञियं कर्म कुर्वताम् ।

सत्रिव्रतिब्रह्मचास्दिातृब्रह्मविदां तथा ॥

दाने विवाहे यज्ञे च सङ्ग्रामे देशविप्लवे ।

आपद्यपि च कष्टायां सद्यः शौचं विधीयते ॥ (या. ३।२९)

माधवीये—

निस्रमर्कप्रदस्यापि कृच्छ्रचान्द्रायणादिषु ।

प्रवृत्ते कृच्छ्रहोमादौ ब्राह्मणादिषु भोजने ॥

गृहीतनियमस्यापि न स्यादन्यस्य कस्यचित् ।

प्रायश्चित्तप्रवृत्तानां दातृब्रह्मविदां तथा ॥ इति ।

लाहरे ब्रह्मपुराणे—

गृहीतमधुपर्कस्य यजमानाश्च ऋत्विजः ।

पश्चाद्दशाहे पतिते न भवेदिति निश्चयः ॥

तद्दृष्ट्वा गृहीतदीक्षस्य त्रैविद्यस्य महापत्ने ।

स्नानं त्ववभृथे यावत्तावत्तस्य न विद्यते ॥

नैष्ठिकस्याऽथवाऽन्यस्य भिक्षार्थं प्रस्थितस्य च ।

वानप्रस्थस्य वाऽन्यस्य साधिकारस्य सर्वदा ॥

मतिग्रहाधिकारश्च न प्रवृत्तस्य विद्यते ।

गोमङ्गलादौ वैश्यानां रक्षाकालात्ययेष्वपि ॥

अथ दातृगृहीत्रो मृतके मृतकेऽथवा ।

अविज्ञाते न दोषः स्यात्स्त्राद्धादिषु कदाचन ।

विज्ञाते भोक्तुरेषु स्वात्प्रायश्चित्तादिकं क्रमात् ॥

भोजनार्थे तु सम्भुक्ते विप्रैर्दातुर्विपद्यते ।

यदा काश्चित्दोच्छिष्टश्रेष्ठं त्यक्त्वा समाहितः ॥

आचम्य परकरीयेन जलेन शुचयो द्विजाः ॥

ऋतुः—

पूर्वसङ्कल्पितं द्रव्यं दीयमानं न दुष्यति ॥ इति ।

जाषाळः—

ब्रह्मचारिणि भूपे च यतौ शिल्पिनि दीक्षिते ।

यज्ञे विवाहे सत्रे च सूतकं न कदाचन ॥ इति ।

अत्र च सर्वेष्वपि वाक्येषु तत्तत्कर्मनिमित्तैः शब्दैस्तत्त-
त्कर्मणामसाधारणेनोपास्थितत्वात्तत्रैवाशौचाभावोऽवगन्तव्यो न
सर्वत्र । अत एव विष्णुस्तत्तत्कर्मपुरस्कारेणैवाशौचाभावं दर्शयति—
'न राङ्गः कर्मणि न व्रतिनां व्रते न सत्रिणां सत्रे न कारुणां
'कारुकर्मणि' इति । एवमन्यत्राऽप्युहनीयम् । इत्याशौचे वि-
हितनिषिद्धकर्मणि ॥

अथ अशौचान्तदिनकृत्यम् ।

ब्रह्मपुराणे—

यस्य यस्य तु वर्णस्य यद्यत्स्यात्पश्चिमं त्वहः ।

तत्र बस्त्रविशुद्धिं च गृहशुद्धिं च कारयेत् ॥

सर्माप्य दशमं पिण्डं यथाशास्त्रमुदाहृतम् ।

ग्रामाद् बहिस्ततो गत्वा प्रेतस्पृष्टे च वाससी ॥

अन्त्यानामाश्रितानां च त्यक्त्वा स्नानं करोति च ।

श्मश्रुलोपनखानां च यथाज्यं तज्जहात्यपि ॥

गौरसर्षपकल्केन तिळतैलेन संयुतः ।

शिरःस्नानं ततः कृत्वा तोयेनाचम्य वाग्वतः ॥

वासोयुगं नवं शुकुमव्रणं शुद्धमेव च ॥

गृहीत्वा गां सुवर्णं च मङ्गलानि शुभानि च ॥

स्पृष्ट्वा सङ्कीर्तयित्वा च पश्चाच्छुद्धो भवेन्नरः ।

पश्चिममाशौचान्तं गृहस्थाद्विकल्पेन पूर्वभाण्डत्यागश्च । इमंशुद्धो-
मेति । एतन्माशौचान्ते वपनमाशौचनिवृत्त्यर्थम् ।

दशमेऽहनि सम्प्राप्ते स्नानं ग्रामाद्बहिर्भवेत् ।

तत्र त्पाण्यानि वासांसि केशश्मश्रुतंस्वप्नि च ॥

गृहस्पतिः—

प्रथमेऽह्नि तृतीये च पञ्चमे सप्तमेऽपि च ।

नवमे वाससां त्पाण्यो नखलोम्नां तथाऽन्तिमे ॥ इति

मार्कण्डेयः—

तैलाभ्यङ्गो बान्धवानामङ्गसंवाहनादिकम् ।

तेन चाप्यायते जन्तुर्यच्चाश्नन्ति स्ववान्धवाः ॥

अथ क्षौरकर्म ।

तच्च सर्वेषामपि पुत्राणां प्रथमेऽहन्यावश्यकम् ।

गङ्गायां भास्करक्षेत्रे मातापित्रोर्गुरोर्भृतौ ।

आधाने सोमयागे च वपनं सप्तसु स्मृतम् ॥

इति परिशिष्टात् । गुरुर्मन्त्रोपदेष्टा । अत्र पक्षान्तरमाह देवकः—

क्रियां च कुरुते यस्तु तद्दिने तस्य मुण्डनम् ।

लक्ष्मीयसां दशाहे तु पुत्राणां वपनं स्मृतम् ॥ इति ।

अप्रस्तम्बः—‘अनुभाविनां च परिवापनम्’ इति । अ-

स्यायमर्थः—श्रावं दुःखमनुभवन्तीत्यनुभाविनः सपिण्डास्तेषां

तथा अनु पश्चाद्भवन्ति इत्यनुभाविनोऽल्पवयसस्तेषाम् । अनु-

भाविनः पुत्रा एवेत्येके । अत्र यद्यपि—

वपनं मैथुनं तीर्थे वर्जयेद्भूमिणीपतिः ।

इत्यादिवाक्यैर्गर्भिणीपतेर्वपनं निषिद्धं तथाऽपि पित्रादीनां
केषचिन्मरणे गर्भिणीपतिरपि वापयेदेव ।

तदुक्तं बृहन्मनुना ज्योतिर्निषन्धे—

क्षौरं नैमित्तिकं कार्यं निषेधे सत्यपि ध्रुवम् ।

पित्रोः प्रेतविधानं च न दोषस्तत्र विद्यते ॥

माता पिता तयोर्भ्राता स्वधुरोऽग्रयो गुरुर्मृतौ ।

एषां स्त्रीणां भगिन्याश्च गर्भवानपि वापयेत् ॥ इति ।

स्त्रीणां गर्भवानपि गर्भिणीपतिरपि एषां पित्रादीनां मृतौ
वापयेदित्यर्थः ।

मृतके मृतके क्षौरं न कुर्याद्दशमेऽन्दि यः ।

तस्याशौचं भवेन्नित्यं पितरो नरके स्थिताः ॥

इतिसङ्ग्रहे दोषश्रवणात् । मृतके मरणानिमित्ते मृतके इत्यर्थः ।

यद्वा मृतकेऽपि इमक्षत्रादेः क्षौरमस्त्येव । यत्तु—

द्वितीयेऽहनि कर्तव्यं क्षुरकर्म प्रयत्नतः ।

तृतीये पञ्चमे वाऽपि सप्तमे वाऽऽप्रदानतः ॥

इत्यनेकपक्षोत्कीर्तनं तत्पूर्वपूर्वासम्भवविषयम् ।

तथाच बाधायनः—

अनुसक्तेशो यः पूर्वं सोऽत्र केशान् प्रवापयेत् ।

द्वितीयेऽहनि तृतीयेऽहनि पञ्चमे सप्तमेऽपि वा ॥

यावच्छ्राद्धं प्रदीपेत तावदित्यपरं मतम् ॥ इति ।

पूर्वं प्रथमदिन इत्यर्थः । प्रेतपत्न्या त्वाशौचान्ते मुण्डनं
कार्यमिति व्यासः—

पुत्रः पत्नी च वपनं कुर्यादन्त्ये यथाविति ।

पिण्डदानोचितोऽन्योऽपि कुर्यादित्यं स्मार्हितः ॥

अन्त्ये—आशौचान्तादिन इत्यर्थः । विष्णुस्तु—पञ्चान्तरमाह—

‘द्वादशाऽश्राद्धं कृत्वा त्रयोदशेऽन्दि वा कुर्यात्’ इति ॥

उत्तरीयादि विपर्यये निर्णयः ।

२०६

अथ त्रैवर्णिकस्य प्रमांदाच्छिखानाशे काठक-
गृह्यपरिशिष्टे विधिरुक्तः—

“शिखावर्जं वपनं, प्रमादात्तद्वपने कौशीं शिखां ब्रह्मग्रन्थि-
युतां दक्षिणकर्णे निदध्यादेश विधिः शिखानाशे” इति । अत्र
पुनःसंस्कारोऽप्युक्तः सङ्गृहे—

शिखां छिन्दन्ति ये मोहाद् द्वेषादज्ञानतोऽपि वा ।

पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजात्म्यः ॥ इति ।

अथोत्तरीयादिविपर्यये निर्णयः ।

तत्र बाधायनः—

उत्तरीय-शिलापात्र-कर्तृ-द्रव्य-विपर्यये ।

पिण्डोदकं नवश्राद्धं पुनः कार्यं यथाविधि ॥

पारस्करः—

गृहीत्वा प्रेतपाषाणं गच्छेद्देशविपर्यये ।

अपकृत्यापि कुर्वीत न त्वेतदवशेषयेत् ॥

उदकं पिण्डदानं च दशाहाभ्यन्तरे यदि ।

अतिक्रमेद्दशाहान्तं सर्वं पूर्ववदाचरेत् ॥

त्रिकाण्डमण्डनः—

शिला विनाशोपहता यदाऽन्यमायातुमन्त्रेण निश्चय दर्भे ।

यमाय सोमं मुनुतेति मन्त्रैः स्रुवेण ह्रत्वा त्रिभिरुज्ज्यमग्नौ ॥

नष्टं यदि स्यात्पुनरेव दष्टं दत्त्वाऽञ्जलीनेव विधिक्रमेण ।

यमे इत्येवेत्यमयुगं प्रयुज्य तत्रैव सर्वं विधेयम् ॥

व्यासः—

श्वशूकरशृगालाद्यैर्ग्रामकुक्कुटकैरपि ।

वाण्डलकरभैः पिण्डसंस्पर्शे तु प्रमादतः ॥

कुङ्कुमप्रथं चरेत्पिण्डमिति व्यासोऽब्रवीन्मुनिः ॥

अथ दशाहान्तर्दर्शपांते निर्णयः ॥

तत्र भविष्यत्पुराणम्—

प्रवृत्ताशौचतन्त्रस्तु यदि दर्शं प्रपद्यते ।

समाप्य चोदकं पिण्डान् स्नानमात्रं समाचरेत् ॥

आशौचसमाप्तिं यावदित्यर्थः । ऋश्यशृङ्गः—

आशौचमन्तरादर्शो यदि स्यात्सर्ववर्णिनाम् ।

समाप्तिं श्रेततन्त्रस्य कुर्यादित्याह गौतमः ॥

पैठीनसिः—

आद्यैन्दवे च कर्तव्या श्रेतपिण्डोदकक्रिया ।

द्विरैन्दवे तु कुर्वाणः पुनः श्रावं समश्नुते ॥

द्विरैन्दवे-सयिष्णु-वर्धिष्णु-चन्द्रद्वयमध्ये । धर्मतत्त्वालोकेऽपि

त्रयोदशी कलाभात्रा तिथौ यस्य श्रुतेर्भवेत् ।

नातिक्रम्य सिनीवालीं कुर्यात्तस्योदकक्रियाम् ॥

चतुर्दशीक्षणमृतस्ततः प्राप्नोत्यर्थातिथिम् ।

तिलोदकं तथा पिण्डाः समाप्या दशमेऽहनि ॥

एकादशेऽहनि श्राद्धं कुर्यादित्यङ्गिरोवचः ।

सङ्ग्रहेऽपि—

दर्शः संक्रमणं पातो दशाहान्तर्त्यदा भवेत् ।

तावतैवोत्तरं तन्त्रं समाप्यमिति केचन ॥

पितृविषये विशेषमाह गौतमः—

अन्तर्दशाहे दर्शश्चेत्त्रे सर्वं समापयेत् ।

पित्रोस्तु यावदाशौचं दद्यात्पिण्डं जलाञ्जलीन् ॥

प्रयोगसारेऽपि—

दशाहमध्ये दर्शश्चेत्पातः संक्रान्तिरेव च ।

मातापित्रोर्विनाऽन्येषां स दशाहं समापयेत् ॥

एतच्च ग्रहहात्पूर्वं दर्शपाते सति द्रष्टव्यम् । ग्रहानन्तरं

दर्शपाते पित्रोरपि सर्वं तन्त्रं समापनीयमिति केचित् ।

पित्रोराशौचमध्ये तुं यदि दर्शः समापतेत् ।

तावतैवोत्तरं तन्त्रं पर्यवस्येत्यहात्परम् ॥

इति गालववचनात् ।

दशाहमध्ये दर्शश्चेदूर्ध्वं तन्त्रं समापयेत् ।

त्रिरात्रादुत्तरं पित्रोः समाप्त्तमिति निर्णयः ॥

इति वचनादितिसिद्धान्तः, अन्येतु गालववचनं पित्राशौचेऽपि दर्शपाते समाप्तिरुत्तरतन्त्रस्योचिता, किमुतान्याशौचमध्ये इति कैमुतिकन्यायपरम् । तेन पितृव्यतिरिक्तविषये उत्तरतन्त्रसमाप्तिमात्रप्रदर्शकं न पितृत्रिव्येऽपि नियामकम् । यद्वा, क्षेत्रजदत्तकपुत्रयोर्शीजिप्रतिष्ठीतृपितृविषयं गालववचनम् । औरसपुत्रिकापुत्रयोर्मातापितृविषयं च गौतमवचनम् । यद्वा, सर्वेषां सर्वत्रापदनापत्कल्पाश्रयणेन वचनद्वयं च वाऽवस्थाप्यमिति वर्णयन्ति ॥

अथ दशाहान्तराशौचान्तरसन्निपाते निर्णयः ।

तत्र शातातपः—

अन्तर्दशाहे जननात्पश्चात्स्थान्मरणं यदि ।

प्रेतमृद्दिश्य कर्तव्यं पिण्डदानं स्वबन्धुभिः ॥

प्रारब्धे प्रेतपिण्डे तु मध्ये चेज्जननं भवेत् ।

तथैवाशौचपिण्डांस्तु शेषान्दद्याद्यथाविधि ॥ इति ।

गालवो-पि-

शावे तु मृतकं चेत्स्वाग्निशाशेषे तथैव च ।

नवश्राद्धानि देयानि यथाकालं यथाविधि ॥ इति ।

तथा शावाशौचयोः सन्निपातेऽपि प्रेतकृत्यं कार्यं, तुल्यन्यायंत्वादिति लाहरमिताक्षरयोरर्थः ॥

अथैकादशाहकृत्यम् ।

तत्रैकीषिष्टं कार्यम् ! तथाच विष्णुः—“अथाशौचापगमे सुस्नातः सुप्रज्ञाकृतपाणिपादस्त्वाचान्तुस्त्वेवं विधाने च ब्रा-

क्षणान् यथाशक्त्युदङ्मुखान् गन्धमाल्यवस्त्रालङ्कारादीभिः
 पूजितान् भोजयेत् । एकवन्वन्नाक्तदेवैकोद्दिष्टसन्निधावेकमेव
 तन्नामगोत्राभ्यां पिण्डं निर्वपेत् । भुक्तवत्सु ब्राह्मणेषु दक्षिण-
 याऽभिपूजितेषु प्रेतनामगोत्राभ्यां दत्ताऽक्षय्योदकेषु चतुरङ्गुल-
 पृथ्वीस्तावदन्तरालास्तावदर्धःखाता वितस्त्रयायतास्तिस्रः कर्षूः
 कुर्यात्, कर्षूसमीपे चाग्नित्रयमुपसमाधाय परिस्तीर्य तत्रैक-
 स्मिन्नाहुतित्रयं जुहुयात् । सोमाय पितृमते स्वधा नमः, अग्नये
 कव्यवाहनाय स्वधा नमः, यमायाङ्गिरसे स्वधा नमः । स्थानत्रये
 च प्राग्वत्पिण्डनिर्वपणं कुर्यात्ततो मधुघृतमांसैः कर्षूत्रयं पूरयित्वै-
 तत्त इति जपेत् । एवं मृताहे प्रतिमासं कुर्यात्” इति ।

कात्यायनोऽपि— अथैकोद्दिष्टमेकपात्रमेकोऽर्घ्य एकः पिण्डो-
 नावाहनं नाम्नौकरणं नात्र विश्वेदेवाः स्वदितमिति तृप्तिपदनः
 सुस्वदितमित्यनुज्ञानमुपतिष्ठतामित्यक्षय्यस्थाने अभिरम्यता-
 मिति विसर्गोऽभिरताः स्पहइत्यपरे’ इति ।

याज्ञवल्क्योऽपि—

एकोद्दिष्टं देवहीनमेकार्घ्यैकपात्रिकम् ।

आवाहनाग्नौकरणरहितं त्वपसव्यवत् ॥ (१२५१)

उपतिष्ठतामित्यक्षय्यस्थाने विप्रविसर्जने ।

अभिरम्यतामिति वदेद् ब्रूयुस्तेऽभिरताः स्पह ॥ इति ।

(१२५२)

चतुर्विंशतिमतेऽपि—

एकोद्दिष्टे पिण्डमेकं विकिरं च न कारयेत् ।

शातातपः—

एकोद्दिष्टं च यच्छ्राद्धं नैमित्तिकमिहोच्यते ।

तदप्यदैवं कर्तव्यमयुग्मानाश्रयेद् द्विजान् ॥

इदमेकोद्दिष्टं ब्राह्मणस्यैकादशाहे, अम्येषामाश्रौवांस्तदिन
 एव । यत्तु—‘आद्यमेकादशेऽहनि’ इति याज्ञवल्क्यवचनं, तदा-

शौचान्तोपलक्षणम् । 'अथशौचापगमे' इति विष्णुवचनादिति कल्पतरुः । 'मदनस्तु 'आद्यमेकादशेऽहनि' इत्यत्राद्योद्देशेनैकादशाहरूपकालविधानात्तस्य वाऽऽशौचापगम इति विष्णुवचनं ब्राह्मणविषयम् । तेन सत्रियादीनामपि आद्यश्राद्धमेकादशाह एवेति । तथाच वृद्धवसिष्ठः—

एकादशेऽह्नि यच्छ्राद्धं तत्सामान्यमुदाहृतम् ।

चतुर्णामपि वर्णानामाशौचं च पृथक् पृथक् ॥

शङ्खलोगाक्षी अपि—

अथ्यं श्राद्धमशुद्धोऽपि कुर्यादेकादशेऽहनि ।

कर्तुंस्तात्कालिकी शुद्धिरशुद्धः पुनरेव सः ॥ इति ।

यत्तु मत्स्यपुराणे—

एकादशेऽहनि तथा विप्रानेकादशैव तु ।

क्षत्रादिः सूतकान्ते तु भोजयेदयुजं द्विजान् ॥ इति ।

तत्प्रेततृप्त्यर्थमेकादशब्राह्मणभोजनरूपं रुद्रगणारूपं—

श्राद्धान्तरं, नत्वाद्यं षोडशान्तर्गतमिति । विज्ञानेश्वरोऽप्येवमेवाह । अत्रेदं चिन्त्यम्—चतुर्णामपि वर्णानां यावदाशौचं पिण्डदानमवगम्यते । तदुक्तं विष्णुना—'यावदाशौचं प्रेतस्योदकं पिण्डमेकं च दद्युः' इति । तथा ब्राह्मणादीनां चतुर्णामपि दशद्वादश पञ्चदश त्रिंशत्पिण्डा इत्युक्तं पारस्करेण—

ब्राह्मणे दश पिण्डा स्युः क्षत्रिये द्वादश स्मृताः ।

वैश्ये पञ्चदश प्रोक्ताः शूद्रे त्रिंशत्प्रकीर्तिताः ॥ इति ।

तथा वर्णविशेषेण दशपिण्डपक्षेऽपि दशमपिण्डस्यात्कर्षः प्र-

तिपार्थितौ ब्राह्मणपुराणे—

देयस्तु दशमः पिण्डो राज्ञा वै द्वादशेऽहनि ।

वैश्यानां (१) पञ्चदशमे देयस्तु दशमस्तथा ॥

शूद्राणां दशमः पिण्डो मास पूर्णे विधीयते ॥

(१) वैश्यानां वै पञ्चदशे' इति सिन्धुपाठः ।

तथा प्रचेताः—

पिण्डः शुद्धाय दातव्यो दिनान्यष्टौ नवाथवा ।

“ सम्पूर्णे तु ततो मासे पिण्डशेषं समापयेत् ॥

इत्यादिवाक्यैर्यावदाशौचं पिण्डदानासमाप्त्यवगमात्कथमवय-
वपिण्डासमाप्तावेकादशाहिकश्राद्धविधिरिति । तस्माद्भ्रवं व्या-
ख्येयम्—सत्रियादीनां यावदाशौचं पिण्डदानं मुख्यः कल्पः ।
दशमपिण्डोत्कर्षपक्षो मध्यमः । दशरात्रमेव दशपिण्डदानं गौणः
पक्ष इत्युक्तं प्राक् । तत्र प्रथमद्वितीयपक्षयोरशौचान्त एव एकादशा-
हिकश्राद्धविधानाद् ‘अथाशौचापगमे’ इति विष्णुवाक्यमर्थवत् ।

आशौचान्ते ततः सम्पत्पिण्डदानं समाप्यते ।

ततः श्राद्धं प्रदातव्यं सर्ववर्णेष्वयं विधिः ॥

इति मरीचिवचनेनैकमूलत्वात् । न च वैष्णवं ब्राह्मणविषयं
न सत्रियादिविषयमिति वाच्यम्, ‘सर्ववर्णेषु’ इति वचनाविरो-
धात् । ‘एकदशोऽह्नि यच्छ्राद्धम्’ इति वृद्धवसिष्ठवचनम्, ‘आद्यं-
श्राद्धमद्युद्धोऽपि’ इति शङ्खलौगाक्षिवचनं च दशरात्रमेव दशपि-
ण्डदानमिति स्मिन् तृतीये पक्षेऽर्थवद्भविष्यतीति न कस्यापि वि-
रोधः । एवं चाऽशौचान्ते सपिण्डीकरणमपि घटते ।

यदाह कात्यायनः—

सर्वेषामेव वर्णानामाशौचान्ते सपिण्डनम् । इति ।

वृद्धमनुरपि—

द्वादशोऽहनि विप्राणामाशौचान्ते तु भूमृताम् ।

वैश्यानां च त्रिपक्षादावथवा स्यात्सपिण्डनम् ॥ इति ।

तदेतत्सर्वं क्रमप्राप्तपत्रे दर्शयिष्यामः । न चैवं ‘न विधीयते
श्रद्धार्थः’ इति न्यायविरोधः । वचनान्नायस्य दुर्बलत्वादित्या-
स्तां तावत् । आहिताग्नेस्तु दाहादेकादशाहे, न तु मरणादित्याह
कात्यायनः—

श्राद्धमग्निमतः कार्यं दाहादेकादशोऽहनि ।

भुवाणि तु प्रकुर्वीत प्रमीताहनि सर्वदा ॥ इति ।

भुवाणि त्रैपक्षिकादूर्ध्वानि ।

अत एव जातुकर्ण्यः—

ऊर्ध्वं त्रिपक्षाद्यच्छादं मृताहन्येव तद्भवेत् ।

अथस्तु कारयेद्दाहादाहिताग्नेर्द्विजन्मनः ॥

मरणादेव कर्तव्यं संयोगो यस्य नाग्निना ।

दाहादूर्ध्वमशौचं स्याद्यस्य वैतानिको विधिः ॥ इति ।

अशौचमिति क्रियोपलक्षणम् । अग्निना-श्रौतेन, तेन न स्मार्ताग्नेर्निरग्नेश्च परिग्रहः ।

अथ येषां सद्यःशौचं तेषामपि आद्यमेकादशाह एवेत्याह शङ्खः—

सद्यःशौचेऽपि दातव्यं प्रेतस्यैकादशेऽहनि ।

स एव दिवसस्तस्य श्राद्धशय्यासनादिषु ॥

एतच्चानतिक्रान्तदशाहस्य, अतिक्रान्तविषये तु सद्य एवेति चिन्तामणिः । त्र्यहाशौचेऽप्येकादशाह एवेत्याहोशनाः—

त्र्यहाशौचेऽपि कर्तव्यमाद्यमेकादशेऽहनि ।

अतीतविषये सद्यस्त्र्यहादूर्ध्वं तदिष्यते ॥ इति ।

अतिक्रान्तविषये सद्यःशौचे सद्यः, त्र्यहाशौचे त्र्यहाद्यनन्तरमिति व्यवस्था । प्राच्यास्तु-सद्यस्कालिक-एकादिक-त्र्यहाद्या शौचपक्षेऽपि आशौचान्त एव श्राद्धमाहुः, विष्णुवाक्मानुरोधात् । संन्यासिनां त्वेकादशाहे पार्वणमेव न त्वेकोदिष्टमिस्त्राहोशनाः—

एकोदिष्टं न कुर्वीत यतीनां चैव सर्वदा ॥

अहन्येकादशे प्राप्ते पार्वणं तु त्वर्थायत ॥ इति ।

अथ यथाकथञ्चिदेकोदिष्टविषयसम्भवो विधिरुक्तः प्रयोगसूत्रे—

एकोदिष्टे तु सम्प्राप्ते त्वभावे द्रव्यविषयोः ।

प्राणाद्दहिः शुचौ देशे गोमयेनोपलिप्त च ॥

व्याहृत्याऽपि प्रतिष्ठाप्य तत्र होमं समाचरेत् ॥ इति ।
 अत्र होमपक्षेऽपि पुनर्ब्राह्मणभोजनं कार्यमित्याह गोभिलः—
 ब्राह्मणं भोजयेदाद्ये होतव्यमथवाऽनले ।
 पुनश्च भोजयेद्विषं हिरावृत्तिर्भवेदिति ॥
 एतदेकोद्दिष्टाकरणे संस्कर्तुर्नाशौचनिवृत्तिरित्याह शौचायनः—
 एकोद्दिष्टान्त एवायं संस्कर्ता मुच्यते स्वघात् ॥ इति ।
 अथ प्रेतश्राद्धधर्माः ।

सृष्टपरिशिष्टे—

प्रेतश्राद्धेषु धर्मेषु न स्वधा नाभिरम्यताम् ।
 स्वस्त्यस्तु विसृजेदेवं सकृत्प्रणववर्जितम् ॥
 एकोद्दिष्टस्य पिण्डे तु अत्रशब्दो न युज्यते ।
 पितृशब्दं च कुर्वीत पितृहा वोपजायते ॥
 अनूदकमधूपं च गन्धपात्रविवर्जितम् ।
 नभंश्राद्धममन्त्रं च पिण्डोदकविवर्जितम् ॥
 न स्वधेति स्वधावार्चनं नेत्यर्थः । न तु स्वधापदप्रयोग-
 निषेधः । 'स्वधोच्यतामिति वाचं विसृजेत्' इत्याश्वलायनोक्तंते ।
 अत्रशब्दो अत्र पितरो मादयध्वम् इति मन्त्रोपलक्षणार्थः ।
 अनूदकमनर्घ्यम् । पिण्डोदकम् अवनेजनम् ।

प्रयोगसारे—

एकोद्दिष्टे पिण्डमेकं विकिरं तु न कारयेत् ।
 न पूर्वावेदनं कुर्यान्न धूपं न प्रदीपनम् ॥
 न चाऽभिश्रवणं कुर्यान्नाशौकरणाभिव्यते ।
 प्रेतश्राद्धे न विकिर इति स्मृतिरन्नावरयामपि । सर्पिण्डी-
 करणमाकाळीनैकोद्दिष्टविषयमेतदिति श्राद्धकल्पचिन्तामणिप्र-
 सृतयः । यथाशास्त्रं व्यवस्थेत्यन्ये ।

प्रचेताः—

न पात्रमाकुर्य जपन्ति नाग्निषः प्रार्थयेदिति ।

संश्रवग्रहणं चैव न्युञ्जीकरणमेव च ॥

हारीतोऽपि—

नाशिवः प्रतिगृह्णन्ति नाशं विकिरेषु स्वधा निनयेत् पितृ-
मन्त्रवर्जं जपः । तथा—

नवश्राद्धेषु यच्छिष्टं गृहे प्रयुषितं च यत् ।

दम्पत्योश्चैकशेषं च तन्न मुञ्जीत कर्हिचित् ॥

स्मृत्यन्तरेऽपि—

आशिवो द्विगुणादर्धा जपाशीःस्वास्तिभ्राज्जनम्

पितृशब्दः स्वसम्बन्धः शर्मशब्दस्तथैव च ॥

पात्रालम्भोऽवगाहश्च उल्लुकोल्लेखनादिकम् ।

तृप्तिप्रदानश्च विकिरः शेषप्रदानस्तथैव च ॥

प्रदक्षिणा विसर्गश्च सीमान्तगमनं तथा ।

अष्टादश पदार्थाश्च प्रेतश्राद्धे विवर्जयेत् ॥

सपिण्डीकरणं • यांवहजुर्दभैः पितृक्रिया ॥

सपिण्डीकरणादूर्ध्वं द्विगुणैर्विधिवद्भवेत् ॥

धर्मपदीपे—प्रकारान्तरेणाष्टादश वस्तुनि निषिद्धानि, तानि
प्राग्दर्शितानि ।

अथैकादशाह एव कृत्यान्तरमाह

बृहस्पतिः—

बस्त्रालङ्कारशय्याद्यं पितुर्यद्वाहनायुधम् ।

गन्धमाल्यैः समभ्यर्च्य श्राद्धभोक्त्रे तदर्पयेत् ॥

सत्यव्रतः—‘दशम्यामतीतायामेकैकं तद्गृह्णित्य भोजयित्तेषां-
मेकस्मिन् गुणवत्ते शय्या देया, तथा वासोहिरण्यदास्युपानञ्ज-
नोर्दक्षुम्भदक्षिणाप्रदानं, ततः स्वस्त्ययनादिधर्माः प्रवर्तन्त’ इति ।

मत्स्यपुराणेऽपि—

आशौचान्ताद् द्वितीयेऽहिःशय्यां दद्याद्विलसणाम् ।

काञ्चनं पुरुषं तद्दत्तं फलवत्समन्वितम् ॥

हृषोत्सर्गं च कुर्यात् देया च • कपिला शूभा ।

अथ वृषोत्सर्गः ।

तत्र वृहस्पतिः:-

एकादशेऽङ्गि सम्प्राप्ते यस्य नोत्सृज्यते वृषः ।
मेतत्त्वं सुस्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धक्षतैरपि ॥

तर्लक्षणमाह शौनकः--

उत्सृजेत्लक्षणैर्युक्तं देवपित्रादितृक्षये ।

लोहितो यस्तु वर्णेन मुखे पुच्छं च पाण्डुरः ॥

श्वेतः सुरविषाणाभ्यां स नीलो वृष उच्यते ।

लक्षणान्तरमप्युक्तं ग्रन्थान्तरे--

चरणाश्च मुखं पुच्छं यस्य श्वेतानि गोपतेः ।

लाक्षया समवर्णश्च स नीलो वृष उच्यते ॥

नीलं बभ्रुं कपिलं कृष्णं पिङ्गलं लोहितं जीवद्गसायाः
पयस्विन्याः पुत्रं द्विहायनमेकहायनं वोत्सृजेदिति प्रयोगसारः ।

यथोक्तवृषाभावे प्रतिनिधिरपि कार्यं इत्युक्तं संग्रहे--

एकादशेऽङ्गि सम्प्राप्ते वृषाभावो भवेद्यदि ।

दभैः पिष्टैश्च सम्पाद्य तं वृषं मोचयद् बुधः ॥

चक्षुदो वाऽर्थे । दभैर्वा पिष्टैर्वेति विकल्पः । तदुक्तं तत्रैव-

वृषोत्सर्जनवेलायां वृषाभावः कथञ्चन ।

मृत्तिकाभिस्तु दभैर्वा वृषं कृत्वा विमोचयेत् ॥

प्रकारान्तरमप्युक्तं तत्रैव--

न शक्यते वृषोत्सर्गो होमं तत्र तु कारयेत् ।

न करोति यदा होमं तदन्नं पूयशोणितम् ॥ इति ।

होमं वृषोत्सर्गाङ्गहोममात्रं कुर्यादित्यर्थः । वत्सतरीसंख्या-

क्ता शौनकेन--

षोडश द्वादशाष्टौ वा चतस्रोऽप्यप्य वैकिका ।

सम्बत्सराधिकाः कार्या वत्सतर्यः फलेऽसुभिः ॥

सक्त्यर्पणं व्यवस्थैषां ज्ञेया । पुत्रवत्या भर्तृसमक्षं मृता-
या वृषोत्सर्गो न कार्योऽपि स्वेका गौर्द्वयेत्युक्तं विद्याकरेण—

यदि पुत्रवती नारी भर्तृरग्रे झ्रियेत हि ।

वृषोत्सर्गो न कर्तव्यो गौरेका तु प्रदीयते ॥

संग्रहेऽपि—

अपि पुत्रवती नारी भर्तृरग्रे मृता यदि ।

वृषोत्सर्गं न कुर्वीत गां तु दद्यात्पशुस्विनीम् ॥ इति ।

अत्र केचित् भर्तृसमक्षं मृताया वृषोत्सर्गाधिकारिणि युत्रे
विद्यमानेऽपि यदि वृषोत्सर्गो नास्ति तर्हि तदभावे सुतरां ना-
स्तीत्यपिशब्दार्थः । तेन भर्तृसमक्षमरणमात्रस्यैव वृषोत्सर्गा-
भावे निमित्तता न तु विशिष्टस्येत्याहुः । अत एव विधानमा-

पतिमत्स्त्रीक्षयेऽनृवाक्रोत्सृज्यो बुद्धिमन्नरैः ।

स प्रेतत्वहरो यस्मान्नास्ति तत्पतिमत्स्त्रियाः ॥ इति ।

अथ षोडशश्राद्धानि ।

तत्र जातुकर्ष्यः—

द्वादश प्रतिमास्यानि आद्यषाण्मासिके तथा ।

त्रैपक्षिकाब्दिके चेति श्राद्धान्येतानि षोडश ॥

अत्राऽऽद्यषाण्मासिकाब्दिकश्चैरुनमासिकोनृषाण्मासिको-
नाब्दिकान्यपि गृह्यन्ते । व्यासोऽपि—

द्वादशाहे त्रिपक्षे च षण्मासे मासिकाब्दिके ।

श्राद्धानि षोडशैतानि संस्मृतानि मनीषिभिः ॥

अत्र द्वादशाहे ऊनमासिकमेव न श्राद्धान्तरम् । अत एव
तस्य कालहृषभाह गोमिलः—

परणाद् द्वादशाहे ह्यान्मास्युने चोनमासिकम् । इति ।

ब्रह्मपुराणे तु प्रकारान्तरेणोक्तानि—

नृषां तु त्यक्तदेहानां श्राद्धाः षोडश सर्वका ।

चतुर्थे पञ्चमे चैव नवमैकादशे तथा ॥

ततो द्वादशमिमांसैः श्राद्धाद्वादशसंख्यया ।

कर्तव्याः श्रुतिस्तेषां तत्र विमांस्तु तर्प्येत् ॥ इति ।

दशाहान्तर्गतचतुर्थादिदिनकर्तव्यश्राद्धान्यादाय षोडश-
संख्या पूरिता, न तूनमासिकाद्यन्तर्भावेनेति । तेन विकल्पो-
ऽप्यंशास्त्राभेदेन व्यवस्थितो द्रष्टव्य इति । यदा तु वर्षमध्ये
ऽधिकमासस्तदा सप्तदशं भवति ।

तदाह लौगाक्षिः—

आद्यमेकादशे कार्यमधिके वाऽधिकं भवेत् ।

अधिके मळमासे, अधिकं सप्तदशमित्यर्थः । तथा यमा—

गर्भे वार्धुषिके मृत्वे श्राद्धकर्माणि मासिके ।

सपिण्डीकरणे नित्ये नाधिमासं विवर्जयेत् ॥

बृहस्पतिः—

श्राद्धं नैमित्तिकं कुर्यात्प्रयतः सन्मल्लिम्बुचे ।

तीर्थश्राद्धं गजच्छाया-प्रेत-श्राद्धं तथैव च ॥

प्रेतश्राद्धं—नवश्राद्धं मासिकश्राद्धं च, तस्यापि प्रेतत्वनिव-
र्तकत्वात् ।

मजापतिः—

सूर्येण छङ्कितो मासो न कर्मणि स्मृतो बुधैः ।

तस्माच्च न कर्तव्यं श्राद्धं नैमित्तिकाहते ॥

नैमित्तिकम्—पुत्रजन्म गजच्छाया चन्द्रसूर्योपरागनिमित्तम्,
तथा नवश्राद्धं सपिण्डनं च, तेषामपि निमित्तवशेनैव क्रियमाण-
त्वादिति श्राद्धकल्पः ।

द्वौ मासावेकनोमानौ स्यातां सम्प्रतसरे वद्वि ।

उत्तरे देवकार्याणि पितृकार्याणि वीभयोः ॥

तथा—

पिण्डवर्जमसंक्रान्ते संक्रान्ते पिण्डसंयुतम् ।

श्राद्धद्वयं प्रकुर्वीत मलमासो यदा भवेत् ॥

इति उद्योतिःपराशरनारदवधनाभ्यां मासद्वयेऽपि म्पसिकं कार्यमिति तत्रैव निर्णीतम् । ऋष्यश्रुद्भस्तु मलमासे मासिकं नि-
वेधति--

सम्बत्सरातिरेको वै मासश्चैव त्रयोदशः ।

तस्मात्त्रयोदशं श्राद्धं न कुर्यान्नोपतिष्ठते ॥ इति ।

तदेवं विहितमतिविद्धत्वाद्विकल्प एवेति श्राद्धकल्पः । जन-
मासिकादीनां कालमाह गोभिलः--

मरणाद्द्वादशाहे स्यान्मास्यूने चोनमासिकम् ।

गालवः--

जनवाण्यासिकं षष्ठे मास्यूनेऽप्यूनमासिकम् ।

त्रैपसिकं त्रिपक्षे स्याद्द्वानन्दं द्वादशे तथा ॥ इति ।

द्वादशाहे जनमासिकंभूनाब्दिकं च । तेन यथास-
म्भवं व्यवस्था ।

अत्र विशेषमाह गार्ग्यः--

नन्दायां भार्गवदिने चतुर्दश्यां त्रिपुष्करे ।

जनश्राद्धं न कुर्वीत सुही पुत्रधनक्षयात् ॥

॥--

च नन्दायां सिनीवाल्यां भृगोदिने ।

चतुर्दश्यां च नो तानि कृत्तिकासु त्रिपुष्करे ॥ इति ।

जनमासिकादीनि कियद्दिर्वसैरूने मासादौ कार्याणीत्याह

गौतमः--

एकाद्विदिनैरूने त्रिभागेनो न एव वा ।

श्राद्धान्युनाब्दिकादीनि कुर्यादित्याह गौतमः ॥

गालवः--

त्रिभिर्वा दिवसैरूने त्वेकेन दिवसेन वा ।

आद्यादिषु च मासेषु कुर्याद्भूनाब्दिकादिकम् ॥

काष्ठाजिनिः—

ऊनाभ्युनेषु मासेषु विषमाहे समेऽपि वा ।

त्रैपक्षिकं त्रिपक्षे स्यान्पूताहे त्वितराणि तु ॥

जातुकर्ष्यः—

एकहेन तु षण्मासा यदा स्युरपि वा त्रिभिः ।

न्यूनाः, सम्बत्स्वरश्चैव स्यातां षाष्मासिके तदा ॥

अत्रोन्मासिकानेषाष्मासिकानाब्दिकानि यथाक्रमेण द्वि-
त्रिदिनैरुने प्रासादौ कार्याणीति प्राञ्चः सर्ववाक्यार्थमाचक्षते ।
नव्यास्तूनमासिकादीनि त्रिभेकादिनैरुने मासादौ कार्याणी-
त्याहुः । तदेवं व्याख्याविप्रतिपत्तौ देसकालादिवशेन व्यबस्येति
तत्त्वम् । अत्र षोडशश्राद्धानां मध्ये “आद्यमेकादशेऽहनि” इति वि-
शेषविधानादाद्यमासिकमेकादशेऽह्नि कृत्वा द्वितीयादिमासेषु
आद्यमरणतिथौ द्वितीयादिमासिकानि कार्याणि ।

तदुक्तं प्रयोगसारे—

मासिकानि च शेषाणि मासानां प्रथमे दिने ॥ इति ।

मासादौ मासिकं कार्पमाब्दिके वत्सरे गते ।

आद्यमेकादशे कार्यमधिकं चाधिके भवेत् ॥

इति छाँगोसिस्मरणाच्च । ये तु मासान्ते मासिकमाहुस्तेषां
वाच्यं सम्बत्स्वरं मरणतिथौ क्रियमाणानि एकादशैव सम्पद्येरन् ।
तथा च षोडशसंख्यावाचः ।

अथत्रयोदशं मासमाशय द्वादशं क्रियते, तदौ—

युतेऽहनि तु कर्तव्यं प्रतिमासं तु वत्सरम् ॥

इति वर्षपर्यन्तकर्तव्यता स्मरणविरोधः ।

तेन मासादावेव मासिकमिति बह्व्ये वदन्ति ॥

एतेषामकरणे दोषो भविष्यत्पुराणे—

अकृत्वा षोडशैतानि कृत्वा वर्षगतं पुनः ।

न सुष्यते तु प्रेतवांश्याऽऽह भगवान् शिवः ॥

यज्ञेऽपि—

यस्यैतानि न दीयन्ते प्रेतश्राद्धानि षोडश ।

पिशाचत्वं ध्रुवं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि ॥ इति ।

एषां कालमाह पैठीनासिः—

मासिकानि स्वकीये तु दिवसे द्वादशेऽपि वा । इति

वर्षान्तसपिण्डीकरणपक्षे स्वस्वकालो द्वादशसपिण्डी-
करणपक्षे द्वादशाह एवेति व्यवस्था ।

श्राद्धकल्पेऽपि—

श्राद्धं सम्बत्सरं कुर्यादथवाऽप्यथर्वत्सरम् ।

द्वादशाहेऽथवा सर्वं सङ्क्षेपेण समाचरेत् ॥

ऋष्यशृङ्गोऽपि—

मुख्ये श्राद्धं मासि मासि सुपर्याप्तं स्रुतं प्रति ।

द्वादशाहे ऽथवा कुर्यादेकाहे द्वादशेऽपि वा ॥

अथमर्थः—द्वादशाहे सपिण्डनपक्षे द्वादशाह एव तानि
कृत्वा सपिण्डनं कार्यम् । यदा तु सामिकस्य कर्तुरेकादशदिने
दशो भवति, तदा एकाहे एकादशाहे तानि कृत्वा सपिण्डनं
कार्यम् । यदा तु त्रिपक्षादौ सपिण्डनं, तदाऽपि द्वादशाह एव
तानि कार्याणि । वर्षान्तसपिण्डने यथाकालमेवेति ।

श्राद्धानि षोडशापाद्य विदधीत सपिण्डनम् ।

इत्यत्र, क्त्वाप्रत्ययेनाऽऽव्यवहितपूर्वकालताद्योचनानादिति प्रा-
च्याः । तान्येतानि अर्वाक् सपिण्डीकरणपक्षे सर्वाण्यपकुर्वन्
कृत्वा वर्षान्तसपिण्डीकरणं कार्यम् ।

तदाह गोमिः—

श्राद्धानि षोडशादत्त्वा नैव कुर्यात्सपिण्डताम् ।

कौणाक्षिरपि—

श्राद्धानि षोडशापाद्य विदधीत सपिण्डनम् ।

पैठीनस्तिरपि--

सपिण्डीकरणादर्थाक् कुर्वाण्छाद्धानि षोडश । इति ।
एवं सपिण्डीनात्सामपकृत्य कृतान्यपि तानि कृते सपिण्डीने
पुनर्बधाकाकं कार्याणि ।

तदाह्वानिराः--

वस्य सम्बन्धरादर्थाक् सपिण्डीकरणं-कृतम् ।

मासिकं षोडशमं च देयं तस्यापि वसंरम् ॥

द्वारीतोऽपि--

प्रतस्तैस्कारकार्याणि यानि आद्धानि षोडश ।

वधाकाकं तु कार्याणि नान्यथा गृह्यते हि सः ॥

पैठीनसिः--

सपिण्डीनि तु मासिकम् ।

वेद्यगृहविधौ षोडशं-निर्घृतेस्तुतः ॥

अतिशयं समाप्त्यर्थः । तानि च सपिण्डीनात्प्राक् ए-
कोद्विहविधाना कार्याणि ।

तदुक्तं पैठीनसिना--

सपिण्डीकरणादर्थाक् कुर्वन् आद्धानि षोडश ।

एकोद्विहविधानेन कुर्वात्सर्वाणि तानि तु ॥

मासि आह्व त्रिपक्षं च-वष्मासं च नवानि च ।

अर्थाक् सपिण्डीकरणादेकोद्विहं प्रचक्षते ॥

इति ह्यह्वसिष्टस्मरणाच्च । सपिण्डीनोत्तरकाकमेकोद्विहवा-
र्धेणवोर्ध्वकल्पमाह पैठीनसिः--

सपिण्डीकरणादूर्ध्वं यदा कुर्यात्तदा पुनः ।

मस्यर्धं यो यथा कुर्यात्तथा कुर्यात्स तान्यपि ॥ इति ।

न दद्यात्प्रतिमासिकम् ।

एकोद्विहविधानेन दद्यादित्याह श्रौतकः ॥

एकोद्दिष्टविधानेन सपिण्डनादूर्ध्वं मासिकं न दद्यात् । शौन-
 कयते त्वेकोद्दिष्टविधानेनापि दद्यादित्यर्थः । तेन विकल्पः ।
 यदा तु मासिकान्यपकृष्य सपिण्डने कृते पुनर्यथाकाळं क्रियमा-
 नेषु मध्ये सम्बन्धं वृद्धिरापतति तदा पुनरप्यपकृष्यकार्याणि ।
 तदाह श्राव्यायनिः—

सपिण्डीकरणादवर्गपकृष्य कृतान्यपि ।
 पुनरप्यपकृष्यन्ते वृद्ध्युत्तरनिषेधनात् ॥
 भूतश्राद्धानि शिष्टानि सपिण्डीकरणं तथा ।
 अपकृष्यापि कुर्वीत कर्ता नान्कीदृशं यदि ॥

वृद्ध्युत्तरकाळं च निषेधति कात्यायनः—

निर्वर्त्य वृद्धितन्त्रं तु मासिकानि न तन्त्रयेत् ।
 अयातयामं मरणं न भेष्युत्तरस्य तु ॥

तथा सति अयातयामं नूतनं मरणं न र्थात् । यदि वृद्ध्युत्तरमपि
 तानि कुर्यात्तथा सति नूतनमिव मरणं भवेदिति भावः । सचायं
 निषेधः सर्वेषां सपिण्डानां, न केवलं कर्तुरेव ।

तदुक्तं धर्मप्रदीपे—

विवाहोपनयादूर्ध्वं वर्षे वर्षार्द्धमेव वा ।

पिण्डान्सपिण्डा नो दद्युः सपिण्डीकरणं विना ॥ इति ।

सपिण्डीकरणातिरिक्तानां सर्वपिण्डदानानां निषिद्धत्वान्मा-
 सिकानां च सपिण्डत्वनियमाद् वृद्ध्युत्तरं सपिण्डीकरणं
 न कार्याणीत्यर्थेऽवगम्यते । सपिण्डाश्चात्रऽऽवतुर्याः—

भेतकर्माभ्यनिर्वर्त्य चरेत्प्राभ्युदयक्रियाम् ।

आवतुर्यं ततः पुंसि पञ्चमे तु शुभं भवेत् ॥

इति श्रेयातिथिस्मरणम् । एषां चापकर्षो वृद्धिनिमित्तक
 एव मान्यधी,

अन्तरेण तु श्रो वृद्धिं भेतश्राद्धानि कर्वाति ।

स भ्राष्ट्री नरके घोरे पितृभिः सह मज्जति ॥
इति निषेधश्रवणात् ।

अथाशौचादिना मासिकादिभिन्ने निर्णयमाह

ऋष्यश्रुतः—

एकोदिष्टे तु सम्प्राप्ते यदि विघ्नः प्रजायते ।

मासेऽभ्यर्त्तिमस्तिथौ तस्यां कुर्यादन्तरितं च तत् ॥

तदिति प्राप्तकालं मासिकमन्तरितं च कुर्यादित्यर्थः । तद्यो-
भयमपि तन्त्रेण कार्यमित्याह ऋषः—

नवभ्रातृ मासिकं च यद्यदन्तरितं भवेत् ।

तद्यदुत्तरसातन्वाद्दुष्टेषु प्रचक्षते ॥

सातन्वादेकतन्त्रेण ।

अथ सपिण्डीकरणम् ।

तत्रादौ कालनिर्णयः । तत्र कर्तव्ये तयोर्द्वयोरनभिकत्वे श्रा-
द्धचिन्तामणौ भविष्यत्पुराणे—

सपिण्डीकरणं कुर्यान्नमानस्त्वनग्निमान् ।

अनाहितान्नेः प्रेतस्य पूर्णेऽब्दे भरतर्षभ ॥

द्वादशेऽहनि षष्ठे वा त्रिपक्षे वा त्रिमासि वा ।

एकादशेऽपि वा मासि मङ्गलस्याप्युपस्थितौ ॥

अत्र पूर्णेऽब्दे इत्यस्य पूर्णे संवत्सर इति वृचनान्तरसंवा-
दाब्दसमाप्तिदिवसे सपिण्डीकरणमिति प्राञ्चः । 'सम्बत्सरान्ते' इति
विष्णुवचनात् । सम्बत्सरे पूर्णे सत्यव्यवहितान्निदिने इति
मध्याः । अत्र च सम्बत्सरान्तो वृत्त्यः । तद्वत्कालिकाद-
वक्यमप्युत्तरीयमासाः पूर्वपूर्वाश्वकत्याः श्रेयाः । तत्राप्यशकौ त्रि-
वक्त्रहादशाहादयः, प्रधानकालपर्याप्तकेः ऋषिनियोगकृत्वात् ।
वदा तु द्वावपि साधिकौ—

तदाऽऽह प्रचेताः—

साधिकस्तु यदा कर्ता प्रेतश्चाप्यग्निमान् भवेत् ।

द्वादशाहे तदा कार्यं सपिण्डीकरणं बुधैः ॥

यदा तु कर्ता साधिः प्रेतोऽनग्निस्तदा जटमल्लबिच्छासे
भविष्यपुराणे—

यजमानोऽग्निमान् राजन् प्रेतश्चानग्निमान् भवेत् ।

द्वादशाहे तदा कार्यं सपिण्डीकरणं सुतैः ॥

गोभिलोऽपि—

साधिकस्तु यदा कर्ता प्रेतश्चानग्निमान् भवेत् ।

द्वादशाहे तदा कार्यं सपिण्डीकरणं सुतैः ॥ इति ।

यदा तु कर्ता निरग्निः प्रेतश्च साधिस्तदाऽऽह सुमन्तुः—

कर्ता निरग्निः, प्रेतश्चेदाहितप्रियेदा भवेत् ।

सपिण्डीकरणं तस्य कुर्यात्पक्षे तृतीयके ॥

साधेः कर्तुरेकादशेऽह्नि दर्शपाते तत्रैव सपिण्ढनमाह
कार्णाजिनिः—

सपिण्डीकरणं कुर्यात् पूर्ववच्चाग्निमान् सुतः ।

परतो दशरात्राश्चेत् कुहूरुन्दोपरीतरः ॥ इति ।

दशरात्रात्परत एकादशेऽह्नि अमावास्या चेत्तदा तस्यामेव
सपिण्ढनं कुर्यादित्यर्थः । साधेरमावास्यायामपराह्णे पिण्ढपितृ-
यज्ञविधानात्सपिण्डीकरणे कृत एव च पिण्ढपितृयज्ञमहत्तेरिति-
भाषः ।

तदाह माळवः—

सपिण्डीकरणास्पते पैतृकं पदमास्थिते ।

आहिसाधिः, सिनीवाल्यां पितृयज्ञः प्रवर्तते ॥ इति ।

अत एव मन्मथपतिः—

सप्तपिण्ढ्याभिधान्दुष्टः पितृयज्ञं समाचरेत् ।

पार्थिवं नान्पश्युदयं कुर्यात् सप्तते फलम् ॥

सिनीवालीपदमवावास्यामात्रपरम् । इतरोऽन्नग्निः, अ-
द्भोपस्ति सम्बर्त्सरे पूर्ण इत्यर्थः । वस्तुत्वं जटमरकविक्रासे
हारीतेन—

या तु पूर्वमवावास्या मृताहादशमाद्भवेत् ।

सपिण्डीकरणं तस्या कुर्यादेव सुतोऽप्रिमान् ॥ इति ।

ससिष्ठेनापि—

प्रथमास्याद्मवावास्या मृताहादशमेऽहनि ।

सपिण्डीकरणं तत्र कुर्यादेव सुतोऽप्रिमान् ॥ इति ।

तस्यायमर्थः—मृताहाद्यदशममहस्तस्मात्परा या अवावास्यै-
कादशाहस्तत्रेत्यर्थः पूर्वस्य । मृताहादिति पञ्चमी मर्धादा-
यां, ततश्च मृताहादूर्ध्वदिनमारभ्येत्यर्थः परस्य । तेन सर्वेषाम-
विरोधः । त्रिपक्षादिवर्षान्तानां काकानां मध्ये द्वादशाहः प्रथमस्त
इत्याह व्याघ्रपादः—

आनेन्त्यात् कुलधर्माणां सुंसां चैवायुषः क्षयात् ।

अनित्यत्वाच्चरिरेव द्वादशाहः प्रथमस्यते ॥

द्वादशाह इति स्वाशौचान्तोपलक्षणार्थम् ।

तदाह कात्यायनः—

सर्वेषामेव वर्णानामाशौचान्ते सपिण्डनेम् ॥ इति ।

दशमपुराणि—

द्वादशोऽहनि विप्रानामाशौचान्ते तु भूभृताम् ।

वैश्वानां च त्रिपक्षादावयवा स्वात्सपिण्डनेम् ॥ इति ।

शूद्रस्य तु द्वादशाहोऽपि काकः । तदाह विष्णुः—

मन्त्रवर्जं हि शूद्राणां द्वादशोऽहनि कीर्तितम् । इति ।

अवावास्याभ्राह्मणकर्तृशूद्रविषयमेतदित्यपराकर्तृत्वत्वप्रभृ-
तैः । वचनबलादाशौचमध्य एव कर्तव्यमित्यपरे । मुख्यकाक-
त्वाशौचान्त एव “सर्वेषामपि” इति पूर्वोक्तवृत्तकात्स्वायनवचनात् ।
अत एव दशमपिण्डस्याशौचान्तकर्तृव्यतोका ब्रह्मपुराणे—

देवस्तु दशमः पिण्डी रात्रौ वै द्वादशेऽहनि ।

वैश्यानां पञ्चदशमे देवस्तु दशमस्तथा ॥

शूद्राणां दशमः पिण्डी मासे पूर्वेऽन्दि दीयते ॥ इति ।

अथवापिण्डीसमाप्तौ च सपिण्ढनस्याविधानादिति । वृद्धि-
श्राद्धोपस्थितिशैकः कालः ।

तत्र कात्यायनः—

“अथ सपिण्डीकरणम्” इत्यभिधाय ‘यद्दहर्षा वृद्धिराप-
श्रेत’ इति । सुमन्तरपि—

सपिण्डीकरणं तस्य वृद्धिर्षा यद्दहर्षवेत् ।

पुत्रेण वृद्धिश्राद्धे कर्तव्ये सति वर्षान्तादिविहितकालाभा-
वेऽपि वृद्ध्युपस्थितिरूप एव काले प्रेतस्य पितुः सपिण्डीकरणं
कृत्वा पञ्चाशमादाय वृद्धिश्राद्धं कार्यम् । अन्यथा सपिण्ढनाभावे
प्रेतस्त्वानिवृषौ तमादाय वृद्धिश्राद्धं न स्यात् । यत्र तु सपि-
ण्ढनाधिकार्यसम्भिवाने वृद्ध्युपस्थितिस्तत्रान्यद्वाराऽपि सपिण्ढनं
कारयित्वा वृद्धिश्राद्धं कर्तव्यम्, पूर्वोक्तयुक्तेः ।

तद्वत् लघुहारीतः—

भ्राता वा भ्रातृपुत्रो वा सपिण्ढः शिष्य एव वा ।

सहपिण्ढक्रियां कृत्वा कुर्याद्भ्युदयं ततः ॥ इति ।

यदा वृद्ध्युपस्थितावेव सपिण्ढनं क्रियते तुदाऽश्रेतानानि
यासिकान्त्वपकृष्य कृत्वा पञ्चात्सपिण्ढनं कार्यम् ।

श्राद्धानि षोडशादश्वा नैव कुर्यात्सपिण्ढनम् ।

इति गोभिलोक्तेः । तथा—

श्राद्धानि षोडशाऽप्याद्य विदधीत सपिण्ढनम् ।

इति कौशासिस्मृतेश्च । वृद्धनन्तरं कात्यायनेन निषि-
द्धत्वाच्च—

निर्भर्ष्यः वृद्धितन्त्रं तु यासिकानि न तन्त्रयेत् ।

अथातवापि वरणं न भ्रूयतेऽन्यथा ॥

अथातः कर्म—नक्षत्र । आत्मानं निरक्षि

मेतश्च भद्रानि सिद्धयनि सपिण्डीकरणं तत्र ।
अपञ्चभ्यापि कुर्वीत कर्ता नान्दीहृत्सं यमि ॥
शुकं चैतद्—

आत्मानि षोडशाऽऽपद्य विदधीत सपिण्डनम् ।

इति वाक्येन “दर्शपूर्वभासाभ्यामिष्टा सोमेन मन्वेत्” इति-
पक्षे शिक्तपैर्कर्तव्योः प्रकृतौ क्लृप्तक्रमेण क्व-कृत्वादिनिमित्त-
तन् सपिण्डनापकरणस्तत्र पूर्ववर्तिमासिकाद्यप्यप्येऽपि । षडभक्षि
वाऽमिसम्बन्धात्तदन्तवपकर्वे स्यात्’ इति न्यायात् । यथा दैते
पञ्चौ ‘तिसृन्तं पशुं प्रयजन्ति’ इति वाक्येन प्रयाजापकर्षे षडभ-
कर्मकलापापकर्षे इति कथितं । तत्र, नह्यत्र सपिण्डनषोडशभद्राद्योः
प्रकृतौ क्लृप्तक्रमस्य विकृतापकरणव्यवहारित, येन तन्व्याद्यधि-
पयता स्यात् । नच सम्बत्सराण्यविहितसपिण्डीकरणानेवापक-
रणाण्यस्य प्रकृतिर्वेन तत्र श्रुतः षोडशभद्रानन्तर्यरूपः क्रमो-
ऽत्रादिभ्येत, सपिण्डनरूपकर्मणो भेदाभावात् । तस्मात्काचं तद-
न्तन्यायविषयः । किन्तर्हि कृतदेशानु पूर्वेषां सदेशः स्यादित्यत्र
राजसूये विदेवनादीनामभिषेकान्तानां तत्रैव पाठतः क्लृप्तक्रम-
त्वाद्यथा मारुन्दस्य स्तोत्रं प्रत्यभिषिष्यत इति अभिषेकापकर्षे
तत्पूर्वभाषिनां विदेवनादीनामप्यपकर्षस्तथा ‘बृहर्षा हृदिः’
इत्यादिकास्त्रेण सपिण्डनापकर्षे तत्पूर्वपठितानां षोडशभद्राना-
मप्यपकर्षे इत्येव वक्तव्यम् ।

अपि—

प्रसदादकृते तदिदम् त्रिपक्षे ह्यद्वेऽक्षि वः ।

उत्तरोत्तरकाष्ठेषु यथाक्रममवगच्छेत् ॥”

गोभिलः—

ह्यद्वेऽक्षि ह्यद्वेऽक्षि वः यथादादिनामुक्तिः ।

सपिण्डीकरणं कूर्पास्त्राद्येऽप्युत्तरभाषिषु ॥

उत्तरमादिषु—त्रिषसंघन्दाग्नेषु । अत्राप्यतिपाते ऋ-
ष्यमूत्रः—

सापिण्डीकरणश्राद्धमुक्ते काले न चेत्कुवम् ।
रीद्रे हस्ते च रोहिण्या मैत्रभे वा समाचरेत् ॥

गालवः—

सापिण्डीकरणश्राद्धमुक्ते काले भवेन्न चेत् ।
अनुराधाऽर्द्रहस्तेषु सापिण्डीकरणं भजेत् ॥

वर्षान्यपि चन्द्रमूलाक्षे—

इवोतिषे यानि वर्षानि तानि सर्वाणि वर्जयेत् ।
नक्षत्रे न च कुर्वीत यस्मिन् जातो भवेन्नरः ॥
न प्रौष्ठपदयोः कार्यं तथा चाग्नेयतारके ।
दाहणेषु च सर्वेषु मत्परिषु च वर्जयेत् ॥
तृतीयसप्ततारामु द्रुष्टचन्द्रयुतेषु च ॥

तथा—

मेतक्रिया न कर्तव्या रविवाहकपादमे ।
नन्दायां भौमदिवसे विष्टौ च परिवर्जयेत् ॥

इति त्रिक्रमभरतादयो मन्थते । तदेतन्मन्त्रमासेऽपि
कार्यम् ।

तदाह वसिष्ठः—

अलङ्काम्नेऽपि कर्तव्यमाग्निदं प्रथमं द्विजैः ।
तथैव मासिकं श्राद्धं सापिण्डीकरणं तत्र ॥

अथाधिकारिणः ।

श्राद्धकल्पे—

सापिण्डीकरणं पुत्रैः कार्यैर्नाग्यैस्तु निश्चितम् ।
औरसैः श्रेष्ठैर्वापि धर्म एव सन्नाशनः ॥

विजैतीकपुत्रस्याप्यधिकार उक्तो ह्यनाथेन—

पुत्राः कुर्वन्ति विजय्य ज्ञानादिद्वयपानयः ।

स तादृशोऽपि पुत्रेभ्यो न ददाति कदाचन ॥

स्वमात्र कुरुते तेषां तेषु तस्याश्च कुर्वते ।

अत्र शूद्रयोनिपदेन पारशवो गृह्यन्ते ।

तदुक्तं तत्रैव—

ब्राह्मणेन न कर्तव्यं शूद्राय त्वौर्देहेहिकम् ।

शूद्रेण वा ब्राह्मणस्य विना पारशवात् क्वचित् ॥

पारशवस्तु—

यो ब्राह्मणस्तु शूद्राया कामादुत्पादयेत्सुतम् ।

ऊढाया, नत्वनूढायां स वै पारशवः स्मृतः ॥ इति ।

अत्रच—पुत्रैरिति बहुवचननिर्देशात्सर्वेषामधिकारः ।

तथा च पराशरः—

सपिण्डता च कर्तव्या पितुः पुत्रैः पृथक् पृथक् ।

स्वाधिकारप्रवृत्तत्वादितरेभीर्दकर्तव्यत् ॥

एवं प्रत्येकमाधिकारेऽप्येकेनैव कार्यमित्याहोशनाः—

नवश्राद्धं सपिण्डान्तं श्राद्धान्यपि च षोडश ।

एकेनैव तु कर्तव्यं विभक्तेषु धनेष्वपि ॥

कषुहारीतोऽपि—

सपिण्डीकरणान्तानि यानि श्राद्धानि षोडश ।

पृथक् नैव सुताः कुर्युः पृथक् द्रव्या अपि क्वचित् ॥

एकेन केन इत्यपेक्षाया प्रचेताः—

एकादशाद्याः क्रमज्ञो ज्येष्ठस्तु विधिवत्क्रियाः ।

कुर्युर्नैकैकशः श्राद्धमादिकं तु पृथक् पृथक् ॥ १०९ ॥

व्यासोऽपि—

अर्वाणिसंबत्सरात् ज्येष्ठः श्राद्धं कुर्यात्समेक्ष्य च ।

ऊर्द्धं सपिण्डीकरणात्सर्वे कुर्युः पृथक् पृथक् ॥

सम्बत्सरान्तसपिण्डीकरणाभिप्रायमेतत् । नन्वेवं प्रत्येक-

मधिकारसङ्गावे एकैनेव कृतेऽन्येषामकरणे प्रत्यवायः स्या-
दिति चेत् ।

बहवः स्युर्येदा पुत्राः पितुरेकत्रवासिनः ।

सर्वेषां तु मतं कृत्वा ज्येष्ठेनैव तु यत्कृतम् ॥

द्रव्येण चाविभक्तेन सर्वैरेव कृतं भवेत् ॥

इति मरीचिवचनेन प्रत्यवायाभावबोधनात् ।

ज्येष्ठेन ज्योतमात्रेण पुत्री भवति मीनवृत् ।

पितृणामनृणश्चैव स तस्मात्संख्युर्हति (१) ॥ (९।१०६)

इति मनुनाऽस्य प्राधान्यबोधनाच्च । तदयं निर्गलितो-
ऽर्थः । विभक्तैरविभक्तैः संसृष्टिभिर्वा सपिण्डीकरणान्तानि
सर्वैरपृथगेव क्षार्याणि 'सपिण्डीकरणान्तानि' इति विश्वेषोपा-
दानात् ;

अविभक्तेषु संसृष्टेष्वेकेनापि कृते कृतम् ।

इति लिङ्गाच्च । ऊर्द्धमविभक्तानामनियमः, उभयथा
वचदर्शनात् ।

विभक्तैस्तु पृथकार्यं प्रतिसम्बत्सरादिकम् ।

एकैनेवाविभक्तेन कृते सर्वैस्तु तत्कृतम् ॥

एकपाके निवसता पितृदेवद्विजार्चनम् ।

एकं भवेद्विभक्ताना तदेव स्याद् गृहे गृहे ॥

भ्रातृणामविभक्तानामेको धर्मः प्रवर्तते ।

विधायै सति धर्मोऽपि भवेत्तेषां पृथक् पृथक् ॥

इति पैठानिसिद्धस्पतिमरीचिवचनेऽपृथग्वेव विधानात् । तथा
अविभक्तानामपि पृथक् पाकोपजीविनां पृथग्वेवत्युक्तं सङ्ग-
ह-
भ्रातृणामविभक्तानां पृथक्पाको भवेद्यदि ।

• वैश्वदेवादिकं आर्द्धं कुर्युस्ते वै पृथक् पृथक् ॥

(१) 'तस्मात्संख्युर्हति' इति मनुस्मृत्वा पाठा ।

अविभक्तेन पुत्रेण पितृमेवो मृतेऽहनि

स्थानान्तरे पृथक्कार्षीं दर्शश्चैव तथैव च ॥ इति ।

विभक्तानां तु पृथग्नेव, 'विथक्तेस्तु पृथक्कार्षीं' इत्यादिव
चनत् । तदेतस्सपिण्डीकरणं उपेष्टेऽस्यिहिते कनिष्ठेनापि
कर्तव्यम् । तदुक्तं आश्वकस्वो कार्णाभिनिका-

मासप्रविशोर्भूते काले उपेष्टे देक्षान्तरस्थिते ।

कनिष्ठेन अकर्तव्यं सपिण्डीकरणं तदा ॥

इत्थं श्रौतं येषातिथिः—

यते स्य रोचिते उपेष्टे पित्रा वा भेषिते कृति ।

व्यमासाद्य निवर्तेत तदा कार्यं कनीयसा ॥

दूरदेशजते राज्ञा वा कारणवशेन रोचिते पित्रा वा स्वका
र्यार्थं भेषिते इति । तथा उपेष्टे इत्यनुवचौ—

अस्यातुरे समीपस्थमार्गे हस्तुथपान्विते ।

नातिदूरस्थितेऽप्यन्यः कुर्यात्प्राप्तं सपिण्डनम् ॥

अन्योऽनुजः—

दक्षाहाभ्यन्तरं पश्चात्स्थानात्प्राप्तुं न चेत् क्षमः ।

स्वस्थे मार्गेऽपि दूरस्थाश्चकार्यं कनीयसा ॥

कनिष्ठोऽपि उपेष्टुमेषत्वा न सर्वेभ्यः । तथा काश्यादिषु सु-
क्लिष्टेषु सपिण्डीसपिण्डीर्वा ककुतं दाहादि सपिण्डघान्तं
प्रेतकार्यं तद्व्यतिरेकं कृतं भवेदित्युक्तं ब्रह्मवैवर्ते—

काश्यादिषु गवायाम्तु प्रेतकार्यं कृतं च यत् ।

सपिण्डीसपिण्डीर्वा कृतं तद्वै भवेत्सुतेः ॥ इति ।

काश्याद्यष्टविधे तीर्थे यद्यत् स्नाद्धि सपिण्डका ॥

स गण्डेऽप्यथं कर्म निष्ठितैः सह कारत् ॥ इति ।

कुरुक्षेत्रे प्रयागे च वाराणस्यां त्रिपुष्करे ।
 सप्तपिण्डोऽपि कुर्वीत सूतस्य हि सपिण्डनम् ॥ इति ।

यत्—

मासिकं च तृपोत्सर्गं सापिण्डीकरणं तथा ।

उपेष्टेनैव प्रकर्तव्यमधिकं प्रथमं तथा ॥

इति, वृद्धवसिष्ठवचनं वृद्धयेष्टस्य तद्व्येष्ट्यकृतबोधनार्थमि-
 ति मेवातिथिभट्टलोत्प्लेढप्रभृतिभिर्वाख्यातम् । अत्र एत्राकरण
 तस्यैव प्रत्ययायः श्रूयन्ते—

यावत्सापिण्डीकरणं न उपेष्टो विदधीत वै ।

तावत् श्रूयते लोके पैतृकाहणबन्धनात् ॥ इति ।

अत एव पुनः सापिण्डीकरणनिमित्तेषु कनिष्ठकृतिरप्येकं
 निमित्तं गणितम् । यदि कनिष्ठस्याधिकार एव न स्यात्तर्हि तत्कर-
 णस्य पुनःकरणनिमित्ता न स्यात् । तथा च शिङ्गाभट्टपद्धतौ
 सङ्ग्रहावयवम्—

मातापित्रोः कनिष्ठेन सापिण्डीकरणे कृते ।

देवान्तरगतानां तु पुत्राणां तु कथं भवेत् ॥

इति प्रश्नपूर्वकसंस्तरम्—

श्रुत्वा तु वचनं कार्यं दशाहान्तं तिष्ठोदकम् ।

ततः सप्तपिण्डीकरणं कुर्वादेकदशेऽहनि ॥

द्वादशोदके न कर्तव्यमिति सात्त्वतपोऽब्रवीत् ।

देवान्तरस्योपितरौ सूतौ चेदन्यः प्रकुर्वादस्त्रिकं तु पैतृकम् ।

दाहं चित्तं तत्र पुत्रश्च सर्वं उपेष्टुः प्रकुर्वादनुजैः सपिण्डनम् ॥

अनुजैः कृतं सपिण्डनं पुनः कुर्वादिभ्यः । पुनः सपि-

इत्युक्तं सापिण्डीकरणविकारिणः ।

द्वितीयं तत् पुनः कुर्यात् क्रममाप्तौ स्वयं सुतः ॥

तथा--

विभक्तो वाऽविभक्तो वा मातापित्रोः सपिण्डनम् ।

कथञ्चिदनुजः कुर्याद् भूयः कुर्यात्तदनुजः ॥

तथा--

यवीयसा कृते कर्म प्रेतशब्दं विहाय तु ।

तर्क्यार्थत्वापि कर्तव्यं सपिण्डीकरणं पुनः ॥

तथा--

अनुजेन कृते तीर्थे सपिण्डावाप्यपूर्वकम् ।

पुनर्ज्येष्ठेन कर्तव्यं श्रुत्वा मिश्रणपूर्वकम् ॥

मिश्रणं सपिण्डनम् । पुनः करणविशेष उक्तस्तत्रैव ।

यवीयसा कृते श्राद्धे प्रेतशब्दं विहाय च ।

ज्येष्ठेनैव तु कर्तव्ये सपिण्डीकरणं पुनः ॥

यः सपिण्डीकृतं जन्तुं प्रेतशब्दे नियोजयेत् ।

असौ विधिघ्नो भवति पितृहा चोपजायते ॥

कात्यायनः ।

सपिण्डीकरणे वृत्ते श्रुत्वा पित्रोर्भृतिं सुतः ।

आदशाहं तस्य नाम्ना दद्यात्तस्य तिलाज्जलीन् ॥

तथा--

पित्रोर्दाहादिकं कर्म श्रुत्वा देशान्तरे सुतः ।

सपिण्डीकरणं कुर्यान्न कुर्यात्षोडशीं पुनः ॥

यस्य वायुपुराणे-

श्राद्धानि षोडशादेषा न तु कुर्यात्सपिण्डताम् ।

प्रोषितावासिते पुत्रः कालाद्गृतिचिराद्दपि ॥ इति ।

तद् भ्रात्रायकृतषोडशश्राद्धविषयः । अत एवाश्राद्धः-

यादि तानि भ्रात्रादिना इष्टानि तदा सपिण्डत्वमेव कुर्यादिति ।

विशेषान्तरपर्याह संवर्तः—

कृतं कनीयसा वाऽपि यस्य श्राद्धं सपिण्डनम् ।

ष्येद्योऽपि हि सुखं कुर्वास्तापिण्डीकरणं पुनः ॥

पुनः सपिण्डीकरणं श्राद्धं पार्ष्णवज्जवेत् ।

अर्घ्यसंयोजनं नैव पिण्डसंयोजनं न च ॥ इति ॥

पुत्रं वैतत्, क्वनिष्ठकृतसंयोजनेनैव श्रेतस्वनिष्ठसेर्मेतस्वनिष्ठ-
पर्येत्काश्च संयोजनस्येति श्रेतशब्दनिष्ठचित्तवत् ।

पुत्राभवे तु पौत्रस्याधिकारः—

पितामहः पितुः पश्चात्पश्चस्वै यदि गच्छति ।

पौत्रेणैकादशाहादि कर्त्तव्यं श्राद्धबोधसम् ॥

नैतत्पौत्रेण कर्त्तव्यं पुत्रवांशोत्पितामहः ॥

इति छान्दोग्यसु । तदभावे—

पुत्रः पौत्रः प्रपौत्रो वा भ्राता वा भ्रातृसन्ततिः ।

सपिण्डतन्ततिर्वाऽपि क्रियाभाक्तुं प्रजायते ॥

इति विष्णुपुराणवचनात् । सर्वसपिण्डाभावे पुत्रवपि कुर्या-
दित्याह ऋष्यशृङ्गः—

अपुत्रस्य तु या पुत्री साऽपि पिण्डपदा भवेत् ।

महाभारतेऽपि—

दुहिता पुत्रवत्कुर्यान्मातापित्रोस्तु संस्कृता ।

आशौचमुत्सर्गं पिण्डमेकोद्दिष्टं तयोरपि ॥

संस्कृतेति वचनादसंस्कृतायाः पितृगोत्रसम्बन्धात्सक-
सिद्धोऽधिकार इत्याहुः ॥

अथ भ्रातृसपिण्डनाधिकारिणः

कात्यायने—

अपुत्रायाः सपत्नीवत्सपत्नीयाः सतिस्तथा ।

पूर्वाभावे पर्यः कुर्याद्दिदम्पैक्येऽपि कम् ॥

अपुत्रायाः औरसक्षेत्रजापुत्ररहितायाः ।

कऋत्रायनोऽपि--

विदध्यादौरसः पुत्रो जनन्या और्ध्वदेहिकम् ।

तदभावे सपत्नीजः क्षेत्रजाद्यास्तथाऽऽहता ॥

तेषामभावे तु पतिस्तदभावे सपिण्डकाः । इति ।

तथाहता--'पूर्वाभावे परः परः' इतिक्रमेण । अपरांके छ-

पुहारीतः--

पुत्रैर्ब तु कर्तव्य सपिण्डीकरणं स्त्रियः ।

पुरुषस्य पुनस्त्वन्ये भ्रातृपुत्रादयोऽपि ये ॥

मार्कण्डेयः--

स्त्रीणामप्येवमेवैतदेकोद्दिष्टमुदाहृतम् ।

सपिण्डीकरणं तासां पुत्राभावे न विद्यते ॥

भर्तृरभाव एतत् ।

तथा पैठीनासिः--

अपुत्रायां मृतायां तु पतिः कुर्यात्सपिण्डताम् । इति ।

इदं स्वौरसकर्तृकपौर्ध्वदेहिकमनन्वारूढायाः ।

अन्वारूढायास्त्वनौरसोऽपि भर्तृव्येष्ट एवौर्ध्वदेहिकं कुर्यात् ।

तथैकं भविष्यत्पुराणे--

एकं चित्तं समारूढं भर्तारं याऽनुगच्छति ।

तद्भर्तृव्यत्क्रियां कर्ता स तस्याश्च क्रियां चरेत् ॥

षडश्वीतिमतेऽपि--

पुत्रोऽन्यो वाऽग्निदस्तस्यास्तापदेवायुचिस्तयोः ।

नवश्राद्धं सपिण्डान्तं युगपत्तु समापयेत् ॥ इति ।

उत्तरीयं शिखापात्रमग्निवैश्वानरा चरुः ।

एक एक भवेत्कर्ता दम्पत्योः सहस्रांशिनोः ॥ इति ।

अयं च कर्त्रैक्यनियमं औरससज्जावं एव घटते, अन्यथा प्राप्यभावेन नियमानर्थक्यात् ।

स्मृत्यर्थसारेऽपि—सहदहने तु पाकैक्यं कर्त्रैक्यं च भवति ।

अथेतिकर्तव्यता—तत्र गोभिलः—“चत्वार्युदकपात्राणि सलिलगन्धोदकानि त्रीणि पितृणामैकं प्रेतस्य प्रेतपात्रं पितृपात्रेषु सिञ्चति ‘ये सामाना’ इति द्वाभ्यामेतेन पिण्डो व्याख्यातः” इति । उदकपात्राणि अर्घ्यपात्राणि । ब्रह्मपुराणे—

प्रेतविषयस्य हस्ते तु चतुर्भागं जलं क्षिपेत् ।

ततः पितामहादिभ्यस्तन्मन्त्रैः पृथक् पृथक् ॥

ये समाना इति द्वाभ्यां तज्जलं तु समर्पयेत् ।

अथ तेनैव विधिना पिण्डमूलेऽवनेजनम् ॥

पितुर्देवा तु पिण्डं तु दद्याद्भक्त्या तु पूर्ववत् ।

दंष्ट्रा पिण्डमथाष्टाङ्गं ध्यात्वा तं च सुभासुरम् ॥

सुवर्णरूप्यदर्भेस्तु तस्मिन्पिण्डे तैत्तस्त्रिधा ।

कृत्वा पितामहादिभ्यः पितृभ्यः प्रेतमर्चयेत् ॥

विष्णुः—“संवत्सराग्ने प्रेताय तत्पित्रे तत्पितामहाय तत्पितामहाय ब्राह्मणान् देवपूर्वान् भोजयेत् । अग्नौकरणमावाहनं पात्रं च कुर्यात् संसृजन्तुस्वा पृथिवी समानी वेति प्रेतपात्रं पात्रत्रये योजयेदुच्छिष्टसन्निधौ पिण्डचतुष्टयं कुर्याद्ब्राह्मणांश्च स्वान्तान्दक्षदाक्षिणांश्चानुषण्य विसर्जयेत्ततः प्रेतपिण्डं प्राच्यपात्रोदकवत्पिण्डत्रये निदध्यात्कर्षुत्रयेऽप्येवमेव सपिण्डीकरणं मासिकार्थवत् द्वादशाहं कृत्वा त्रयोदशेऽह्नि कुर्यान्मन्त्रवज्रं शूद्राणां द्वादशेऽह्नि संवत्सराभ्यन्तरे यद्यपि मासिके भवेत्तदा मासिकार्थे दिनमेकं वर्द्धयेदिति” । कर्षुत्रयसन्निधौऽप्येवमिति । प्रेतैको विष्टसम्बन्धिर्कर्षुत्रयसन्निधौऽपि पिण्डान् पित्रादिपिण्डेषु योजयेत् । मासिकार्थवदिति । मासि भवानि मासिकानि तदर्धः

प्रेताप्याषनादिः तद्युक्तानि श्रद्धानि मासिकार्यवन्ति तान्या-
शौचापगमे द्वादशाहं द्वादशस्वहः३ कृत्वा अयोदशेऽपि सवि-
ण्डीकरणं कुर्यादित्यर्थः ।

श्रौतकोऽपि—“अथ सविण्डीकरणं चत्वार्युदपात्राप्येकं प्रेतस्य
त्रीणीतरेषां प्रथमं पात्रं त्रिषु पात्रेषु नियोजयेत् । ‘समानी व
अकूतिः’ इत्येवमेव प्रथमपिण्डं त्रिषु पिण्डेषु नियोजयेत् । ‘मधु-
मतीभिः सङ्गच्छस्यम्’ इति द्वाभ्यामेव चतुर्थोऽनुज्ञापितो भवतीति” ।
अत्र चत्वार्युदकपात्राणीति वदता चत्वारि ब्राह्मणाः पितृवर्गे
दर्शिताः । द्वौ च विश्वेदेवार्थे, ।

सविण्डीकरणश्राद्धं देवपूर्वं नियोजयेत् ।

इति श्रातातपोक्तेः ।

यस्वाश्वलायनवचनम्—

न त्वन्नर्ध्वे योजयदिति, तत्पैशुकार्चनकाण्डं दैविकपदार्थ-
सकरं न कुर्यादित्येवमर्थमिति कल्पतरुः । श्राद्धकल्पे ब्रह्म
पुराणे—

चतुर्ध्वश्चार्धपात्रेभ्य एकमेकेन पाणिना ।

सृहीत्वा दक्षिणेनैव पाणिना च तिस्रोदकम् ॥

श्राद्धद्वयस्य कुर्वीत सहपिण्डताम् ।

तयोस्त्रिपुरुषं पूर्वमेकोद्दिष्टं ततः परम् ॥

श्राद्धद्वयमित्यनेन यैः सह सविण्डनं तेषामेकं श्राद्धं, विश्वे
देवाऽऽवाहनपिण्डदानादिविधानात् । अपरं च प्रेतैकोद्दिष्टमित्येवं
द्वित्वसम्पत्तिरिति भङ्गोल्लटः ।

बृहदारस्तु श्राद्धद्वयमित्यत्र द्वित्वमविवक्षितम् ।

सविण्डीकरणश्राद्धं देवपूर्वं नियोजयेत् ।

इत्यादिस्मृतिपुराणवचनेभ्येकवचनोपादानादित्याह । स-
विण्डनस्य पार्श्वेकोद्दिष्टकपत्वेनोभयार्थिककरणं नरसिंहोक्तारमिद-
न्ति इरनाथद्विवोदासचन्द्रप्रकाशादयो मन्थन्ते । सङ्कल्पस्तु ना-

मगोत्रोच्चारपूर्वकं प्रेतस्य सपिण्डेनश्राद्धं करिष्ये इत्येव । तत्र च सर्वेषामविवाह एव ।

तदुक्तं मैत्रायणीयसूत्रपरिशिष्टे—

विश्वेदेवा यथा श्राद्धे ऋङ्गभूता हि पार्वणे ।

प्रेतपित्रादयस्तद्वदङ्गत्वेन सपिण्डेने ॥

तस्मात्सोऽङ्गचरणीयास्ते सङ्कल्पे तु सपिण्डेने ।

उच्चार्या आचारेषु सहयोगेऽथवोच्चरेत् ॥ इति ।

अन्योऽपि विशेषस्तत्रैव—

प्रेताद्यादि च तृप्त्यन्तं न च मिश्रवदाचरेत् ।

पित्र्ये विप्रकरे होमः साधेरपि भवेदिह ॥

अग्नौकरणशेष हि पित्र्यब्राह्मणभोजने ।

नैकोदिष्टे हि विकिर इतरस्मिन्नविभोगतः ॥

पितृपिण्डान्त्यसंस्थानांस्तथा प्रत्यवनेजितान् ।

प्रेतपिण्डात्पुरस्तात्तानित्येवं काठकश्रुतिः ॥

प्रेतपिण्डं त्रिषा कृत्वा निदध्यादध्वर्यपात्रवत् ।

त्रिषु पिण्डेष्वनुज्ञातो ब्राह्मणैः श्राद्धतर्पितैः ॥

पिण्डान्सम्पूज्य विधिवदभिमृश्येदमुच्चरेत् ।

एष वोऽनुगतः प्रेतः पितरस्तं दधात्विति ॥

शिवमस्तिवहोषाणां जायन्तां चिरजीविनः ॥

अथ सपिण्डनानुक्रमणी श्राद्धकल्पे—

पूर्वेषुस्तदहर्वाऽपि षड्विमान्संनिमन्त्रयेत् ।

दैवे द्वाषुपवेश्याय प्रेते स्वैकमुदङ्गमुत्सृज्य ॥

ततस्त्रीन्सर्वापिऽप्येषु कुर्याच्छ्राद्धद्वयं सुतः ।

प्रेतस्याग्नौगोत्रस्य प्रेतत्वस्य विमुक्तये ॥

सपिण्डीकरणं श्राद्धं करिष्येऽहमथोचरेत् ।

तसिपिण्डीकरणं कुर्यात् ॥

पितृनावाहयेत्तत्र तिलैः 'सर्वांतयार्चयेत् ।
 . 'प्रेतपात्रं' ततस्तूर्ण्णां पूरयेदत्र वै तिलान् ॥
 'निक्षिपेन्मन्त्ररहितं गन्धपुष्पादि च क्रमात् ।
 तस्मुरस्तास्त्रितृणां स्यान्मन्त्रवत्पात्रपूरणम् ॥
 'अमन्त्रं प्रेतप्रात्रार्थं चतुर्थांशं प्रयच्छति ।
 प्रेतस्य नामगोत्राभ्यां तस्य विप्रकरे ततः ॥
 ये सप्रतिा इति द्वाभ्यामवाशिष्टं त्रिषु क्षिपेत् ।
 पित्र्यपात्रेषु तेनैव किञ्चित्तत्र न र्क्षयेत् ॥
 वत्सगोत्रं शिवप्रेत गोत्रेणामुकर्षणम् ।
 मन्त्रान्त इदमुच्चार्य तत्पित्रा सह संसृज ॥
 एवं पात्रद्वये सर्वं तथा मात्रादिषु स्मृतम् ।
 ८५ यद्दुग्धेधातिथिः प्राह प्रसेकोऽर्घ्यादनन्तरम् ॥
 सचार्घ्यात्प्राक् तु गोविन्दराजशंकराविति ॥
 अथाऽस्थन्तीपदि सापिण्डनविधिः ।

तत्र गोभिलः--

अनुक्तकालेष्वपि तु व्युत्क्रमेण मृतावपि ।
 आमेन वाऽपि सापिण्ड्यं हेम्ना वाऽपि प्रकल्पयेत् ॥ इति ।
 एतत्सर्वं विषयविशेषश्रवणादापत्कल्पत्वात्सैतिस्मृतिसारा-
 दयः । पितृव्यतिरिक्तविषयमिति कालादर्शः ॥

अथ मातुः सापिण्डीकरणम् ॥

याज्ञवल्क्यः--

एतत्सापिण्डीकरणमकोद्विष्टं स्त्रिया अपि (१।२५४) ।
 एतत् समनन्तरोक्तं सापिण्डीकरणं पूर्वोक्तमेकोद्विष्टं च स्त्रिया
 अपि मातुरपि कर्तव्यम् । तत्र तावदनुगमनमृतायां मातुः स-
 पिण्डनं पर्यैव सह कार्यम् ।

तदाह शातातपः--

मृता न्याऽनुगता नाथं सा तेन सहपिण्डनम् ॥

अर्हति स्वर्गवासेऽपि यावदाभूतसंस्कृतम् ॥

यमोऽपि—

पत्या चैकेन कर्तव्यं सपिण्डीकरणं स्त्रियाः ।

सा मृताऽपि हि तेनैक्यं गता मन्त्राहुतिव्रतैः ॥ इति ।

पत्या चैकेनेत्यत्र पतिपदं, पत्युः पित्रादीनामुपलक्षणार्थं
मित्येकेन एकेन सत्यैव न तस्मिन्नादिभिः सहेत्यन्ये ।

हारीतोऽपि—

स्वेन भर्त्रा सहैवास्याः सपिण्डीकरणं स्त्रियाः ।

एकत्वं सा गता यस्माच्चरुमन्त्राहुतिव्रतैः ॥

तदेतत्पृथक्चित्यारोहणविषयमेकचित्यारोहणे पतिसपि-
ण्डनेनैव तस्या अपि कृतत्वादिनि शङ्करः । पतिमुद्दिश्य दि-
नान्तरमरणविषयमिति गोविन्दराजः । दिनान्तरमृते पुत्रः स्त-
पितृपितामहापिण्डमध्ये कुशासनं धार्य पित्रैकेन मातुः सपिण्डनं
कुर्यादिति स्मृत्यर्थसारः । पत्युद्देशेन मातुरभिप्रवेशमरणविषय-
मिति मदनः । मातुर्पथा कथंचिन्मरणमात्रे सहगमनाद्यभावेऽपि
पत्यैव सह सपिण्डनमिति मुख्यः कल्पः । अपरे तु पक्षा गौणा
इति दिवादासचन्द्रप्रकाशादयः । वस्तुतस्त्वनुगमनविषयत्वमेव
युक्तम् । 'मृता याऽनुगता नाथम्' इति वचनात् । नार्थं प्रेत-
मनुष्यीकृत्य गता नस्वनु पश्चाद्गतेति भट्टलोल्लटेन व्याख्या-
तत्वात् ।

विद्वानेश्वरोऽपि अन्वारोहणे पत्यैव सह सापिण्ड्यामाह ।

सहैकचित्यारोहणे तु विशेषः श्राद्धकल्पे आपस्तम्बः—

एकत्वं सा गता भर्तुः पिण्डे गोत्रे च मृतके ।

पृथक्पिण्डप्रदानं न तस्मात्पत्नीषु युष्यते ॥

चतुर्थीहोममन्त्रैः स्त्री पत्युर्देशार्थता व्रजेत् ।

अतो धर्मं च पिण्डे च भवेत्तस्यार्थभागिनी ॥

मृते पितरि मातुस्तु न कार्या, सहपिण्डता ।

, भर्तुरेव सपिण्डत्वे तस्या अपि कृतं भवेत् ॥

अयमर्थः—एकस्यामेव तिस्रो एकचित्वां सहाह्वयोर्दम्पत्योः
पतिपिण्डदानसमय एव द्वयोर्नामग्रहणं कार्यं, न पृथक् मातुः
पिण्डदानं, पितृपिण्डनेनैव तस्या अपि जातस्वादिति । एतन्मूल-
वाक्यं च चन्द्रमकाशे—

एकचित्तमधिरोहक्षोचित्थिरेकैव जायते ।

एकमाकेन पिण्डैक्ये द्वयोर्गृहीतं नमिनी ॥ इति ।

व्याख्यातं चैतच्छुद्धरेण—एकस्यामेव तिस्रो एकचित्-
थिरोहक्षोज्जायते तदा पिण्डैक्ये सपिण्डीकरणे एकपाकेन एक-
पिण्डेन द्वयोर्नामनी गृहीतेति सम्बन्धः । अयमेव चार्थः स्पष्टी-
कृतः स्मृत्यर्थसारे—अन्वारोहणैकदिनमरणे स्त्रियाः पृथक् स-
पिण्डीकरणं न कार्यम्, भर्तुश्च कृते स्त्रियाश्च कृतं भवतीति ।

अथ सहानुगमनानिरिक्तप्रकारान्तरमरणे

मातुः साविभ्यं केनेत्यपेक्षायाम् ?

शङ्काः—

मातुः सपिण्डीकरणं कथं कार्यं भवेत्सुतैः ? ।

पितामहादिभिः सार्द्धं सपिण्डीकरणं स्मृतम् ॥

शातावपोऽपि—

मातुः सपिण्डीकरणं कथं कार्यं भवेत्सुतैः ।

पितामहा सहैवास्याः सपिण्डीकरणं स्मृतम् ॥

मातुः सपिण्डीकरणं पितामहा सहोदितम् ।

तदेतद् ब्राह्मादिविवाहोटाविषयमिति चिन्तामणिः । तदाह-

आह्वकल्पे यमः—

ब्राह्मादिषु विवाहेषु या तुया कल्पका भवेत् ।

तस्याः सपिण्डीकरणं पितामहादिभिः सह ॥ इति ।

ब्राह्मदेवार्धमांजापत्यैरूढाया इति मदनः । तदेतत्पितामह्याः
 सापिण्ड्यं जीवत्पितैव कुर्यात् ।

तदाह यमः—

जीवत्पिता पितामह्या मातुः कुर्यात्सपिण्डनम् ॥ इति ।

प्रतपितृकस्य विकल्पमाह स एव—

प्रभोवपितृकः पुत्रिणा पितामह्याऽप्यवा मुतः ॥ इति ।

अत्र सर्वत्र पितामहीमदं प्रपितामहीशुद्धप्रपितामहोरूपल-
 क्षणम्, 'पितामह्यादिभिः सार्द्धम्' इति शुक्लांक्तः । अन्योऽपि
 पक्षो मातृसापिण्ड्ये ज्ञातांतपेनोक्तः—

तन्मात्रा तत्पितामह्या तच्छत्रा वा मापिण्डता ॥ इति ।

तस्या मातृमात्रा मातुरेव पितामह्या तच्छत्रा तस्या मातृ-
 पितामह्याः या इवश्चूः मातुःप्रपितामही तयेत्यर्थः । पूर्वस्यां जीव-
 न्त्यामुत्तरोत्तरयेति वाशब्दार्थमाह मदनः । आसुरादिविवाहे
 तु मातामह्यादिभिरेवेति वाशब्दार्थ इति शङ्खधरः । युक्तं चैतदेव
 एकेन सापिण्ड्यादर्शनप्रसिद्धाभिरेव सापिण्ड्य युक्तम् । वाशब्द-
 स्त्ववधारणे इति । पूर्वपूर्वजीवने उत्तरोत्तरयेत्यर्थप्राप्तमवक्तव्यमि-
 ति । सचायमासुरादिविवाहोऽविषय इति सर्व एव ।

आसुरादिविवाहेषु विमानां योषितां स्मृता ।

इति तेनैवोत्तरार्द्धेनाऽभिधानात् । आसुर, गान्धर्व, राक्षस,
 पैशाचविवाहैरूढाया इति मदनः । पक्षान्तरमप्याह सुमन्तुः—

पिता पितामहे योज्यः सम्पूर्णे वत्सरे सुतैः ।

माता मातामहे तद्ददित्याह भगवान् शिवः ॥

उच्यते—

पितुः पितामहं यद्दसंपूर्णे वत्सरे सुतैः ।

मातृमातामहे तद्ददेषी कार्या सापिण्डता ॥ इति ।

तदैवत्पुत्रिकापुत्र विषयमिति सर्व एव ।

तदाह बौधायनः—

आदिशतप्रथमे पिण्डे मातरं पुत्रिकासुतः ।

द्वितीये च पितुस्तस्यास्तृतीये च पितामहम् ॥ इति ।

नन्वत्र वाक्ये त्रिदैवत्यश्राद्धविधानात्पार्वणस्य च त्रिदैव-
त्यस्वात्पार्वणश्राद्धविषयमिदमिति गम्यते । सपिण्डनस्य तूभया-
त्मकत्वेन चतुर्दैवतत्वात् । प्रकृते च सपिण्डनादिपदार्थादिति
चेत् ? सत्यम् ।

ज्वित्पिता पितामहा मातुः कुर्यात्सपिण्डनम् ।

प्रमीतपितृकः पित्रा तत्पित्रा पुत्रिकासुतः ॥

इति वाक्यस्य तत्पित्रा मातामहेनेति च व्याख्यानस्य श्राद्ध
करूपलिखितस्य तन्मूलत्वात् ॥

अथापुत्रायाः पत्न्याः सपिण्डनम् ।

पैठीनसिः—

अपुत्रायां मृतायां तु पतिः कुर्यात्सपिण्डताम् ।

श्वश्रादिभिः सहैवास्याः सपिण्डीकरणं भवेत् ॥

अस्याः श्वश्रादिभिः स्वमात्रादिभिरिति सर्वसम्मतम् ।

तदुक्तं व्यासेन—

अपुत्रायां मृतायां तु पतिः कुर्यात्सपिण्डताम् ।

स्वस्य मात्रादिभिः सार्द्धमेवं धर्मेण युज्यते ॥ इति ।

अत्रापुत्रस्य भर्तुः पत्न्या सापिण्ड्य कार्यामित्याह

लौगासिः—

सर्वाभावे स्वयं पत्न्यः स्वभर्तृणाममन्त्रकम् ।

सापिण्डीकरणं कुर्युस्ततः पार्वणमेव च ॥

अपुत्रे संस्थिते कर्ता नास्ति चेच्छ्राद्धकर्मणि ।

तत्र पत्न्यपि कुर्यात् सापिण्ड्यं पार्वणं तथा ॥ इति ।

यत्तु ध्वञ्जनिबंधे--

सपिण्डीकरणं तस्मादपुत्रस्य द्विजन्मनः ।

आशौचमुदकं कार्यमेकोदिष्टं न पार्वणम् ॥

तथा--

अपुत्रा ये मृताः केनित्स्त्रियो वा पुरुषोऽपि वा ।

.. तेषां सपिण्डनाभावादेकोदिष्टं न पार्वणम् ॥

मुष्टोऽपि--'पिण्डकरणे प्रथमः पितृणां प्रेतः स्यात्पुत्रवांश्चेत्'
इति । पुत्रवांश्चेदिति वचनात्सापुत्रयोः स्त्रीपुरुषयोः सपिण्डन-
मित्युक्तम् । तत्र, अपुत्रस्येत्यादिवाक्यानां पुत्रोत्पादनविधिप्रशं-
सापरत्वेनाप्युपपत्तेर्न निषेधपरत्वम् निषेधपरत्वे च--

अपुत्र्यां मृतायां तु पतिः कुर्यात्सपिण्डताम् ।

तथा--

पुत्राभावे स्वयं कुर्युः स्वभर्तृणाममन्त्रकम् ।

सपिण्डीकरणं तत्र ततः पार्वणमन्वहम् ॥

इत्यादिवाक्यैः सपिण्डनस्य विहितत्वादष्टदोषदुष्टो विकल्पः
स्यादिति माधवाचार्यस्वरसः । दिवोदासप्रकाशे तु जवित्पितृ-
कप्रेतविषयमिदम् ,

व्युत्क्रमाच्च प्रमीताना नैव कार्या सपिण्डता ॥

इति वचनादित्युक्तम् । अनुमतमेतच्चन्द्रप्रकाशेनापि ।
वस्तुतस्तु, 'अपुत्रस्य' इत्यादि भागस्यैकोदिष्टविधिशेषत्वेन
स्वार्थपरत्वाभावाच्च सापिण्ड्यनिषेधकत्वमिति प्रतिभाति । तेन
दिवोदासादिर्व्याख्यानमप्यापातत एवेति बुद्ध्यते । स्पृश्यर्थसा-
रेणापि अनुपत्यसपिण्डनं निषिद्धम् । ब्रह्मचारिणामनपत्यानां
च सपिण्डीकरणं नास्ति, तेषां सदैकोदिष्टमिति । तेन विकल्प
एवेत्यन्ये-॥

अथ मातुः सापिण्ड्ये गोत्रनिर्णयः ।

तथोक्तानाः—

स्वगोत्राद् भ्रश्यते नारी विवाहात्सप्तमे पदे ।
स्वामिगोत्रेण कृतव्या तस्याः पिण्डोदकक्रिया ॥

तथा ब्रह्मस्पतिः—

भर्तृगोत्रेण दातव्यं स्त्रीणां पिण्डोदकं सुतैः ।
पितामहपितृभ्यां च स्वेन स्वेन विधानतः ॥
पाणिग्रहणिका मन्त्राः पितृगोत्रापहरकाः ।
भर्तृगोत्रेण नारीणां देयं पिण्डोदकं ततः ॥

चन्द्रप्रकाशे—

चतुर्थीर्हाममात्रेण त्वञ्चासहृदयेन्द्रियैः ।

भर्त्रा संयुज्यते पत्नी तद्गोत्रा तेन सा भवेत् ॥

तदेतद्वाङ्मादिविवाहोडाविषयमिति मदनपारिजात, श्राद्ध-
वृत्तचिन्तामणि, दिवोदास, चन्द्रप्रकाश, गोविन्दार्णवादीयोप-
न्यन्ते । तन्मूलवाक्यं श्राद्धकल्पे मार्कण्डेयपुराणे—

ब्राह्मादिषु विवाहेषु या तूढा कन्यका भवेत् ।

भर्तृगोत्रेण दातव्यास्तस्याः पिण्डोदकक्रियाः ॥ इति ।

यत्तु—

पितृगोत्रं समुत्सृज्य न कुर्याद्भर्तृगोत्रतः ।

जन्मन्यपि विपत्तौ च नारीणां पैतृकं कुलम् ॥ इति,

तदाऽऽसुरादिविवाहोडाविषयमिति सर्व एव मन्यन्ते, तस्यापि
मूलं श्राद्धकल्पे मार्कण्डेयपुराणे एव—

आसुरादिषु चान्येषु पितृगोत्रेण धर्मवित् ॥ इति ।

पुत्रिकाया अपि सम्पूर्णदानानिष्पत्तेः पितृगोत्रमर्हति
मितासुरा ।

तदुक्तं श्राद्धकल्पे—

मातामहस्य गोत्रेण मातुः पिण्डोदकक्रियाम् ।

कुर्याद्दे पुत्रिकापुत्रो धर्म एव सनातनः ॥ इति ।

अत्र कश्चिद्विशेषमाह शांतातपः—

अपत्यायां पिता कुर्यात्पत्यायां तु पतिस्तथा । .

स्वेन स्वेनैव गोत्रेण संस्थितायां तिलोदकम् ॥

एतेन वैवाहिकसप्तमपदादर्वाकं तदभिव्याप्य वा मृतायाः क-
न्यायाः पित्रा भ्रात्रा तद्दानाधिकारिणा वा और्ध्वदेशिकं स्वैगो-
त्रेणैव कर्तव्यमिति नियम्यते । तत ऊर्ध्वं पत्यादिना स्वगोत्रे-
णेति दिवोदासचन्द्रप्रकाशौ मन्येते ।

तथा—

संस्थितायां तु भार्यायां सपिण्डीकरणान्तिकम् ।

पैतृकं भजते गोत्रमूर्ध्वं तु पतिपैतृकम् ॥

भार्या भर्तुर्योग्या कन्या 'रुस्रेत्कन्याम्' इति स्मरणात् । त-
स्या संस्थितायां मृतायां पैतृकं गोत्रं जनककुलं कर्तृभूतं सपिण्डी-
करणान्तिकं कर्म भजते कुर्यादित्यर्थः । ऊर्ध्वं विवाहानन्तरं प-
तिपितुरिदं पतिपैतृकं स्वशुरसम्बन्धीत्यर्थः । तद्गोत्रं कर्तृ सपिण्डी-
करणान्तिकं कर्म भजते इति पूर्वेण सम्बन्धः । यद्वा सपिण्डीक-
रणान्तिकं कर्म कर्तृभूतं पैतृकं गोत्रं भजते आश्रयति तेन गो-
त्रेण निष्पद्यत इत्यर्थः । एवमुत्तरत्रापि । अस्मिन् च व्याख्याद्वये
पूर्ववचनमेव मूलमिति । अत्र सम्बन्धिभार्यापदेन, भार्यात्वप्रति-
योगिनः पत्युरेवोपस्थितत्वात् पतिकर्तृकपत्नीसपिण्डीकरणविष-
यमिति हरनाथः । अत्र येन केनापि सह मातुःसाम्पिण्ड्येऽपि
यत्रान्वष्टकादिषु मातृश्राद्धं पृथग्निहितम्—

• अन्वष्टकामु वृद्धौ च गयाया च क्षयेऽहनि ।

मातुः श्राद्धं पृथक्कुर्वादन्यत्र पतिना सह ॥

इत्यादिना, तत्र सर्वश्रुतिपितामहादिभिरेव सह पार्वणश्रा-
द्धं कर्तव्यम् ।

तदाह शांतातपः—

नान्दीमुखेऽष्टके श्राद्धे गप्रदायां च मृतेऽहनि ।

पितामहादिभिः सार्द्धं मातुः श्राद्धं समाचरेत् ॥ इति ।

‘अन्यत्र पतिना सह’ इति पतिसापिण्ड्यं तदंशभागित्वा
तेनैव सह, मातामहसापिण्ड्ये तु तदंशभागित्वादेव तेन सह ।

तदाह श्रातातपः—

एकमूर्तित्वमायाति सपिण्डीकरणे कृते ।

पत्नी पृथिविपुत्रां तु तस्मादंशेषु भागिर्द्या ॥ इति ।

एवं सति मातामहेन सापिण्ड्ये मातामहश्राद्धं पितृश्राद्धं च
भित्तयमेव । अन्यसापिण्ड्ये तु न नित्यमिति । मिताक्षरादि
सर्वग्रन्थसम्मतोऽयं निर्णयः ॥

अथ व्युत्क्रममृतस्य सापिण्ड्यमास्ति नेति विचार्यते ।

तत्र कात्यायनः—

व्युत्क्रमाच्च प्रधीतानां नैव कार्या सपिण्डता ।

व्याख्यतं चैतद्विद्वानेऽवदाचार्यैः—एतच्च पितुः सपिण्डी-
करणं पितामहादिषु त्रिषु एमीतेषु वेदितव्यम् । पितरि प्रेते पि-
तामहे वा जीवति सपिण्डीकरणं नास्त्येवेति । उपसंहृतं च यो-
ऽक्षाणादिहतस्य व्युत्क्रममृतस्य सपिण्डीकरणासम्भवे तमुल्लङ्घ्य
पितामहादिभ्यः पार्वणविधानमनुपपन्नमिति सपिण्डनाभावोऽ
वगम्यत इति । तथा ब्रह्मिन्मते—

व्युत्क्रमाच्च मृते देयं येभ्य एव ददात्यसौ ॥

तथा यज्ञपार्ष्वपरिशिष्टे—

जीवोत्पितामहो यस्य पिता बान्तरितो भवेत् ।

पितुरेकस्य दातव्यमेवमाहुर्मनीषिणः ॥ इति,

तदेतन्मातापितृभर्तृव्यतिरिक्तविषयमिति मद्वन्पारिजातप-
भृतयः ।

तथाच स्कन्दपुराणे—

व्युत्क्रमेण मृतानां न सपिण्डीकृतिरिच्छते ।

व्युत्क्रममृतौऽसपिण्डीकरणनिर्णयः । २४७

यदि मातां यदि पितां भर्त्र नैष विधिः स्मृतः ॥ इति ।

एष विधिः—व्युत्क्रममृतौऽसपिण्डनमिष्यत् इत्ययं विधिः ।

अत एष व्युत्क्रममृतस्यापि सपिण्डनाभिधिर्दक्षितो ब्रह्मपुराणे—
मृते पितरि यस्याय विद्यते च पितामहः ।

तेन देयास्त्रयः पिण्डाः प्रपितामहपूर्वकाः ॥

तेभ्यश्च पैतृकः पिण्डो नियोक्तव्यश्च पूर्ववत् ॥ इति ।

मनुरपि—

पिता यस्य श्वत्वाः स्याज्जीवेद्वाऽपि पितृमहः ।

पितुः स नाम सङ्कीर्त्य कीर्तयेत्प्रपितामहम् ॥ (३।१२१)

“जीवते पितामहाय न दद्यात्, किं तर्हि ? ततः पूर्वाभ्या
पितृश्वेत्येवं त्रिभ्यो निपूणीयादितिस्मरन्ति” इति ।

गोविन्दराजोऽप्येवमाह—यस्य पिता प्रेतः स्यात्स पित्रे पि-
ण्डं निधाय पितामहात्परं द्वाभ्या दद्यादिति वचनादिति ।
कुल्लूकभट्टस्तु—नामकर्तृनमत्र श्रद्धोपलक्षणम् । यस्य पुनः पिता
मृतः स्यात्पितामहश्च जीवति स पितृपितामहयोर्द्वयोरेव श्राद्धं
कुर्षादित्याह । सर्वज्ञनारायणकृता तु व्याख्याऽन्यथैव । यथा-
वृत्तो मृतः जीवेद्वाऽपि इति वाच्यं चार्थे ‘कीर्तयेत्प्रपितामहम्’
प्रपितामहनामकीर्तनेन श्राद्धं प्रवर्तयेदित्युक्तं भवति इति ।
विद्वानेश्वरोऽप्यन्यथैवाह—पितुः स नामसंकीर्त्येति शब्दप्रयोगानि-
यमायनपिण्डद्वयदानार्थम् ।

पितुः स नाम सङ्कीर्त्य कीर्तयेत्प्रपितामहम् ।

इत्यर्थं तत्प्रहणात्सर्वत्र पितृभ्यः पितामहेभ्यः प्रपिता-
महेभ्यः इत्येष प्रयोगे न पुनः कदाचिदपि पितामहस्य
प्रपितामहस्य वाऽऽदित्वं वृद्धप्रपितामहस्य तत्पितृवन्तत्वमिति ।
तदेतद् बहुनिबन्धसम्मतप्रचारानगतं च दृश्यते इति मेधातिथि
प्रमुखव्याख्येवादर्शयति ॥

यत्र तु पितृपितामहौ प्रेतौ प्रपितामहश्च जीवति तत्राह—

विष्णुः—‘वस्य पितापितामही च प्रेतो स्वार्ता’स ताभ्या पि
ण्डौ दत्त्वा पितामहापितामहाय दद्यादिति’ । अतश्च प्रेतस्य पि-
तृपितामहप्रपितामहानां मध्ये य एव जीवति तमतिक्रम्य तदग्रे
तन गृह्णति चिकः पूरणीयः—

त्रयाणामुदकं कार्यं त्रिषु पिण्डः प्रवर्तते ।
चतुर्थः सम्प्रदातैर्वा पञ्चमो नोपपद्यते ॥

इति वचनादिति दिवादासचन्द्रप्रकाशद्वयः । अत्र च
पितृपितामहप्रपितामहानां मध्ये येनकेनापि सापिण्ड्ये पितृ
मासिर्भवत्येवेत्याह सुमन्तुः—

त्रयाणामपि पिण्डानामेकेनापि सापिण्डने ।
पितृत्वमश्नुते प्रेत इति धर्मो व्यवस्थितः ॥

अथ मानुष्युत्क्राममरण—

ब्रह्मपुराणे—

मातयेग्रे मृतायां तु विद्यते च पितामही ।
प्रपितामहिपूर्वं तु कार्यस्तत्राप्यय विधिः ॥

चन्द्रप्रकाशे हारीतोऽपि—

तस्मिन्सति सुतः कुर्यात्पितामहा सहैव तु ।

तस्या वै च तु जीवत्यां तस्याः श्वश्रेति निश्चयः ॥

तस्याः पितामहाः श्वश्रा प्रपितामहोत्पर्यः । एतत्तु पिताम
हा सह सापिण्डीकरणपक्षे । मातामहा सह सापिण्डीकरणपक्षे तु
शातातपः—

तन्मात्रा तत्पितामहा तच्छ्वश्रा वा सापिण्डना ।

आसुरादिविवाहेषु विन्नाना योपिता स्मृता ॥ इति ।

पूर्वस्यां पूर्वस्यां जीवत्यामुत्तरोत्तरयेति मदनमत प्राक्-
क्षितमेव । एवं मातामहसापिण्ड्यपक्षेऽपि व्युत्क्राममरणे श्वश्रुः ।
व्युत्क्राममृतायाः पतिकर्तृकसापिण्ड्ये मदीपोदाहृतं स्मृत्यन्तरवचनम् ।

अश्रुर्जावति भर्ता च स्तुंषा चान्तर्हिता यदि ।

पितामहादिभिः कुर्यात्सापिण्डीकरणं पतिः ॥

तस्यां चैव तु जीवन्त्यां तस्याः इवश्चेति निश्चयः ॥

तस्याः इवश्चा पितामहोत्तर्यः । एवं पत्न्यादिकर्तृकेऽपि
द्रष्टव्यम् । पितृकर्तृके पुत्रसपिण्डने विशेषमाह श्राद्धकल्पे
बोधायनः—

पितुः पुत्रेण कर्तव्यं न कुर्वीत पिता सुतैः ।

अतिश्नेहेन कुर्यात्सपिण्डीकरणं विना ॥

अत्रापूरो विशेषः कात्यायनेनोक्तः—

असंस्कृतौ न संस्कार्यौ पूर्वौ पौत्रपौत्रकैः ।

पितर तत्र संस्कार्यादिति कात्यायनोऽब्रवीत् ॥

पापिष्ठमपि युद्धेन युद्धे पापकृताऽपि वा ।

पितामहेन पितरं संस्कार्यादिति निश्चयः ॥

असंस्कृतौ दाहादिसपिण्डनान्तैः कर्मभिः पूर्वौ पितामहप्र
पितामहौ पापिष्ठ संस्कारादिराहित्वात्प्रयातित्येन चाण्डाळादिह-
ननेन वा, 'पापकर्मिणो न समृजेरन्-स्त्रियश्च व्यवभारिणीः'
इति गौतमवचनात् । न समृजेरन् सपिण्डीकुर्युः । 'असंस्कृतौ न
संस्कार्यौ' इत्येतच्च प्रत्यासन्ने सपिण्डीकरणकर्तारि सति पौत्रादि
ना न कर्तव्यमित्येतत्परम्, असति तु संस्कार्यादेवेत्युपरार्कः ॥

• अध सपिण्डनापवादः ।

श्रातातपः

• एकोद्दिष्टं जलं पिण्डमाशौचं प्रेतसत्क्रियाम् ।

न कुर्यात्पार्वणादन्यद् ब्रह्मीभूताय भिक्षवे ॥

ब्रह्मीभूतो यतिः । उचनाः—

• एकोद्दिष्टं न कुर्वीत यतीनां चैव सर्वदा ।

अहन्वेकादशे प्राप्ते पार्वणं तु विधीयते ॥

सपिण्डीकरणं तेषां न कर्तव्यं सुतादिभिः ॥

त्रिदण्डग्रहणादेव प्रेतस्त्वं नैव जायते ॥

तथा श्राद्धकल्पे श्वाश्रयात् 'यतीनां तु विधीयते' इति त्रिदण्डिनामेवाय पार्ष्णिचिर्नैकदण्डिनामिति भाति, 'त्रिदण्डग्रहणादेव' इति विशेषाभिधानात् । यदपि

दण्डग्रहणमात्रेण नैव प्रेतो भवेद्यतिः ।

अना 'सुते' कर्तव्यं पार्ष्णिचं तस्त्वं सर्वज्ञः ॥

इतिश्रुतेोच्चर्त्तं दण्डमामान्योपादानं, यदपि च ।

सन्धासिनोऽप्याह्निकादि पुत्रः कुर्षाश्रयाविधिः ॥

इति वायुपुराणीय सामान्याभिधानं तत्सर्वं त्रिदण्डपरमेत्,

सामान्या विधिरस्पष्टः संह्रियेत विशेषतः ।

इति न्यायात् । यथा 'पुरोडाशं चतुर्धा करोति' इत्यनेन पुरोडाशमात्रस्याविशेषेण चतुर्धाकरणे विहितेऽप्याग्नेय चतुर्धा-
करोतीत्यनेनाग्नेयपरत्वं चतुर्धाकरणस्य, तद्दत्त्वापीति । तथा सति एकदण्डिनां न किञ्चिदेवेति । तत्र च—

ब्राह्मणादिहते ताते पतिते संभवार्जिते ।

व्युत्क्रमाच्च मृते देयं येभ्य एव ददात्यसौ ॥

इत्यनेन तत्पितृश्राद्धमेवेति प्रतीयते । अथ चार्थः श्राद्ध-
चिन्तामणिशूक्तपाणिप्रभृतिभिः स्फुटमेवाभिहितः । अन्ये तु त्रिदण्डग्रहणमित्युपलक्षणम्, 'दण्डग्रहणमात्रेण' इत्यादौ सामा-
न्योपादानात् । तेन सन्धासिमात्रस्यायं पार्ष्णादिविधिर्न द-
ण्डिनामेव । अन्यथा आशौचादिनिषेधोऽपि त्रिदण्डपर-एव स्या
दिति एकदण्डिना तत्प्रसङ्गः ।

अत एव ब्रह्मपुराणे—

प्रयाणामाश्रयाणां च कुर्षादह्निकाः क्रियाः ।

यतेः किञ्चिन्नकर्तव्यं न चान्येषां करोति सा ॥

इति वदन्ति । वस्तुतस्तु—

वार्षिकः कर्मदण्डश्च मूनोदण्डश्च ते त्रयः ।

यस्यैव नियता दण्डाः स त्रिदण्डी यतिः स्मृतः ॥

इतिमार्कण्डेयपुराणावचनेन त्रिदण्डिदण्डस्य वाक्त्रायर्मनोदण्ड
त्रयोपेतपरतया माधवाचार्यैर्वर्णयित्वा तत्त्वेन च तथाविवक्ष्यते च
कदम्बिनामपि सम्भवात्सन्धासिमात्रपरमिदमिति प्रतिभाति ।
शिष्टाचारीऽप्यत्रानुगृह्यत इत्यल बहुनाः ।

तथा स्मृत्यर्थेसौ 'ब्रह्मचारिणामनपञ्चानां च सपिण्डीकरणं
नास्ति, तेषां सदैकादिष्टाविधिः इति । अनपत्यविषये तु व्यव
स्था पूर्वमुक्तैव । शूद्रापुत्रस्य द्विजैः पित्रादिभिः सहपिण्डन न
कार्यमित्युक्त इत्युक्ते शङ्केन—

नीयते तु सपिण्डत्वं येषां शूद्राः कुलोद्भवः ।

सर्वे शूद्रत्वमायान्ति यदि स्वगमितोऽपि ते ॥

ब्राह्मणादिहतानां पतितानां च प्रायश्चित्ताकरणे सपिण्डी
करण नास्तीति स्मृत्यर्थसारः । तेषामपि स्वत्सरानन्तर प्राय-
श्चित् विधाय नारायणबलिपूर्वं सर्वमौर्द्धेदहिकं कार्यम् इति प्र-
श्चितमेव प्राक् ।

इति सपिण्डीकरणविधिः ॥

अथ पाथेयश्राद्धम् ।

तदुक्तं प्रयोगसारे द्वारतीतेन—

समुद्रिव्येकपुरुष न दद्यात्पुरुषत्रये ।

द्वादशेऽहनि कर्तव्यं पाथेयं पितृवृत्तये ॥ इति ।

द्वादशेऽहनि इति सपिण्डीकरणादिवसोपलक्षणम् । तत्रैक-
पुरुषोद्देशेनैव पुरुषत्रयोद्देशस्य विधानाच्चस्य च सपिण्डनो-
त्तरकालमेव सम्भवादः ।

अथ सपिण्डनोत्तरदिने वा स्वस्तिवाचनं कुर्यात् ।
तन्मूलं च बहुग्रन्थे फलिकाले

धर्मपदीपेऽपि—

सूतकाग्रे विवाहादौ श्राद्धान्ते मयमार्तवे ।

पुण्याह वाचयित्वा तु भोक्तव्यं स्वस्थमानसैः ॥ इति ।

अथ सोदकुम्भश्राद्धम् ।

अर्वाक् सपिण्डीकरण यस्य सवत्सराहवेत् ।

तस्मिन्पक्षे सोदकुम्भं दद्यात्संवत्सरे द्विजे ॥

शौचम्—

सदैवं पार्वणश्राद्धं सोदकुम्भं संदक्षिणम् ।

कुर्यात्प्रत्यादिदकश्राद्धात्सकल्पविधिनाऽन्वहम् ॥

इदं च कृते वा सपिण्डने यावद्वर्षं प्रत्यहं, तदंशकौ भूतिमास
वा दिवसगणनया कार्यम् । सपिण्डनोत्तरकाल पार्वणं पूर्वमेको
द्विष्टमिति ! तत्र भोजनदिनियमसहितं विश्वेदेवरहित
साकल्पविधिना कार्यमिति संज्ञेयः ॥

अथ महाशुक्लनिपाते प्रथमाब्दे चर्त्यानि ।

तत्र षडक्षनिर्वन्धे देवलः—

प्रमीतौ पितरौ यस्य देहस्तस्यायुचिर्भवेत् ।

न दैवं नापि वा पित्र्य यावत्पूर्णे न वत्सरः ।

महाशुक्लनिपाते तु प्रेतकार्यं यथाविधि ॥

कुर्यात्प्रत्यसरादर्वामेकोद्विष्टं न पार्वणम् ॥

अकृते सपिण्डीकरणे सम्बत्सरादर्वाक् प्रेतकार्यं षोडश-
श्राद्धादि एकोद्विष्टं कुर्यान्न पार्वणमिति ।

सपिण्डीकरणादर्वाक् कुर्यात्श्राद्धानि षोडश ।

एकोद्विष्टविधानेन कुर्यात्सर्वाणि तानि तु ॥

इति पैठीनासिक्कनात् । यत्स्वपदीयंमेकोद्विष्टं पार्वणं च
न कार्यमिति भ्रान्तप्रकृतित्वात्, तत्र; तथा सति पितृवरणोत्तरकाल

प्रथमाब्दएव मृतस्य भ्रात्रादेरेकोद्दिष्ट पार्वणं च न स्यात् । किञ्च यदाकदाचिन्मृतस्यान्यस्य सखाहादिकमपि न स्यादितिमास्तां तावत् । तथा दिवोदासमुक्ताशेषे—

महातीर्थस्य गमनमुपवासव्रतानि च ।

सम्बत्सर न कुर्वीत महागुरुनिपातने ॥

तथा—

तीर्थस्नानं महादानं पराभं तिष्ठतर्पणम् ।

अब्दमेकं न कुर्वीत महागुरुनिपातने ॥

तथा—

स्नानं चैव महादानं स्वाध्यायं चाप्रितर्पणम् ।

प्रथमेऽब्दे न कुर्यात्तु महागुरुनिपातने ॥

स्नानं दूरदेशान्गत्वा तीर्थादौ, पूर्ववाक्यानुसरोधात् । स्वाध्यायमपूर्वस्य ब्राह्मणोपनिषदादिरारम्भपूर्वकम् । अप्रितर्पणमग्न्याधानादिपूर्वकमग्निहोत्रहोमादि इति बहवः । यानि स्वन्यान्वपि—

सर्वेषां प्रेतकार्याणि महागुरुनिपातने ।

कुर्यात्सबत्सरादर्वाक् आद्भमेके तु वर्जयेत् ॥

माता चैव तथा भ्राता भार्या पुत्रस्तथा स्तुषा ।

एषा मृतौ चरेच्छ्राद्धमन्यस्य न पुनः पितुः ॥

माता चैव सुतौ भ्राता पत्नी चैव विपद्यते ।

तत्र श्राद्धानि कुर्वीत न कुर्याज्जनके मृते ॥

इत्यादीनि वचनानि तानि सर्वाणि पितृमृतौ पितृप्ररणसूतकमध्ये अन्यस्य मरणेऽपि तदीयनवश्राद्धादि न कुर्यादित्ये तत्प्रार्थनीति धर्मप्रकाशाख्यात्या । अन्यच्च—

अग्निक्षेपं गयाश्राद्धं श्राद्धं चापरपक्षिकम् ।

प्रथमेऽब्दे न कुर्वीतु कृतेऽपि हि सपिण्डने ॥

एतद्श्राद्धमित्यपि पादप्रपरे पठन्ति । अस्वापवादः—

अस्थिक्षेपं गयाश्राद्धं श्राद्धं ज्ञापरपक्षिकम् ।

प्रथमेऽब्दे तु कुर्वीत र्याद स्यात्प्रक्षिप्तमान्सुतः ॥ इति ।
अत्र कश्चिद्भक्तिशब्देने भक्त्याख्य श्राद्धं श्राद्धे देवतात्व
सम्पादकं तद्वान् तत्कृतवत्तनेत्याह । तदेतन्महासाहसपूर्वकमपूर्वा-
र्यानां प्रतारणेनात्मनो धर्मशास्त्राभिनिवेशप्रकाशनमेव । यतः -
सर्वदेव्यापि श्लिष्टपारिशुद्धीतनिबन्धापरिशुद्धीतेऽपि वचनेऽपूर्वत्वा-
ख्याकल्पनमिति । गयाया पिण्डदानं तु सपिण्ड्यान्तेस्वाब्दम-
ध्येऽपि कार्यमिच्छुक्तं दिवाद्रासप्रकाशे-

सपिण्डीकरणं कृत्वा गयां गत्वा च धर्मवित् ।

एकोद्दिष्टानि कुर्वीत सामिवाऽनमिमानपि ॥

अथ प्रागुक्तेऽपि नान्दीश्राद्धे ग्रन्थान्ते मङ्गलार्थं पुनः
किञ्चिद्विचार्यते । बह्वृचानां नान्दीश्राद्धे मात्रादीनामानुलोम्येन
क्रम उत प्रातिलोम्येनेति ? तत्रानुलोम्येनेति प्राप्तम्, चोदका
मुग्रहात् ।

माता पितामही चैव सम्पूज्या प्रपितामही ।

पित्रादयस्त्रयश्चैव मातुः पित्रादयस्त्रयः ।

एते नवार्चनीयाः स्युः पितरोऽभ्युदये द्विजैः ॥

इत्याश्वलायनवचनाच्च । न च मात्रादिस्वरूपविधिपरिऽ
स्मिन् वाक्ये अवर्जनीयतया क्रमोक्तिः उभयपरत्वे वाक्यभेदा
दिति वाच्यम् । प्राप्तत्वेन स्वरूपविधानानभ्युपगमात् । न च
परिशिष्टकारिकाशौनकादिप्रयोगेषु त्रिदैवत्वत्वोक्तेः

मातृपूर्वाङ्गितृन् पूज्य ततो मातामहानपि ।

मातामहीस्ततः केचिद् युग्मा शोभ्या द्विजातयःपी ।

इति चतुर्विंशतिमते द्वादशदैवत्वत्वोक्तेश्च तत्परिसंख्यार्थ-
मेवेहामिति वाच्यम्, तस्यास्त्रिदोषज्ञात् । न च पाठक्रमो न
विधेयो नापि वाक्यार्थो अपदार्थत्वादिति वाच्यम्, तस्य 'शौ-
चाचारश्चि क्षिप्तयेत्' इत्युदे स्मार्तस्वाध्यायविधिविहितत्वात् ।

अन एव कृत्वायनीये प्रयोगबन्धने 'नान्दीमुखः पितरः पिता-
महाः प्रापतामहाश्च प्रीयन्ताम्' इति ।

तथा शौनकीयेऽपि—

तत्रेद तेऽर्घ्यमिलेष पितृनामपदादिकः ।

पितामहार्थविषयेभ्यो दत्त्वाऽर्घ्यं च यथा पुरा ॥

प्रपितामहशब्दादिभिर्दे तेऽर्घ्यमितीरयेत् ।

इत्यादीन्याः श्लोम्यविधिलिङ्गान्यपि संकृच्छन्ते । एतदेवा-
भिप्रेत्य भगवान् प्रथोगपारिजातोऽप्येवमाह 'तस्मादानुलोम्भेन
क्रमः' इति । अत्राप्यते, न तावदत्रातिदेशनानुलोम्यक्रममिदिः,
अस्वर्षादेशेन बाधितत्वात् । तथाहि—

नान्दीमुखे विवाहे च प्रपितामहपूर्वकम् ।

नाम सङ्कीर्तयेद्विद्वानन्यत्रपितृपूर्वकम् ॥

इति बृहद्वसिष्ठेन । नयां—

बृहद्वस्यस्तु पितरो वृद्धिश्राद्धेषु मुञ्जते ।

इति स्मृत्यर्थसारेण । तथा—

प्रपितामहादि मात्रन्त तथा वर्गद्वयेऽपि च ।

नान्दीश्राद्धेषु सर्वत्र कोचिदाहुर्पनीषिणः ॥

इति प्रयोगसाराश्वलायनसर्वस्वकृत्परत्राकरप्रभृतिभिश्च
प्रातिश्लोम्यक्रमस्यैवोक्तत्वात्स एव शास्त्रार्थः । न च वासिष्ठ
शास्त्रान्तरविषयमिति वाच्यम्, 'वासिष्ठ बह्वचैरेव' इति श्लोकका-
धिकरणे वार्षिककारैरुक्तत्वेन तदयोगात् । अथाश्वलायनवाक्येन
तृप्तिरिति मत, तत्रापि तस्य पाठमात्रदर्शनेन पाठक्रमस्य च
श्लोककल्पत्वेन तत्परत्वायोगात् । तथास्वेऽपि वा तस्य साक्षा-
द्वसिष्ठस्युक्तश्रौतक्रमविरोधे क्रमकोपाधिकरणन्यायेन वाच्य
त्वात् । न्यथा ऐन्द्रवायव्यं गृह्णाति, मैत्रावरुणं गृह्णात्याश्विनं गृह्णा
तीतिपादक्रम "आश्विनो दशमो गृह्णाते" इति श्रौतक्रमेण वाच्यत

इति । किञ्च पाठमात्रस्य क्रमकल्पकत्वे—

मानरः प्रथमं पूज्याः पितरस्तदनन्तरम् ।

ततो मातामहाः पूज्या विश्वेदेवास्तथैव च ॥

इति मास्वयञ्चने विश्वेषां देवानामन्ते पाठादन्त एव पूजा स्यात् । “तस्मादाश्वलायनवाक्ये नवसंख्यामात्राविधिपूर्वमेव” न क्रमपरम् । तथा सति च “तदिदमेके मातृणां पृथक्कुर्वन्धयः पितृणां ततो र्भर्तामहानाम्” इति त्रयदिच्छलितम् । तथा—

मातृश्राद्धं तु पूर्वं स्यात्पितृणां तदनन्तरम् ।

ततो मातामहानां च वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम् ॥

इत्यादिपरिशिष्टादिवाक्यैः सहैकमूलकल्पनाच्छाघवमपि । यद्वा परिशिष्टादिवाक्यैकमूलकल्पनाच्छाघवादेव मात्रादिश्राद्ध-
त्रयस्य क्रमविधायकमस्तु । न च वसिष्ठवाक्ये प्रपितामहपूर्वक-
त्वात्स्यात्त्रिदेवत्वमात्रे मृत्तिलोभ्यविधायकगतिवाच्यम् । न च
दैवत्वेऽपि ‘प्रपितामहादिमात्रं तम्’ इति वाक्येन प्रातिलोभ्य
स्याक्तत्वेन तस्योपलक्षणपरत्वात् । अन्यथा शौनककारिकादि-
भिरिद्वैवत्ये आनुलोभ्यक्रमस्यैदोक्तत्वेन तैस्सहाष्टदोषदुष्टधिक-
ल्पापत्तेः, मूलान्तरकल्पनाङ्गेषापत्तेश्च । एतेन शौनककारि-
कादिविरोधोऽपि प्रत्युक्तः । तेषां त्रिदेवतात्वपक्षे तथा क्रमवि-
धायकत्वात् । यस्तु क्लास्यायनीये प्रयोगवचने तथा क्रमविधान,
तद्ब्रह्मसनेपि विषयमिति । यच्च भगवता प्रयोगपारिजातेनानु-
लोभ्यमाश्रितं तदभ्युपगमाभावादेव न शिष्यबुद्धिपरीक्षार्थं
न वस्तुतः । अत एव वसिष्ठवाक्यस्य विवाहप्रकरणे पि-
त्रादीनां प्रातिलोभ्याश्रयणेन स्वशास्त्राविषयत्नमाविष्क-
तम् । तस्य शास्त्रान्तरविषयत्वे तत्संगतं स्यात् । न च
वस्सगोत्रोद्भवामग्न्यस्य प्रपौत्रिमग्न्यस्य पौत्रिमग्न्यस्य पुत्र्यां वसिष्ठगो-
त्रोद्भवायाश्च प्रपौत्र्यायामग्न्यस्य पौत्र्यायामग्न्यस्य पुत्र्यायेत्यादिपरि-

शिष्टादेव तत्र भ्रातिलोम्यसिद्धिर्न वसिष्ठवाक्यादिति वाच्यम् ।
उभयोः स्वतन्त्रेण विधायकत्वादेकार्षस्मृतिद्वयवाक्यवत्तद्वि-
धाने विनिगमकाभावात् । नचैवम्—

पुत्रा यस्य प्रपौत्राव नप्तेऽस्यामुकगोत्रिणे ।

अस्मा अमुकगोत्राय पुत्रा पौत्र्यस्य नपित्रका ।

इत्यादिकारिकाविरोध इति वाच्यम् । आर्षपरिशिष्टविरोधे पौ-
त्र्येऽप्यस्तस्या कुर्त्तव्यत्वात् परिशिष्टस्य श्रुतिमूलकत्वेन स्मृतिमू-
लिकायास्ततः प्राक्त्वयाच्च । न च—‘नान्दीमुखे त्रिवंशे वा’ इत्यनेन
नान्दीमुखशब्देन महाशुक्राङ्गं नान्दीमुखमेवोच्यते । तेन तत्रैव
तादृशक्रमविधानमिति वाच्यम् । बाह्यश्रुत्ये तत्परत्वेऽपि तस्य
द्विभ्राद्देशब्दवाच्यत्वेन स्मृत्यर्थसारीयस्य तत्परत्वासम्भवात् ।

उक्तरीत्या वाक्यान्तरवशाद्गुणलक्षणतया नवदेवत्ये तादृशक्रम-
विधानेन त्रिदेवत्ये तस्मिन् तादृशक्रमविधानसम्भवाच्च । किञ्च
उभयपरतयाऽस्पष्टस्य सामान्यस्य नान्दीमुखशब्दस्यैकमात्रपौ-
त्र्या स्पष्टेन विशेषणं द्वाभ्राद्देशब्देर्नपसहारात् । अत एव
बाह्यश्रुत्ये तत्परत्वेन स्मृत्यर्थसारीयस्य चाभ्युदयिकपरत्वेन
व्यवस्थेत्यपि न शङ्कनीयम् । नचैतानि वचनानि निर्मूलान्धे-
वेति वाच्यम् । तेषां समूले हेमाद्रि-प्रयोगपरिजात-स्मृत्यर्थसार-
प्रयोगसारा-ऽऽम्बलायनसर्वस्व-कृत्यरत्नाकर-हरनाथ-संस्कार-

।मृतीनां निवन्धानां प्रतिभृत्वेनास्मद्भारापनयनात् ।

अदेवं जाग्रन्मूलाया सर्वदेशीयाश्वलायनानामन्धादेशिष्टाचम-
परम्पराकां षदाधुनिकानामसत्पथप्रवर्तन, तद्धर्ममनिकर्तने
नात्मकृतिस्वल्यापनमेवेत्युपेक्षणीयम् । तस्मात्सिद्धो बहुवचानां
नान्दीश्राद्धे मात्रादीनां प्रातिलोम्येन तत्क्रम इत्यलपतिप्रपञ्चेन ॥

अथ पार्षणादिश्राद्धभोजने प्रायश्चित्तमुच्यते ।

तत्र भूराज्ञः—

मुक्तं चैत्पार्षणश्राद्धे प्राणायामान् पढाचरेत् ।

उपवासस्त्रिमासादिवत्सप्तमं गकीर्यैत' ॥
 प्राणायामत्रयं वृद्धावर्हारात्रं सपिण्डने ।
 असरूपे स्मृते नक्त व्रतपारणके तथा ॥
 अरूपे गुणशीलादिभिरसमाने ।

तथु-

द्विगुणं क्षत्रियस्यैतद्विगुणं वैश्यभोजने ।
 साक्षाद्गुरुर्गुणं होतस्मृतं शूद्रस्य भोजने ॥ इति ।
 एतदापद्विषयतामश्राद्धविषयमकामंविषयं वा । एवमुत्तर-
 त्रापि अल्पप्रायश्चित्तानि योजनीयानि । अधिकप्रायश्चित्तानि
 कामकारे अनापद्विषये वा योज्यानि । आपदि नवश्राद्धादि-
 भोजने विष्णुक्तम्—

प्राजापत्यं नवश्राद्धे पादान चाऽऽयमासिके ।

त्रैपक्षिके तद्द्वै तु पञ्चम्य द्विमासिके ॥ इति ।

अत्राशक्तस्य हारीतेनोक्तम्—

एकादशाहे ऋषे तु भुवत्वा सञ्चयने तथा ।

उपोष्य विधिवद्भुत्वा कृष्णायर्हैर्जुहुयाद् घृतम् ॥ इति ।

अनापद्यपि स एव—

चान्द्रायण नवश्राद्धे प्राजापत्य तु मिश्रके ।

एकाहरतु पुराणेषु प्रायश्चित्तं विधीयते ॥

मिश्रकः—प्रथमसम्बत्सरभव श्राद्धमिति केचन । पुराणेषु—
 सम्बत्सरान्तरभांविश्राद्धेषु । पुराणेष्विति बहुपक्ष कपिञ्ज-
 लाधिकरणन्यायेन त्रित्वपर, तत ऊर्ध्वं न दोष इत्यर्थः । चतुर्थस्य
 शुष्यर्थत्वात् ।

तथाच दिवोदासनिबन्धे—

सपिण्डीकरणादूर्ध्वं यावद्बद्धायं भवेत् ।

तावदेव न भोक्तव्यं स्येऽहनि कदाचन ॥

पार्वणादिश्राद्धभोजने प्रायश्चित्तविधिः । २५९

अत एव, दूर्वापरंप्रभृतिश्राद्धे वर्षशयाज्जीवादि भोजने प्र-
त्यवायो नास्तीति ।

स्मृत्यन्तरेऽपि—

सप्तत्रिंशच्च यो मासान् श्राद्धे युक्ते तमोहतः ।
स पशुक्तिदूषितः पापः, मेषाशी च भवेत्तु सः ॥

श्राद्धकारिकभाष्ये—

मृतस्यद्विनि सम्प्राप्ते यावद्वदचतुष्टयम् ।

चहिश्राद्धप्रकुर्वीत न कुर्याच्छ्राद्धभोजनम् ॥

• प्रथमेऽस्थानि • मज्जा च द्वितीये मांसप्रक्षणम् •

• तृतीये रुधिरं मोक्तं श्राद्धं शुद्धं चतुर्थकम् ॥ इति ।

अपरे तु मिश्रकं प्रथमतो दीयमानमाद्य श्राद्धमिति । “चा-
न्द्रायण नवश्राद्धे” इत्येतत्प्रथमनवश्राद्धादिविषयम् । अथवा नव-
श्राद्धे चान्द्रायण क्षत्रिणश्राद्धविषयं वा • द्वितीयनवश्राद्धादिषु
तु षट्त्रिंशन्मतोक्तम्—

प्राजापत्य नवश्राद्धे पादोन चार्धमासिके ।

• त्रैपाक्षिके तदद्दं स्यात्पादोद्वैमासिके तथा ॥

पादोनं कृच्छ्रमुद्दिष्टं षण्मासे च तथाऽऽब्दिके ।

त्रिरात्रं चान्यमासेषु प्रत्यब्दं तदहः स्मृतम् ॥ इति ।

‘त्रैपाक्षिके तदद्दं स्यात्’ इत्यादि कामकारविषयम् । ‘षण्मासे

च तथाऽऽब्दिके’ इत्येतत्प्रथमाब्दिकविषयम् । ‘प्रत्यब्दं तदहः’

इत्येतद्वितीयाब्दिकविषयम् । एतच्च ब्राह्मणविषयम् । क्षत्रि-

यादिश्राद्धभोजने तु तत्रैव—

• चान्द्रायण नवश्राद्धे पराको मासिके स्मृतः ।

त्रैपाक्षिके सान्तपनं कृच्छ्रं मासद्वये स्मृतम् ॥

• क्षत्रियस्य नवश्राद्धे व्रतमेतदुदाहृतम् ।

• वैश्वस्यार्धाधिकं प्रोक्तं सत्रियास्तु पनीषिभिः ।

शुद्धस्य तु भवश्राद्धे चरेच्चान्द्रायणद्वयम् ॥
 सार्द्धचान्द्रायणं मासि त्रिपक्षे त्वैन्दवं स्मृतम् ।
 एतद्वये पराकः स्यादूर्ध्वं सान्तपनं स्मृतम् ॥ इति ।

शङ्कः—

चान्द्रायण नवश्राद्धे पराको मासिके स्मृतः ।
 पक्षत्रयेऽपि कृच्छ्रः स्यात् षण्मासे कृच्छ्र एव तत् ॥
 आब्दिके पादकृच्छ्रः स्यादेकाहः पुनराब्दिके ।
 अत एव न दोषः स्याच्छुद्धस्य वचनं यथा ॥ इति ।
 एवंविधान्यन्यान्यपि गुरुलघुभावश्चित्तानि कर्माकाम-
 जातिशक्तिस्तेनपातिवह्नीवाद्यपाङ्क्त्यश्राद्धभोजनसर्पहस्तादि श्रा-
 द्धभोजनाविषयविशेषापक्षया योज्यानि ।

तथा भरद्वाजः—

चण्डालादुदकःसर्पाद् ब्राह्मणाद्वैद्युतादपि ।
 दंष्ट्रियश्च पशुभ्यश्च ररण पापकर्मिणाम् ॥
 पतनानाशकैश्चैव विष्णोदुष-धादिकैस्तथा ।
 भुक्त्वैवा षोडशश्राद्धे कुर्यादिन्दुव्रत द्विजः ॥

सथा—

अपाङ्क्त्यान्पदुद्दिश्य श्राद्धमेकादशेऽहनि ।
 ब्राह्मणस्तत्र भुक्त्वाऽन्नं शिशुचान्द्रायण चरेत् ॥ इति ।
 आमश्राद्धे तथा भुक्त्वा तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यति ।
 मूङ्गत्पिते तथा भुक्ते त्रिरात्र च क्षण भवेत् ॥ इति ।
 कामतो ब्रह्मचारिणो नवश्राद्धादिभोजने बृहस्पतोक्तम्—
 मधु मासं च योऽश्रीयाच्छ्राद्धं मृतकमेव च ।
 प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं व्रतशेष समापयेत् ॥ इति ।
 अकामतोऽपि तेनैवोक्तम्—
 वासिकादिषु षोडशनीपादसमाप्तहतो द्विजः ।

पार्षणादिभ्रातृभोजने प्रायश्चित्तविधिः । २६१

त्रिरात्रहृत्पनसोऽस्य प्रायश्चित्तं विधीयते ॥

पाणायामत्रयं कृत्वा घृतं प्राश्य विशुद्धयति ।

आमश्राद्धे त्वर्षं सर्वत्र ।

आमश्राद्धे भवेदर्षं प्राजापत्यं तु सर्वदा ॥

इति षट्त्रिंशन्मते स्मरणात् । अनुक्तप्रायश्चित्तामादास्या-
दिभ्रद्रभोजनेषु विशेषमाहोशनाः-

‘दशकृत्वः पिवेदापो मायज्या श्राद्धमुगृह्णति ।

ततः सन्ध्यामुपासति शुद्धयेत्तु तदनन्तस्व ॥

अस्ति सञ्चिद्यदशभूषणमणिभूषणीशुद्धामणिः

शुद्धोद्युमणिः प्रतापनविधौ धर्मारणिः कर्मसु ॥

कीर्तनां सरणिर्विधाञ्जतराणिः प्रसर्पिपृथ्वीभृतां

संसारार्णवतारणैककराणिः सङ्कल्पचिन्तामणिः ॥१॥

स जयति परमानन्दकीर्त्या यस्यामृतेन पूर्णाशाः ।

त्रिदशाः सुरारिवैर सुगच्छते नैव तन्वते स्वैरम् ॥२॥

‘धर्माधिकारि’ कुलकैरवचन्द्रकान्त-

श्रीरामपण्डितमुतेन विनायकेन ।

आदेशतोऽस्य विहिता सुमनोऽभिरामा

श्री ‘श्राद्धकल्पलतिका’ नितरां प्रकृता ॥ ३ ॥

अङ्कुरिता मुनिवाक्यैर्ष्यालयातृणा द्विपत्रितासूक्तैः ।

पल्लविता कृतिनेय कल्पलता वाञ्छित दिशतु ॥४॥

यास्किञ्चिद्दूषण स्यादिह तदपि कुषैर्भूषण संविधेयं

दोषोद्धाराय तेषामधिजगति पुनर्जन्म धात्रा कृतं यत् ।

किं वा निन्द्य न, शम्भुर्गरुडमहिगणात् भस्म शूलं कपाळं

धत्ते भूषार्थमन्यैस्तदपि किमु गिरा पुष्यते न श्रुतीनाम् ॥५॥

सन्तोऽपि संतोषमपास्य दूरं कृतिं मदीयां यदि दूषयेयुः ।

शानिस्तदा स्यात्किञ्चिती मयात्र स त्वं पुरस्तात्परिहास्यते तैः ॥६॥

परमानन्ददानाम्बुनिषेकैरनुवासनम् ॥

‘श्राद्धकल्पलता’ कृता देवाद्यर्पिकुलेभितम् ॥७॥

इति श्री महाराजाधिराज सहगिलान्वयैकमूषणवर

मानन्दादिष्ट “धर्माधिकारि” रामपण्डितात्मज-वि-

नायक कृतार्थं श्राद्धकल्पलतायां द्वादशश्रुति

रूपणस्तवकः पञ्चमः समाप्तः ॥

श्रीऋषिकवीरा देवतार्पणमस्तु ।

इति श्राद्धकल्पलता समाप्ता ।

शुभ भूयात् ।

Finished
7/10/24
249 46
7/10
6/12/37

